

आचाराङ्ग - शीलाङ्कवृत्ति :

एक अध्ययन



—साध्वी डॉ. राजश्री

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर  
गुरु पुष्कर साधना केन्द्र, उदयपुर



....इसमें गद्य-पद्य शैली तथा व्याकरण पर आधारित सूचनाएं संक्षेप में दी गई हैं। इतने भर से यह तो स्पष्ट होही जाता है कि अर्थ विस्तार के साथ ही भाषात्मक प्रवाह तथा सहज ग्राह्यता इस वृत्ति की विशेषता है।

इस प्रकार पृथक्-पृथक् अध्यायों में इस विस्तृत ग्रन्थ की विभिन्न दृष्टिकोणों से चर्चा प्रस्तुत की गई है। अन्त में उपसंहार के रूप में वृत्तिकार की आचार संबंधी विवेचना प्रस्तुत की है जो इस वृत्ति का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

आगमों के प्रसिद्ध वृत्तिकारों का भी संक्षिप्त परिचय सम्मिलित कर लेने से इस शोध प्रबन्ध का एक संदर्भ पुस्तक के रूप में महत्व बढ़ गया है।

आशा है आप आगम वाङ्मय पर अपना शोध कार्य भविष्य में भी करती रहेंगी।

— प्रकाशकीय

प्रधान सम्पादक  
साहित्य वाचस्पति म. विनयसागर

प्राकृत भारती पुष्प  
पुष्प १३७

# आचारांग-शीलांकवृत्ति : एक अध्ययन

साक्षी डॉ. राजश्री



प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर  
गुरु पुष्कर साधना केंद्र, उदयपुर

प्रकाशक :

**देवेन्द्रराज मेहता**

प्राकृत भारती अकादमी,  
१३-ए, मेन मालवीय नगर,  
जयपुर-३०२०१७ (राज.)  
दूरभाष-५२४८२७, ५२४८२८  
एवं

गुरु पुष्कर साधना केंद्र,  
हिरण मगरी,  
उदयपुर (राज.)

-प्राप्ति स्थान-

रमेश चन्द जी जैन  
चारित्र वाटिका  
म. नं. ३ गली नं. १,  
वर्धमान कॉलोनी,  
भीलवाड़ा (राज.)  
फोन २४३२८

प्रथम संस्करण २००१

मूल्य : २००.०० रुपये

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

लेजरटाईपसैटिंग :

कम्प्यू प्रिण्टर्स,

जयपुर-३

दूरभाष: ३२३४९६

मुद्रक :

कमल प्रिन्टर्स,

जयपुर



## प्रकाशकीय

आचाराङ्ग सूत्र का जैन आगमिक साहित्य में सर्वोच्च स्थान है। भगवान महावीर की वाणी उनके गणधरों ने द्वादशांग के रूप में गुंफित की थी। प्रचलित भाषा में गणधरों द्वारा सङ्कलित संपादित भगवान महावीर के उपदेश बारह अंग शास्त्रों के रूप में हमें उपलब्ध हुए। इन बारह अंग शास्त्रों में प्रथम नाम आता है आचाराङ्ग सूत्र का। यही नहीं भाषा-शास्त्रियों की शोध से यह प्रकट होता है कि आज उपलब्ध जैन साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ आचाराङ्ग सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध है।

रचना की दृष्टि से जैन परम्परा की एक मान्यता है कि तीर्थंकर तीर्थ प्रवर्तन करते समय सर्वप्रथम पूर्वगत की रचना करते हैं और तब द्वादशांगी की। दूसरी मान्यता यह है कि तीर्थंकर सर्वप्रथम आचाराङ्ग का उद्बोधन करते हैं और फिर शेष अन्य सूत्रों का। जो भी हो यह निर्विवाद है कि तीर्थंकर की वाणी का जो अंश आज उपलब्ध है उसमें सर्वप्रथम आचाराङ्ग ही है।

जैन आगमों के चूर्णिकार तथा वृत्तिकार तो यहाँ तक कहते हैं कि अतीत में जितने भी तीर्थंकर हुए हैं उन सभी ने सर्वप्रथम आचाराङ्ग का ही उपदेश दिया था। वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में जो तीर्थंकर विद्यमान हैं वे भी सर्वप्रथम आचाराङ्ग का ही उपदेश देते हैं तथा भविष्य काल में जितने तीर्थंकर होंगे वे सभी सर्वप्रथम आचाराङ्ग का ही उपदेश देंगे।

जैन धर्म में मुक्ति मार्ग की दिशा में आचार का महत्व सर्वोपरि है। आचार के अभाव में दर्शन और ज्ञान दोनों औपचारिक हो जाते हैं। यही कारण है कि उपयोग की दृष्टि से भी आचाराङ्ग का सर्वप्रथम स्थान है क्योंकि आचाराङ्ग का प्रतिपाद्य विषय आचार है। आचाराङ्ग में सर्वप्रथम जीव को परिभाषित किया है और मुक्ति मार्ग के आधार के रूप में अहिंसा को प्रतिपादित किया है। दुःख के प्रति संवेदनशील बनने से ही हिंसा के त्याग का मार्ग प्रशस्त होता है। जो अन्य जीवों के दुःख का निमित्त बनता

है वही कर्म है और कर्म एक बंध है जो पुनर्जन्म की शृंखला का आधार है ।

इस बंध से मुक्ति का मार्ग अहिंसा है । जो जीवन शैली आत्मकल्याण के मार्ग को प्रशस्त कर मुक्ति की ओर ले जावे वह आचार है । जीवनचर्या में हेय और श्रेय का निरूपण आचाराङ्ग में विस्तार से किया है । जीव के अस्तित्व और स्वरूपों से आरंभ कर पुनर्जन्म की शृंखला से मुक्त होने तक जीवन के सभी पहलुओं की चर्चा संक्षिप्त किन्तु सटीक सूत्रों में बांध देना आचाराङ्ग की विशेषता है । एक-एक शब्द ज्ञान की जाज्वल्यमान शिखा जैसा है जिसका प्रकाश चहुँ ओर विस्तीर्ण होता रहता है । यही कारण है कि आचाराङ्ग पर आधारित व्याख्या साहित्य विशाल है ।

आचाराङ्ग के गहन और व्यापक विषय को स्पष्ट करने के प्रयत्नों में सर्वप्रथम निर्युक्ति साहित्य का स्थान है । जैन आगम साहित्य पर प्राकृत भाषा में जो पद्यबद्ध टीकाएं लिखी गईं वे निर्युक्ति के नाम से जानी जाती हैं । निर्युक्ति में मुख्य रूप से पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या की जाती है । उपलब्ध निर्युक्तियाँ आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) द्वारा रचित अथवा संकलित है ।

निर्युक्ति के पश्चात् भाष्यों की रचना हुई किन्तु आचाराङ्ग पर लिखे गए किसी भाष्य की कोई सूचना प्राप्त नहीं है ।

भाष्यों के पश्चात् चूर्णियों की रचना हुई । जैन आगमों की प्राकृत अथवा संस्कृत मिश्रित व्याख्याएं चूर्णियाँ कहलाती हैं । आचाराङ्ग पर जो चूर्णि उपलब्ध है उसके कर्ता जिनदास गणि माने जाते हैं किन्तु इस संबंध में कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता । आचाराङ्ग चूर्णि में उन्हीं विषयों का विस्तार है जिनकी चर्चा निर्युक्ति में है । इसके अतिरिक्त इसमें महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री भी उपलब्ध है ।

चूर्णि के पश्चात् टीका साहित्य की रचना हुई । संस्कृत भाषा का प्रभाव बढ़ते देखकर जैन आचार्यों ने अपने प्राचीन आगम साहित्य पर संस्कृत भाषा में टीकाओं की रचना आरंभ कर दी । इन टीकाओं में प्राचीन निर्युक्तियों, भाष्यों व चूर्णियों की सामग्री समेटने के अतिरिक्त नए दृष्टिकोण से तथ्यों की पुष्टि भी की गई है ।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण आद्य टीकाकार माने जाते हैं। उनके पश्चात् के टीकाकारों में हरिभद्रसूरि, शीलांकसूरि, वादिवेताल शांतिसूरि, अभयदेवसूरि आदि के नाम आते हैं।

आचाराङ्ग के प्रथम संस्कृत टीकाकार आचार्य शीलांकसूरि थे। ये शीलांकाचार्य तथा तत्त्वादित्य नाम से भी जाने जाते हैं। प्रभावक चरित के अनुसार उन्होंने नौ अंगों पर टीकाएं लिखीं थीं। इस संबंध में अनेक विद्वानों का मत यह है कि इन्होंने केवल आचाराङ्ग तथा सूत्रकृताङ्ग की टीकाएं ही लिखी थीं जो वर्तमान में उपलब्ध भी हैं।

आचाराङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध की वृत्ति के अंत में शीलांकाचार्य तथा तत्त्वादित्य दो नाम दिए हैं तथा कहीं-कहीं शीलांक भी मिलता है। रचना समय गुप्त संवत् ७७२ दिया है। तथा द्वितीय श्रुतस्कन्ध की टीका के अन्त में शक संवत् ७८४ और प्रत्यन्तर में ७९८ लिखा है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि गुप्त संवत् और शक संवत् एक ही है। अतः इन टीकाओं का रचनाकाल विक्रम संवत् ९०७ तथा ९३३ माना गया है।

मूल व निर्युक्ति पर आधारित इस टीका में प्रत्येक विषय पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसकी भाषा और शैली भी सुबोध है। इसमें उपलब्ध तलस्पर्शी विवेचन के कारण आचाराङ्ग पर पश्चाद्द्वर्ती समस्त लेखन इसी वृत्ति के आधार पर किया गया है तथा आज भी इस विषय का आधार ग्रन्थ शीलांकाचार्य की वृत्ति ही है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध शीलांकाचार्य की इसी आचाराङ्ग-शीलाङ्क टीका का विवेचनात्मक एक अध्ययन है। साध्वी राजश्रीजी ने आगम साहित्य का परिचय तथा उसमें प्रस्तुत टीका का महत्वपूर्ण स्थान बताते हुए विभिन्न दृष्टिकोणों से इस टीका का अध्ययन प्रस्तुत किया है। मूल आगम साहित्य के विस्तृत परिचय के साथ ही आगमों के व्याख्या साहित्य का परिचय भी दिया गया है। यही नहीं आगमों के प्रसिद्ध वृत्तिकारों का भी संक्षिप्त परिचय सम्मिलित कर लेने से इस शोध प्रबन्ध का एक संदर्भ पुस्तक के रूप में महत्व बढ़ गया है।

आचाराङ्ग अपने नाम के अनुरूप आचार अथवा सम्यक् आचार या श्रमणाचार का ग्रन्थ है, किन्तु यह केवल नियमावली नहीं है। इसमें आचार के मूलभूत अंग भाव तथा द्रव्य का मार्मिक व सटीक विवरण है और फिर उसके आधार पर क्रमशः आचार का पूर्ण विकसित रूप प्रस्तुत किया



गया है। वृत्ति में किस प्रकार एक-एक विषय और शब्द को विस्तार से समझाया गया है शोधकर्ता ने इसका स्पष्टीकरण किया है।

भगवान् महावीर के समकालीन दार्शनिक परिवेश का परिचय देते हुए जैन दर्शन के आधारभूत तात्वों के परिप्रेक्ष्य में आचाराङ्ग वृत्ति का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन दो अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शीलाकाचार्य द्वारा किया गया आचाराङ्ग का दार्शनिक विवेचन दर्शनशास्त्र के सभी पक्षों को समेटे है। इसमें रहा सैद्धान्तिक विवेचन धर्म और दर्शन के साक्ष्यों को स्पष्ट करता है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोणों से अध्ययन में वृत्तिकार द्वारा उस काल की संस्कृति के विभिन्न पहलुओं की चर्चा को सम्मिलित किया गया है। वृत्ति में चर्चित ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि विषयों का पृथक् अध्ययन रोचक सूचना सामग्री लिए है। यह समस्त विवेचन सामाजिक परिस्थितियों एवं व्यवस्थाओं का विस्तृत लेखा-जोखा उपलब्ध कराता है।

भाषात्मक अध्ययन में सम्पूर्ण विषय को नहीं समेटा गया है। इसमें गद्य-पद्य शैली तथा व्याकरण पर आधारित सूचनाएं संक्षेप में दी गई हैं। इतने भर से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है। कि अर्थ विस्तार के साथ ही भाषात्मक प्रवाह तथा सहज ग्राह्यता इस वृत्ति की विशेषता है।

इस प्रकार पृथक्-पृथक् अध्यायों में इस विस्तृत ग्रन्थ की विभिन्न दृष्टिकोणों से चर्चा प्रस्तुत की गई है। ये दृष्टिकोण हैं— दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक। अन्त में उपसंहार के रूप में वृत्तिकार की आचार संबंधी विवेचना प्रस्तुत की है जो इस वृत्ति का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

जैन श्रमणों में स्वाध्याय व तपश्चर्या की परम्परा तो अतिप्राचीन है और उनकी चर्या में रची बसी है। किन्तु आधुनिक शिक्षाप्रणाली पर आधारित अध्ययन का उसमें समन्वय पिछले कुछ वर्षों से ही आरंभ हुआ है। यह हर्षका विषय है कि कुछ वरिष्ठ श्रमण-श्रमणियों ने इस ओर विशेष रुचि दिखाना आरंभ किया है और अपने शिष्य-शिष्याओं को वर्तमान प्रणाली में उच्चतम स्तर की शिक्षा ग्रहण करने को प्रोत्साहित किया है। श्रमण संघ की लोकप्रिय विदुषि साध्वी श्री चारित्रप्रभाश्रीजी म० भी उन्हीं में से एक है। प्रसिद्धवक्ता होने के साथ ही आपकी लोकप्रियता के पीछे स्पष्ट और तर्कसंगत चिन्तन तथा समन्वय की निष्पक्ष उदारता का भी योगदान रहा है। आपने इस ग्रन्थ का विस्तृत प्राक्कथन लिखकर ग्रन्थ

की गरिमा को बढ़ाया है। आपकी ही सद्प्रेरणा व प्रोत्साहन से साध्वी डॉ. राजश्री जी ने यह शोध प्रबन्ध वैराग्य अवस्था में ही पूर्ण करने के पश्चात् दीक्षा ली थी। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर से पी एच. डी. की डिग्री उसके पश्चात् प्राप्त की है। आशा है आप आगम वाङ्मय पर अपना शोध कार्य भविष्य में भी करती रहेंगी।

श्रमण संघ के दिवंगत आचार्य सम्राट् पूज्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म० से उनके स्वर्गवास से केवल चार दिन पूर्व ही श्री डी. आर. मेहता सा. और मेरी उनसे अंतिम भेंट हुई थी। उसी समय इस शोध प्रबन्ध के संयुक्त प्रकाशन के लिए आचार्यश्री ने संकेत किया था। आचार्यश्री की सत्प्रेरणा से ही श्रमण संघीय साध्वीरत्ना श्री चारित्रप्रभाश्रीजी म. सा. ने इस ग्रन्थ के संयुक्त प्रकाशन हेतु गुरु पुष्कर साधना केन्द्र, उदयपुर को और आर्थिक सहयोग के लिए श्रावकों को प्रोत्साहित किया, एतदर्थ हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

इस शोध ग्रन्थ की व्यापक उपयोगिता को देखते हुए इसे प्रकाश्य शोध ग्रन्थों की शृंखला में सम्मिलित किया गया है। आशा है श्रमण वर्ग, शोधकर्ता तथा सुधी पाठकों के लिए यह अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगा। हम इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्तियों तथा संस्थानों के प्रति आभार प्रकट करते हैं।

महोपाध्याय विनयसागर  
निदेशक  
प्राकृत भारती अकादमी  
जयपुर

## विषय सूची

अध्याय: १.	
आचारांग वृत्ति का समीक्षात्मक अध्ययन	१-५२
अध्याय: २.	
आचारांग वृत्ति का प्रतिपाद्य विषय	५३-११७
अध्याय: ३.	
आचारांग वृत्ति का दार्शनिक अध्ययन	११८-१५५
अध्याय: ४.	
आचारांग वृत्ति में प्रतिपादित जैन धर्म और दर्शन	१५६-१७९
अध्याय: ५.	
आचारांग वृत्ति का सांस्कृतिक अध्ययन	१८०-२०७
अध्याय: ६.	
आचारांग वृत्ति का भाषात्मक अध्ययन	२०८-२३५
अध्याय: ७.	
वृत्तिकार की आचार सम्बन्धि विवेचना परिशिष्ट	२३६-२६२
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	२६३-२६६



## समर्पण

मदीय मनमन्दिर में भगवती रूप वन्दनीय है!  
व्यक्तित्व और कृतित्व के रूप में अनुपम शब्दायित है।  
गुण—गरिमा का ज्योतिर्मय स्वरूप महनीय है।  
अन्तर्मन सुवासित सुमन नंदनवन है।  
जीवन—दर्शन शीतल चंदन उपवन है।  
वचन—चयन सदय—हृदय अभिराम है।  
अध्यात्म कौमुदी ज्योतिपुंज अविराम है।  
मंगल दर्शन करुणा—सदन जन—बोधिका है।  
मनोनुशासन संयम—साधिका आत्म—शोधिका है।  
**चारित्रप्रभा जी** महासती, जिनशासन में दिनमणि।  
प्रतिभा—प्रतिमा गुरु माता श्रमणी—मणि॥  
“राजश्री” श्रीचरणों में समर्पिता है प्रति पल।  
तदपि सश्रद्ध अर्पित है, ग्रन्थ रूप शतदल!!

साध्वी डॉ. राजश्री

## आत्मीय—आशिष

जैन साहित्य यथार्थ अर्थ में जहाँ अगाध अपार महासागर के सदृश्य गहन व गम्भीर है, वहाँ अनन्त अन्तरिक्ष के समान असीम है। प्रस्तुत जैन साहित्य मूलतः प्राकृत भाषा में निबद्ध है, जैन वाङ्मय का प्रचुर प्राचीन विभाग साहित्य है।

जैन आगम शब्द—बिन्दु में अर्थ—सिन्धु को समग्रता से समाहित किये हुए है। प्रस्तुत साहित्य में आचारांग सूत्र शिरसि शेखरायमाण स्थान पर सुशोभायमान है। यह वह आगम रत्न है जिस पर जैन धर्मप्रभावक, पांडित्य—पयोधि श्रीश्रीलांकाचार्य ने अनुपम भाषा—शैली में वृत्ति का प्रणयन किया है। मुझे अतिशय प्रसन्नता है कि मेरी प्रज्ञामूर्ति योग्य शिष्या साध्वी राजश्री जी ने इस वृत्ति का न केवल पारायण किया है, अपितु उस मौलिक एवं मार्मिक वृत्ति पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन पुरस्सर शोध शैली में आलेखन भी प्रस्तुत किया है। साध्वीश्री का यह शोध प्रधान महानिबन्ध पीएच.डी. जैसी उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ और वह डाक्टर की विशिष्ट एवं वरिष्ठ उपाधि से विभूषित हुई। यह उपाधि वस्तुतः उपाधि रूप नहीं अपितु समाधिस्वरूप है, क्योंकि रत्नत्रय में ज्ञान साधना को समाधि के रूप में स्वीकार किया गया है। साध्वीश्री ने यह शोध प्रधान लेखन कर प्रकारान्तर से ज्ञान समाधि का अनुभव किया है और उसका अध्ययन एवं अध्यवसाय सर्वथा सफल हुआ है। मेरी यही आत्मीय आशिष है कि वह आगम साहित्य पर अधिकृत रूप से विलेखन करती हुई जैन साहित्य की श्रीवृद्धि में अवदान प्रदान करे। शारदा पुत्री का यह मूल्यवान उपहार शारदा निधान में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाएगा, ऐसा मुझे आत्मिक विश्वास है। यही मेरी आत्मीय आशीष है।

साध्वी चारित्रप्रभा

ॐ



साध्वीरत्ना श्री चाखत्रप्रभा जी म. सा.



श्रमण संघ की लोकप्रिय साध्वीरत्ना

# श्री चारित्रप्रभा जी म. सा.

## एक पवित्र

श्रमण संघ की लोकप्रिय विदुषी साध्वीरत्ना श्री चारित्रप्रभाजी म. सा. जैन समाज की एक ऐसी सच्ची साध्वीरत्ना हैं, जिनकी विद्वता, दूरदर्शिता, निर्माकता, निष्पक्षता, उदारता, संयम के प्रति सजगता, विनम्रता एवं मधुरता अनुपम है।

आपका जन्म वीरों की भूमि, झीलों की नगरी उदयपुर जिले में बसे एक नन्हे से गाँव बगडुन्दा में हुआ। आपके पिताश्री कन्हैयालालजी एवं माता श्री हंजा बाई धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। उन्हीं के शुभ संस्कारों का बीजारोपण आपके जीवन में देखने को मिलता है। आपने 18 वर्ष की युवावस्था में सन् 1969 में नाथद्वारा में दीक्षा ग्रहण की।

आप प्रसिद्ध वक्ता के रूप में विख्यात, वाणी की जादूगर, स्नेह सौजन्य की साकार मूर्ति, मन-मस्तिष्क एवं व्यवहार की माधुरी छवि, संघ की प्रबल समर्थक एवं प्रेरक विचारों से ओजपूर्ण व गतिशील, समाज सुधारिका, समन्वय एवं शांति की अग्रदूत, टूटे स्नेह तारों के संयोजन की अपूर्व सूझबूझ वाली, अद्वितीय लोकप्रिय, संगठन शक्ति से सम्पन्न, हृदय की कोमलता, विचारों की दृढता, सहस्रों-सहस्र नर-नारियों से पूजित एवं महिमामण्डित होने पर भी आप अति विनम्र हैं। आप अपने सम्प्रदाय की विदुषी साध्वी के रूप में अपनी दूरदर्शितापूर्ण सूझबूझ से अपना दायित्व पूरा कर रही हैं।

आपके महान् व्यक्तित्व से सभी प्रभावित हैं। आपका व्यक्तित्व चित्ताकर्षक, मनमोहक एवं उत्प्रेरक है। आप ज्ञान, वैराग्य और संयम की प्रतिमूर्ति हैं। आपने अल्पवय में ही व्याकरण, काव्य, न्याय, दर्शन, आगम, ज्योतिष आदि विभिन्न शास्त्रों में निपुणता प्राप्त की है, यह आपकी प्रखर बौद्धिक प्रतिभा का परिणाम है। आप दृढ-संकल्प की धनी हैं। आपका चिंतन स्पष्ट, तर्कसंगत एवं विवेकपूर्ण है। आपका चिंतन आत्मकेन्द्रित है, सत्य प्रधान है। आपके चिंतन में मत-पंथ-सम्प्रदाय का कोई अवरोध नहीं है। आप अन्तःकरण से सदा सत्य को समर्पित हैं।

—साध्वी डॉ० राजश्री

# श्रमण संघ की लोकप्रिय साध्वी रत्ना

## श्री चारित्रप्रभा जी म. सा.

### एक परिचय

—साध्वी डॉ. राजश्री

श्रमण संघ की लोकप्रिय विदुषी साध्वी रत्ना श्री चारित्रप्रभा जी म. सा. जैन समाज की एक ऐसी सच्ची साध्वी रत्ना हैं जिनकी विद्वता, दूरदर्शिता, निर्भकता, निष्पक्षता, उदारता, संयम के प्रति सजगता, विनम्रता एवं मधुरता अनुपम है।

आपका जन्म वीरों की भूमि, झीलों की नगरी उदयपुर जिले में बसे एक नन्हें-से गाँव बगडून्दा में हुआ। आपके पिता श्री कन्हैयालाल जी एवं माता हंजा बाई धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। उन्हीं के शुभ संस्कारों का बीजारोपण आपके जीवन में देखने को मिलता है। १८ वर्ष की युवावस्था में आपने सन् १९६९ में नाथद्वारा में दीक्षा ग्रहण की।

आप प्रसिद्ध वक्ता के रूप में विख्यात, वाणी की जादूगर, स्नेह सौजन्य की साकार मूर्ति, मन-मस्तिष्क एवं व्यवहार की माधुरी छवि, संघ की प्रबल समर्थक एवं प्रेरक विचारों से ओजपूर्ण एवं गतिशील, समाज सुधारिका, समन्वय एवं शांति की अग्रदूत, टूटे स्नेह तारों के संयोजन की अपूर्व सूझबूझ वाली, अद्वितीय लोकप्रिय, संगठन शक्ति से सम्पन्न, हृदय की कोमलता, विचारों की दृढ़ता, सहस्रों-सहस्र नर-नारियों से पूजित एवं महिमामंडित होने पर भी आप अति विनम्र हैं। आप अपने सम्प्रदाय की विदुषी साध्वी के रूप में अपनी दूरदर्शितापूर्ण सूझबूझ से अपना दायित्व पूरा कर रही हैं।

आपके महान् व्यक्तित्व से सभी प्रभावित हैं। आपका व्यक्तित्व चित्ताकर्षक, मनमोहक एवं उत्प्रेरक है। आप ज्ञान, वैराग्य और संयम की प्रतिमूर्ति हैं। आपने अल्पवय में ही व्याकरण, काव्य, न्याय, दर्शन, आगम, ज्योतिष आदि विभिन्न शास्त्रों में निपुणता प्राप्त की है यह आपकी प्रखर बौद्धिक प्रतिभा का परिणाम है। आप दृढ़-संकल्प की धनी हैं। आपका चिंतन स्पष्ट, तर्कसंगत एवं विवेकपूर्ण है। आपका चिंतन आत्मकेन्द्रित है, सत्य प्रधान है। आपके चिंतन में मत-पंथ-सम्प्रदाय का कोई अवरोध नहीं है। आप अन्तःकरण से सदा सत्य को समर्पित हैं।



## स्वकथ्य

आगम की महनीयता के गुण जिस हृदय में प्रविष्ट कर जाते हैं, वह आगमविज्ञ बन जाता है। आगम के रस में निमग्न व्यक्ति महामना भी बन जाता है और वही परमागम के यथार्थ स्वरूप में विचरण करके गोते लगाने लगता है, तब उसे ऐसा पथ मिलता है, जिसकी राहों में सम्यक्त्व की महिमा, ज्ञान की गरिमा और चारित्र्य की चारुश्री प्रविष्ट करके उस मार्ग की ओर ले जाती है, जो फूलों की सेज बन जाता है। आगम का रस मौन है, इसलिए तो उसे समझ पाना दुरूह भी है। पर उस दुरूहता के भावों में जब कोई प्रविष्ट हो जाता है तो वह संयमपथगामी साधक बन जाता है।

“मुनेरयं मौनः— संयमो, यदि वा मुनेर्भावः मुनित्वं तदप्यसावेव मौनं वा वाचः संयमनम् ।”

वृत्तिकार ने साधक को मौनी कहा है इसलिए मुनि का मौन संयम है। मुनि का भाव भी संयम है। मुझे भी गुरु-गुरुणी परम्परा से संयम प्राप्त हुआ और उसी संयममार्ग में प्रविष्ट होकर मैंने विनीत भाव से योग्य शिष्या बनने की कोशिश की। योग्य शिष्या बन पाई या नहीं, फिर भी मैं जिस मार्ग पर चल रही हूँ, उस मार्ग पर चलते हुए ज्ञान की पिपासा को शांत करने के लिए गुरुणी मैया का अनन्य स्नेह एवं वरदहस्त उच्च शिक्षा की ओर ले जाने में समर्थ हुआ। लौकिक शिक्षा की इतिश्री एम. ए. करने पर हो जाती है, ऐसा मानकर चुप हो जाती हूँ। ध्यान के सूत्रों में अपने आप को समेटते हुए सोचने लगती हूँ कि पूर्व परम्परा से आगत आगम आप्तवचन हैं, वे ही समत्वदर्शी हैं और वे ही मुझ जैसी तुच्छ साधिका के लिए परमार्थ का बोध कराने में समर्थ हो सकते हैं।

दीक्षा के बाद दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, उत्तराध्ययन आदि आगम पढ़ने का क्रम भी बना रहा। सिद्धांत के सूत्रों ने वीतराग वाणी को और अधिक समझने की प्रेरणा दी। साध्वी चारित्रप्रभाजी म. सा. एवं अन्य संत-सतियों से विचार-विमर्श किया, अपने भावात्मक सूत्र को अभिव्यक्त किया जो स्वाभाविक धर्म था, उसमें गति कैसे हो, किससे हो और किस तरह से फलीभूत की जा सकती है।

“समियाए धम्मे” जैसा सूत्र हम सुनते थे अब समझाते हैं और इसी के अनुसंधान में प्रविष्ट करके यह पाते हैं कि इस संसार में छह जीव निकाय हैं, वे सभी संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं। ममत्व से घिरे हुए हैं, समत्व क्यों नहीं आ



पाया, इसका क्या कारण है ? इन्हीं भावों में खोकर ज्ञान की पिपासा को और अधिक तीव्र किया। अनुसंधान ने गति दी। सूत्र ग्रंथों को समझने में रुचि जागृत हुई। कार्य सहज हुआ, पर इतना कठिन कि लोहे के चने जैसे चबाना आचारांग और आचारांग की वृत्ति का विषय था।

आचारांग—वृत्ति सरल नहीं है। शीलांकाचार्य भी सरल नहीं हैं। वे मँझे हुए महापंडित, ज्ञानी, प्रज्ञावंत आचार्य थे। उन्होंने आगम के गूढ़ रहस्य में अपने आप को रचा-पचा लिया होगा, तभी सभी प्रकार के विवेचन से युक्त वृत्ति को उपस्थित किया। आचारांग की आचार मीमांसा में निर्युक्तिकार ने सर्वप्रथम प्रश्न किया 'अंगाणं किं सारो ?' तब उत्तर भी 'आयारो' दिया गया। आयार अर्थात् आचार सूत्र की व्याख्या पृथक्-पृथक् रूप में करके जो विषय का खुलासा किया गया है, वह संस्कृत में होने से कठिन तो अवश्य है परन्तु सत्य एवं तथ्य से परिपूर्ण है। उस वृत्ति में व्याख्या, परिभाषा, व्युत्पत्ति, सूक्ति, भेद, प्रभेद, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप आदि का सार तो है ही, अपितु इसके विषय में दार्शनिक विवेचन, धार्मिक विवेचन, नय दृष्टि, प्रमाण मीमांसा, तत्त्व निरूपण एवं विविध प्रकार के सांस्कृतिक मूल्यों का विधिवत्-निरूपण हुआ है।

मेरे आराध्यदेव आचार्य सम्राट स्व. श्री देवेन्द्रमुनि जी म. सा. का आशीष ही इस रूप को साकार कर सका। अतः उनके चरणों में श्रद्धावनत हूँ। परम पूज्य गुरुदेव उपाध्याय पुष्कर मुनि जी म. की स्मृति प्रेरक बनकर इस कार्य में सहयोग प्रदान करती रही। मैं गुरु आदेश को शिरोधार्य करके ही इस गुरुतर भार को उठाने में समर्थ हो सकी हूँ। पूज्या परमविदुषी कुसुमवती जी म. सा. का आशीर्वाद चिरस्मरणीय है।

मुझे लघु बालिका को धर्म मार्ग पर लगाने का श्रेय परमविदुषी श्रद्धानिधि गुरुवर्या श्री चारित्रप्रभा जी म. सा. को प्राप्त होता है। उन्होंने गिरते हुए अँगुली पकड़ कर चलना सिखाया और मुझे इस योग्य बना दिया कि दुरूह कार्य भी सुगम हो गया। मैं परम उपासिका चारित्र नायिका, तपोमयी मूर्ति के चरणों में झुककर आशीष की कामना करती हूँ। महोपाध्याय डॉ. श्री राजेन्द्र मुनि जी म. सा. की मुझे इस शोध कार्य में शुभकामनाएँ मिलती रहीं, अतः उनका भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। डॉ. दर्शनप्रभा जी म. सा. का सहयोग भी मुझे समय-समय पर मिलता रहा अतः मैं कृतज्ञ हूँ। साध्वी, विनयप्रभा जी, रुचिका जी, प्रतिभा जी, आभाश्री, मेघाश्री, महिमा जी का सहयोग भी सराहनीय रहा है। मैं श्रमण संघ के इन साधु-संतों की कृपा पात्र रही हूँ अतः उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

डॉ. उदयचन्द जी जैन, उदयपुर की सतत कृपा दृष्टि से इस कार्य को गति मिल सकी है। वे तो इस कार्य के निर्देशक हैं, जिनकी मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगी। अर्थ

सहयोगी व्यक्तियों को भी नहीं भुलाया जा सकता है, वे सभी साधुवाद के पात्र हैं। महोपाध्याय विनयसागर जी का सहयोग अविस्मरणीय रहेगा। उनको भी मैं साधुवाद देती हूँ।

मैं अपनी आराध्या, आस्था की अकम्प लौ गुरुवर्या परमविदुषी श्री चारित्रप्रभाजी म. सा. का किन शब्दों में आभार प्रकट करूँ, यह समझ में नहीं आता। उनके द्वारा दिये गये सदज्ञान के संबल से ही मैं इस कठिन कार्य को पूरा कर सकी हूँ। शोध-कार्य के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मेरे उत्साह को बनाए रखने में तथा अपेक्षित सहायक सामग्री को उपलब्ध कराने में गुरुणी श्री चारित्रप्रभा जी म. सा. का अविस्मरणीय सहयोग रहा है। मेरे चारित्रिक निर्माण में और ज्ञानवर्धन में ये प्रारम्भ से ही मेरी प्रमुख प्रेरणा स्रोत रही हैं। इनके सहयोग के बिना इस शोध-प्रबन्ध की प्रस्तुति कदापि नहीं हो सकती थी।

अन्त में पुनः गुरुणी जी एवं अन्य सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन का सम्पूर्ण श्रेय साहित्यवाचस्पति महोपाध्याय श्री विनयसागर जी को जाता है। उनको एक बार कहा और बड़े ही विनय के साथ उन्होंने प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान कर दी। अन्त में उनको भी मैं साधुवाद देती हूँ और दीर्घायु की मंगल कामना करती हूँ।

साध्वी डॉ. राजश्री

## प्राक्कथन

साहित्य जनचेतना, सामाजिक भावना, वैचारिक दृष्टिकोण और जीवन के विभिन्न आयामों की अभिव्यंजना से पूर्ण होते हैं। इनके चिंतन में संस्कृति की आत्मा प्रवाहित रहती है, जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक नियमों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है, इनके अंतःकरण में जहाँ आंतरिक भावों-विचारों, नियमों एवं आदर्श गुणों का समावेश होता है, वहीं मानवीय समस्याओं के निदान भी व्याप्त होते हैं। इसलिए साहित्यकारों ने संस्कृति की मूल चेतना को सौंदर्य के रूप में अभिव्यक्त किया, जिसे अनुभूति का भण्डार कहा जाता है और जब यही अनुभूति समाज, देश, राष्ट्र आदि से ऊपर उठकर धर्मचेतना का स्वरूप ले लेती है तब वही साहित्य मानवीय चेतनाओं के आभ्यंतर मूल्यों की स्थापना करने लगते हैं। साहित्य की यह सर्वोत्तम धारा आत्म-संस्कृति की धारा बन जाती है जो कल्याण पथ के सौंदर्य को अभिव्यक्त करती है।

हृदयगत सौंदर्यानुभूति के प्राणवान् चित्रों को आगम साहित्य में पूर्ण रूप से देखा जाता है, जिसमें जीवन के अध्यात्म मार्ग का स्वस्थ चित्रण उभर कर आता है, इसका रसास्वादन जो व्यक्ति करता है, वह जीवन के श्रेष्ठतम मार्ग को प्राप्त हो जाता है। आगम साधु-साधकों के साधना का विशिष्ट ज्ञान है, यह ज्ञान आदिपुरुष ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थंकर महावीर की देशना के रूप में प्रचलित हुआ। महावीर के उपदेश जो जिस रूप में थे, वे उससे पहले चौदह पूर्वों के रूप में प्रचलित थे, वे ही चौदह पूर्व महावीर के पश्चात् भी प्रचलित रहे परन्तु कुछ समय बाद उसमें कमी आ गई, जिससे हजारों वर्षों का पूर्व ज्ञान क्षीण होने लगा, महावीर के प्रधान शिष्य गौतम आदि ११ गणधरों ने जो जिस रूप में अर्थ था, उसे सूत्र रूप में निबद्ध किया। उन्हीं सूत्र ग्रंथों की विधिवत् व्यवस्थित करने के लिए कई प्रकार की वाचनाएँ हुईं, उन्हें वीर निर्वाण संवत् ९८० में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने सौराष्ट्र के वल्लभी नगर में लिपिबद्ध कराया, वही अंग-उपांग आदि के रूप में प्रचलित हुआ; जिसे पूर्व परम्परा से आगत आगम कहा गया।

### आगम साहित्य का वर्गीकरण—

साहित्य विधा की दृष्टि से इसकी भाषा पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि जो कुछ भी प्रारम्भ में था। वह प्राकृत भाषाओं में निबद्ध हुआ, इसलिए साहित्यकारों ने भाषा की दृष्टि से इसका विभाजन अग्रकित रूप में किया—

- (१) अर्द्धमागधी साहित्य,
- (२) शौरसेनी साहित्य,
- (३) महाराष्ट्री साहित्य,
- (४) नाटक साहित्य,
- (५) मागधी साहित्य,
- (६) पैशाची साहित्य,
- (७) अपभ्रंश साहित्य ।

### साहित्य का काव्यात्मक वर्गीकरण—

- (१) आगम साहित्य,
- (२) शिलालेखी साहित्य,
- (३) शास्त्रीय काव्य,
- (४) खंडकाव्य साहित्य,
- (५) चरित्रकाव्य,
- (६) मुक्तककाव्य,
- (७) सट्टक,
- (८) कथा साहित्य,
- (९) चंपू काव्य,
- (१०) स्तुति काव्य आदि ।

### आगम साहित्य का वर्गीकरण—

मूलतः आगम भाषा की दृष्टि से अर्द्धमागधी और शौरसेनी इन दो प्राकृत भाषाओं में निबद्ध है। महावीर के समस्त वचन इन दोनों ही भाषाओं में हैं। अर्द्धमागधी भाषा एवं शौरसेनी भाषा का अपना विशाल क्षेत्र है, उनका विशाल साहित्य है, इसका वर्गीकरण इस प्रकार है—

- (१) अर्द्धमागधी आगम साहित्य,
- (२) अर्द्धमागधी आगम का टीका साहित्य,
- (३) शौरसेनी आगम साहित्य,
- (४) शौरसेनी आगम का टीका साहित्य,
- (५) सिद्धांत एवं कर्म साहित्य ।

### अनुयोग की दृष्टि से आगम—

- (१) चरण-करणानुयोग,
- (२) धर्म-कथानुयोग,

(३) गणितानुयोग,

(४) द्रव्यानुयोग ।

### आगम स्वरूप एवं विश्लेषण—

आगम भारतीय साहित्य की अनुपम निधि है, इनमें ज्ञान-विज्ञान का अनुपम एवं विराट स्वरूप है, इसके परिशीलन में साधना के स्वर, त्याग की भावना, वैराग्य की परिणति, संयम-साधना, आत्मा की शाश्वत सत्ता, इंद्रिय विग्रह आदि के स्वर आदि विद्यमान हैं, जिन्होंने इसको अर्थ रूप में प्रतिपादित किया, वे जितेन्द्रिय जिनेन्द्रदेव थे। उनके आत्म-साधना के स्वर प्राणी मात्र के लिए दिशा-निर्देश देते हैं। उन्हीं की आध्यात्मिक विचारणा के आधार पर आप्त वचन या सर्वज्ञ के वचन को आगम कहा गया है।

### आगम शब्द और उसकी सार्थकता—

अथं भासइ अरहा, सुत्तं गन्थन्ति गणहरा निउणं ।

सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ ।<sup>१</sup>

आप्त राग, द्वेष, मोह आदि से रहित होते हैं। उनके वचन में किसी तरह का विरोध नहीं होता, इसलिए उनके वचन अर्थरूप में प्रकट होते हैं। गणधरों के द्वारा उन्हें सूत्रबद्ध किया जाता है, इसलिए वे श्रुत सूत्र कहे जाते हैं और उन्हीं के वचन जिनशासन की प्रभावना के लिए आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध किये जाते हैं। इसलिए आगम वचन को श्रुत या सूत्र कहते हैं। वृत्तिकार ने श्रुत को भगवत् वचन का अनुवाद कहा। वह वचन मांगलिक एवं श्रेय को प्रदान करने वाला है।<sup>३</sup>

सूत्र-श्रुत, ग्रंथ, सिद्धान्त, प्रवचन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापन, आगम,<sup>४</sup> आप्त वचन, ऐतिह्य, आमनाय और जिनवचन<sup>५</sup> ये सभी आगम के वाचक हैं।

### आगम शब्द की व्युत्पत्ति—

“आ-समन्ताद् गम्यते वस्तुतत्त्वमनेनेत्यागमः”<sup>६</sup>

अर्थात् आगम शब्द ‘आ’ उपसर्गपूर्वक ‘गम्’ धातु से निष्पन्न है अर्थात् जो पूर्णरूप से वस्तु तत्त्व का ज्ञान कराता है, वह आगम है। परमार्थ की दृष्टि से आप्त वचन से उत्पन्न अर्थ को आगम कहा जाता है, इससे वस्तु तत्त्व का विशेष स्थान एवं उत्कृष्ट अर्थ का संवेदन भी होता है। स्याद्वादमंजरी में कहा है—

आप्तवचनादाविर्भूतार्थसंवेदनमागमः । उपचारादाप्तवचनं च ।<sup>७</sup>

तीर्थंकर, सर्वज्ञ, आप्त या जिनभगवान के उपदेश कथन, निरूपण या प्रवचन को जैनागम कहा गया। ये सभी वीतरागता के वचन पूर्वापरविरोध से रहित हैं। जिन्हें अंग बाह्य और अंग प्रविष्ट कहा गया। इन्हीं आगमों के अग्रंकित वर्गीकरण किए गए—

- (१) अंग साहित्य,
- (२) उपांग साहित्य,
- (३) मूल साहित्य,
- (४) छेद साहित्य।

### आगमों के प्रचलित नाम—

(क) अंग आगम—(१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायांग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति, (६) ज्ञातृधर्मकथांग, (७) उपासक दशांग, (८) अन्तकृद्दशांग, (९) अनुत्तरोपपातिक, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाक सूत्र, (१२) दृष्टिवाद।

(ख) उपांग आगम—(१) औपपातिक, (२) राजप्रश्नीय, (३) जीवाभिगम, (४) प्रज्ञापना, (५) जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, (६) सूर्यप्रज्ञप्ति, (७) चंद्रप्रज्ञप्ति, (८) निरयावलिा, (९) कल्पावतंसिका, (१०) पुष्पिका, (११) पुष्पचूलिका, (१२) वृष्णिदशा।

(ग) मूल सूत्र—(१) आवश्यक, (२) दशवैकालिक, (३) उत्तराध्ययन, (४) पिण्डनिर्युक्ति-ओघनिर्युक्ति (५) नन्दी, (६) अनुयोगद्वार।

(घ) छेदसूत्र—(१) निशीथ, (२) व्यवहार, (३) दशाश्रुत, (४) वृहत्कल्प, (५) महानिशीथ, (६) पंचकल्प।

आगमों में सभी प्रकार की कलाओं का समावेश है। उनमें मानव सभ्यता के आदिकाल की व्यवस्था, यौगलिक व्यवस्था, समाज-नीति, राजनीति, धर्मनीति, राष्ट्रीयता, कर्म की समीचीनता, आहारशुद्धि, मन की मूल शक्ति, ब्रह्मचर्य की वास्तविकता, शिक्षानीति एवं अन्य कई प्रकार की सामग्रियाँ देखने को मिलती हैं। उनके रहस्य का उद्घाटन आगमज्ञाता आचार्यों, ऋषियों एवं मनीषियों ने विविध व्याख्याएँ करके जो प्रतिपादन किया है, उससे जनसाधारण भी आत्मतत्त्व, परमात्मतत्त्व एवं वस्तुतत्त्व के यथार्थ को समझने में गौरवान्वित होता रहा है; क्योंकि सत्य तथ्य का दर्शन जैन आगमों की विशेषता है, उसी का अर्थ विश्लेषण, चिंतन की ओर प्रेरित करता है।

### जैन आगमों का व्याख्या साहित्य—

व्याख्याकार आगम के मूल उद्देश्य को लेकर पाठक की जिज्ञासा को शांत करना चाहता है, इसलिए उसके उद्गम स्थान में प्रवेश करके व्याख्याकार, वृत्तिकार या टीकाकार उसमें सरित्प्रवाह की तरह क्रम-क्रम से शब्द-अर्थ, उनकी परिभाषाएँ, उनकी व्युत्पत्तियाँ, उनके भाव, उनके लाक्षणिक अर्थ आदि की विवेचन प्रकिया नए-नए रूप को प्रदान करती है, जिससे व्याख्या का क्रम समग्र भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है।

युग के अनुसार आगम ग्रंथ प्राकृत भाषा में लिखे गए, उन्हीं पर व्याख्याकारों ने प्राकृत में व्याख्याएँ लिखीं, जिन्हें निर्युक्ति कहा गया। निर्युक्ति में मूल ग्रंथ को



सामने रखकर पारिभाषिक शब्दों की व्याख्याएँ पद्य के रूप में की गईं। जिसकी शैली अत्यन्त गूढ़ है और विषय भी संक्षिप्त है, जिससे आगम के रहस्य को सहज रूप में नहीं समझा जा सकता था। इसलिए कुछ समय पश्चात् आगम सूत्रों की व्याख्याएँ गद्य शैली में होने लगी। गद्यात्मक शैली में प्राकृत और संस्कृत दोनों ही प्रकार के प्रयोगों के आधार पर पद्यात्मक में प्रयुक्त भावों को स्पष्ट किया गया, जिसे चूर्णी कहा गया। इसके अनन्तर भाष्य, टीकाएँ एवं वृत्तियाँ लिखी गईं, जिनका महत्वपूर्ण स्थान है।

### प्रमुख व्याख्या ग्रंथ एवं ग्रंथकार—

आगम पर विविध व्याख्याएँ प्रस्तुत की गईं, वे सभी श्रमण संतों के प्रमुख नायकों के द्वारा की गईं। वे वास्तव में व्याख्याता थे, इसलिए उनके व्याख्यात्मक दृष्टिकोण में ज्ञान-विज्ञान के रहस्य समाविष्ट हो गए। उस व्याख्या साहित्य को निम्न भागों में विभक्त कर सकते हैं—

- (१) निर्युक्ति (निज्जुति),
- (२) भाष्य (भास),
- (३) चूर्णी (चुण्णि),
- (४) वृत्ति,
- (५) टीका,
- (६) टब्बा,
- (७) अंग्रेजी अनुवाद,
- (८) हिन्दी गुजराती व्याख्याएँ।

आचार्य सम्राट देवेन्द्र मुनि ने 'जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा' में आगम के रहस्य को विशेष रूप से प्रतिपादित किया है, उन्होंने उनकी व्याख्याओं का भी परिचय दिया है। इससे पूर्व श्रमण संघ के आचार्यों ने आगमों पर विशेष प्रकाश डाला, उनकी व्याख्याएँ कीं। हिन्दी, गुजराती अनुवाद लिखे और आगमों को जनप्रिय बनाने की लिए विविध समालोचनात्मक निबन्ध लिखे। आचार्य घासीलालजी, आचार्य जवाहर, आचार्य तुलसी, आचार्य आनन्द ऋषि आदि के अतिरिक्त आ. जिनमणिसागरसूरि, महोपाध्याय विनयसागर, आ. महाप्रज्ञ, मुनि चंद्रप्रभसागर, मुनि ललितप्रभ सागर आदि ने भी सूत्र आगमों पर व्याख्याएँ लिखीं, इनके अंतरंग विषय को अनुसंधान की दृष्टि से कई साधु-साध्वियों ने शोध-प्रबन्ध लिखे। अतः यह तो निश्चित ही कहा जा सकता है कि आगम का व्याख्या साहित्य अब भी कुछ करने की ओर प्रेरणा दे रहा है, अतः इसकी गरिमा, महिमा एवं अध्ययन, पठन-पाठन की दृष्टि, जीवनचर्या का अंग बना रहे, जिससे आगम साहित्य की श्रीवृद्धि बनी रहे।

## आगम की निर्युक्तियाँ—

पद्यात्मक शैली में सर्वप्रथम आगमों पर जो प्राकृत भाषा में निर्युक्तियाँ लिखी गईं, वे मुख्य रूप से पारिभाषिक शब्दों की व्याख्याएँ हैं। निर्युक्ति सूत्र और अर्थ की व्याख्या करता है, जिससे निश्चय से अर्थ की युक्ति स्पष्ट होती है। कदा भी है—

निश्चयेन अर्थप्रतिपादिका युक्ति निर्युक्तिः ।

आ. नि. १/२/१

## प्रमुख निर्युक्तियाँ—

(१) आचारांग निर्युक्ति, (२) सूत्रकृतांग निर्युक्ति, (३) दशवैकालिक निर्युक्ति, (४) आवश्यक निर्युक्ति, (५) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, (६) दशाश्रुत निर्युक्ति, (७) बृहद्कल्प निर्युक्ति, (८) व्यवहार निर्युक्ति, (९) सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, (१०) ऋषिभाषित निर्युक्ति। निर्युक्तिकार के रूप में आ. भद्रबाहु का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। जिनका समय वि. सं. ५६२ के लगभग है। इस महान् आचार्य ने अपनी ज्ञान चेतना से जो निर्युक्तियाँ लिखीं, वे अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

## आगम का भाष्य साहित्य—

भाष्यकार ने निर्युक्तियों के रहस्य को खोलने का प्रयास किया, उन्होंने अर्थ बाहुल्य को अभिव्यक्त करने के लिए प्राकृत एवं संस्कृत दोनों ही भाषाओं को आधार बनाया। आचार, विचार एवं व्यवहार की गम्भीरता को अभिव्यक्त करने के लिए सूक्तियाँ, लौकिक कथाएँ एवं दृष्टान्तों को भी समाविष्ट किया। जिन आगमों पर निर्युक्तियाँ लिखी गईं, उन्हीं पर भाष्य नहीं लिखे गए, कुछ सूत्र ग्रंथों को छोड़कर भाष्यकारों ने जो भाष्य लिखे हैं, वे मूल सूत्रों पर हैं। भाष्य साहित्य के भाष्यकार जिनभद्रगणी और संघदास विशेष रूप से माने जाते हैं। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण का समय वि. सं. ६५०-६६० के आस-पास का माना गया है। उनकी रचनाएँ निम्न मानी गई हैं—

- (१) विशेषावश्यक भाष्य—(प्राकृत),
- (२) विशेषावश्यक भाष्य स्वोपज्ञवृत्ति—(संस्कृत गद्य),
- (३) बृहत्संग्रहणी—(प्राकृत पद्य),
- (४) बृहत्क्षेत्र समास—(प्राकृत पद्य),
- (५) विशेषणवती—(प्राकृत पद्य),
- (६) जीतकल्प—(प्राकृत पद्य),
- (७) जीतकल्प भाष्य—(प्राकृत पद्य),

(८) अनुयोगद्वार चूर्णि—(प्राकृत पद्य),

(९) ध्यान शतक—(प्राकृत पद्य)।

उक्त सभी भाष्य श्रमण परम्परा के मूल्यों को भी स्थापित करते हैं। जिनभद्रगणी ने जिस शैली को अपनाया है, वह शास्त्रीय होते हुए भी सरल, सुगम एवं शब्द और अर्थ की गम्भीरता को अभिव्यक्त करने वाली है।

द्वितीय भाष्यकार संघदासगणी का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। वे आगममर्मज्ञ थे। फिर भी उन्होंने श्रमणचर्या के आचार-विचार को बनाए रखने के लिए छेदसूत्रों पर प्रकाश डाला, उन पर लेखनी चलाई और श्रमण-श्रमणियों के प्रायश्चित्त विषयक समस्त कारणों पर इतना अधिक प्रकाश डाला कि उनके एक-एक अंश पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। इनमें समाचारी का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है, जिसमें प्रतिलेखना, निष्कमण, प्राभृतिका, भिक्षा, अल्पकरण, गच्छशतिकारि, अनुयान, पुरःकर्म, ग्लान, गच्छ, प्रतिबद्ध, यथालंदिक, उपरिदोष और अपवाद जैसे विषय को प्रतिपादित किया। इसी में श्रमण-श्रमणियों की मर्यादा, विहार, आहार आदि का उल्लेख भी किया। मूलतः संघदासगणी ने बृहत्कल्पलघु भाष्य और पंचकल्प महाभाष्य जैसे भाष्यों द्वारा श्रमणों के विवेकपूर्वक गमन-आगमन, विहार आदि में लगने वाले दोषों की आलोचना पर विस्तृत प्रकाश डाला।

### आगम का चूर्णि साहित्य—

निर्युक्ति एवं भार्य के पश्चात् चूर्णि साहित्य की रचनाएँ भी विशेष महत्त्व रखती हैं जो प्राकृत और संस्कृत मिश्रित व्याख्याएँ हैं। आगमों पर लिखी गई चूर्णियाँ निश्चित ही अर्थ और शब्द के चूर्ण हैं, रहस्य हैं, भावाभिव्यक्ति है और जन-जन की भावना भी है। इन आगमों के मूल में जीवन जीने की कला भी है। आगमों पर लिखी गई चूर्णियाँ, अंतःसाक्षी का विषय भी अभिव्यक्त करती हैं। चूर्णियाँ आगम एवं आगमेतर दोनों ही प्रकार के ग्रंथों पर लिखी गई हैं, ये चूर्णियाँ निम्न हैं—

आचारांग चूर्णि, सूत्रकृतांग चूर्णि, व्याख्याप्रज्ञप्ति चूर्णि, जीवाजीवाभिगम चूर्णि, निशीथचूर्णि, महानिशीथचूर्णि, व्यवहार चूर्णि, दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णि, बृहत्कल्प चूर्णि, पंचकल्प चूर्णि, ओघनिर्युक्ति चूर्णि, जीतकल्प चूर्णि, उत्तराध्ययन चूर्णि, आवश्यक चूर्णि, दशवैकालिक चूर्णि, नन्दी चूर्णि, अनुयोगद्वार चूर्णि और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति चूर्णि।

इन चूर्णियों के चूर्णिकार जिनदासगणी, सिद्धसेनसूरि, अगस्त्यसिंह स्थविर, वज्रस्वामी आदि हैं। निशीथ, नन्दी, अनुयोगद्वार, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन व सूत्रकृतांग पर जिनदासगणी महत्तर ने चूर्णियाँ लिखीं। सिद्धसेनसूरि ने जीतकल्प चूर्णि, अगस्त्यसिंह ने दशवैकालिक चूर्णि आदि लिखीं। इन चूर्णियों की भाषा संस्कृत एवं प्राकृत मिश्रित है। जो सरल, सुबोध और विषय की गहराई में कई प्रकार की

सामग्रियों को समेटे हुए है, जहाँ इनमें तत्वचिंतन की गहराई है, वहीं सामाजिक चेतना एवं ऐतिहासिक सामग्रियाँ भी विपुल रूप से हैं।

### आगम की प्रमुख वृत्तियाँ—

टीका साहित्य में संस्कृत भाषा की व्याख्याओं का महत्वपूर्ण स्थान है। आगम व्याख्याकारों ने जो टीकाएँ लिखीं, उन्हें वृत्ति नाम दिया; क्योंकि वृत्ति विस्तृत विवेचन को प्रस्तुत करने वाली होती है, जो संस्कृत भाषा के उत्कर्ष को भी प्रतिपादित करती है। जैनाचार्यों ने साहित्य के उत्कर्ष युग में जो विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किए, उनका संस्कृत समाज में समादर हुआ। संस्कृत व्याख्याओं के विविध नाम दिए गए। जिन्हें टीका, वृत्ति, विवृत्ति, विवरण, विवेचन, व्याख्या, वार्तिक, दीपिका; अवचूरी, अवचूर्ण, पंजिका, टिप्पण, टिप्पणक, पर्याय, स्तवक, पीठिका, अक्षरार्थ आदि नाम दिये गए। जैन और जैनेतर दोनों ही काव्यों पर संस्कृत में टीकाएँ लिखी गईं, जो आज भी पूज्य एवं मान्य हैं।

आगमों पर जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक भाष्य स्वोपज्ञवृत्ति लिखी। आचार्य हरिभद्र ने अपने समय में पचहत्तर ग्रंथों की रचना की। उनमें प्राकृत आगमों की वृत्ति के रूप में नन्दीवृत्ति, अनुयोगद्वार वृत्ति, दशवैकालिक वृत्ति, प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्या, आवश्यक वृत्ति आदि प्रमुख हैं। कोट्याचार्य ने विशेषावश्यक भाष्य पर विवरण लिखा। आचार्य गंधहस्ती ने भी आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध पर विवरण प्रस्तुत किया। आ. शीलांक की आचारांग वृत्ति, सूत्रकृतांगवृत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। वादिवेताल शांतिसूरि कृत तिलकमंजरी टिप्पण, जीवविचार प्रकरण, चैत्यवन्दनमहाभाष्य व उत्तराध्ययन वृत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। द्रोणाचार्य ने ओघनिर्युक्ति व लघु भाष्य पर वृत्तियाँ लिखी हैं। आ. अभयदेव की स्थानांगवृत्ति, समवायांगवृत्ति, व्याख्याप्रज्ञप्तिवृत्ति, ज्ञाताधर्मकथावृत्ति, उपासकदशांगवृत्ति, अन्तकृद्दशावृत्ति, अनुत्तरोपपातिकवृत्ति, प्रश्नव्याकरणवृत्ति, विपाकवृत्ति, औपपातिकवृत्ति आदि सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों को लिए हुए हैं। आ. मलयगिरि ने राजप्रश्नीय, जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना, चंद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, नन्दीसूत्र, व्यवहारसूत्र, बृहत्कल्प, आवश्यक, पिंडनिर्युक्ति, ज्योतिषकरण्डक, धर्मसंग्रहणी, कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह, षडशीति, सप्तिका, बृहत्संग्रहणी, बृहत्क्षेत्रसमास आदि पर वृत्तियाँ लिखी हैं।

आचार्य मलधारी हेमचंद्र की आवश्यक टिप्पण, शतक विवरण, अनुयोगद्वार वृत्ति, पुष्पमाला, पुष्पमालावृत्ति, जीवसमासविवरण, भवभावना सूत्र, भवभावना विवरण, नन्दीटिप्पण, विशेषावश्यक भाष्य बृहद्वृत्ति आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आचार्य नेमिचंद्रकृत उत्तराध्ययन की सुखबोधावृत्ति सरल एवं सरस है। चंद्रसूरि ने नन्दीसूत्र, निशीथ, जीतकल्प आदि पर वृत्तियाँ लिखी हैं।

## अन्य आगम टीकाकार—

यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि जैनाचार्य संस्कृत एवं प्राकृत दोनों ही भाषाओं के ज्ञाता थे, उनका जितना सिद्धान्त में ज्ञान था, उतना ही दर्शन, ज्योतिष, कर्म सम्बन्धी गणित, लोकविवेचन आदि में भी था, इसलिए जैनाचार्यों की परम्परा छठी शताब्दी से लेकर अब भी आगमों पर बृहदविवेचन प्रस्तुत करती रही हैं। उनमें तिलकसूरि, क्षेमकीर्ति, भुवनसूरि, गुणरत्न, विजयविमल, हीरविजयसूरि, शांतिचंद्रगणि, हर्षकुल, लक्ष्मीकल्लोलगणि, दानशेखर, विनयहंस, जिनभद्र, नमिसाधु, ज्ञानसागर, माणिक्यशेखर, शुभवर्धनगणि, धीरसुंदर, श्रीचंद्रसूरि, कुलप्रभ, राजवल्लभ, हितरुचि, अजितदेवसूरि, पार्श्वचंद्र, साधुरंग उपाध्याय, नगर्षिगणि, सुमतिकल्लोल, हर्षनन्दन, मेघराजवाचक, भावसागर, पद्मसुंदरगणि, कस्तूरचंद्र, हर्षवल्लभ उपाध्याय, विवेकहंस, ज्ञानविमलसूरि, अजितदेवसूरि, राजचंद्र, रत्नप्रभसूरि, समरचंद्रसूरि, पद्मसागर, जीवविजय, पुण्यसागर, विनयराजगणि, विनयक्षेम, हेमचंद्र, सौभाग्यसागर, कीर्तिवल्लभ, गुणशेखर, लक्ष्मीवल्लभ, भावविजय, धर्ममन्दिर उपाध्याय, उदयसागर, मुनिचंद्रसूरि, ज्ञानशीलगणि, अजितचंद्र, राजशील, उदय-विजय, समयसुंदर, शांतिदेव सूरि आदि प्रमुख टीकाकार हैं। आधुनिक युग में भी मुनि जिनविजय, मुनि पुण्यविजय, जिन मणिसागर सूरि, आ. घासीलाल, मुनि कल्याणविजय, जवाहराचार्य, आचार्य तुलसी, कवि अमरचंद्र, पं. मुनिश्री फूलचंद्र, हस्तीमल, आत्माराम जी, अमोलकऋषि, मालवकेसरी, सोभाग मुनि, मुनि कन्हैयालाल, विजयमुनि, मुनि नथमल, आचार्य देवेन्द्र मुनि, म. विनयसागर, मुनि चंद्रप्रभ सागर, मुनि ललितप्रभ सागर आदि के आगमों पर व्याख्यान एवं विवरण आगम की महती प्रभावना बढ़ा रहे हैं।

## आचारांगवृत्ति और उसका विषय विवरण—

जैन आगमों में आचारांग सूत्र को विशेष महत्व दिया जाता है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं—प्रथम श्रुतस्कन्ध नौ अध्ययनों से युक्त है व द्वितीय श्रुतस्कन्ध पाँच चूलिकाओं के रूप में प्रसिद्ध है। इसी आचारांग के अलग-अलग अध्ययन एवं उद्देशक हैं। प्रथम अध्ययन में सात उद्देशक, द्वितीय में छः, तृतीय में चार उद्देशक, चतुर्थ में चार, छठे में पाँच उद्देशक, सातवें में सात, आठवें में आठ, नवें में नौ, दसवें में ग्यारह उद्देशक, ग्यारहवें में तीन, बारहवें में तीन, तेरहवें में दो, चौदहवें में दो, पंद्रहवें में दो, सोलहवें में दो और सत्रहवें से पच्चीस तक में कोई उद्देशक नहीं है अर्थात् अध्ययनों में उद्देशक विभाग है, वह पच्चासी है। प्रथम श्रुतस्कन्ध की प्रामाणिकता १८००० पद प्रमाण है। इसी श्रुतस्कन्ध का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचनाशैली गद्य व पद्य दोनों ही से परिपूर्ण है। सूत्र और सूत्र की शैली में यति, लय और छंदोमयी दृष्टि है। आचारांग के विवेच्य में प्राणीजगत के सम्पूर्ण जीवन को स्थान दिया गया है। इसके प्रारम्भिक चरण में आत्मदृष्टि से विचार करके छः काय

के जीवों की तुलना मानवीय मूल्यों से की गई। यही विवेच्य जीवन का सर्वोत्तम एवं उत्कृष्ट विवेचन है। मुक्ति और मुक्ति के उपाय, मुक्तिपथगामी की क्रियाएँ आदि इसकी धरोहर हैं।

### आचारांग वृत्ति का मूल्य—

मानवीय दृष्टि से इस पर विचार करते हैं तो यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि आचारांग व उसका विवरण सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय के लिए है। इसके विवरण में सिद्धान्त की गम्भीरता, ज्ञान की गहराई, आचार की सुरभि और दर्शन की महनीयता देखने को मिलती है। शीलाकाचार्य ने अपनी सूझबूझ के आधार पर विषय का जितना खुलासा किया, वह अतिमहत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें परिभाषा, शब्द-विश्लेषण, शब्दव्युत्पत्ति, भेददृष्टि, नय और निक्षेप की शैली आदि सभी कुछ है।

“ॐ नमः सर्वज्ञाय”—इस मंगल अभिव्यक्ति के साथ शीलाकाचार्य ने उपजातिछन्द में अनादिनिधन अनुपम नाना प्रकार के भंगों से सिद्ध के सिद्धान्तों तथा मल को नष्ट करने वाले तीर्थप्रवर्तक के नए समूह का स्मरण किया है। इसमें जगत के हित के लिए वीर प्रभु ने आचारशास्त्र जिस रूप में सुनिश्चित किया, उसको उसी रूप में विवरण सहित विवेचन करने की भावना व्यक्त की गई है।

आचारशास्त्रं सुविनिश्चितं यथा, जगाद वीरो जगते हिताय यः।

तथैव किञ्चिद्गदतः स एव मे, पुनातु धीमान् विनयार्पितागिरः।

इसकी वृत्ति के पूर्व में निवेदन शुभवोध की कामना की गई है, तदनन्तर राग-द्वेष से रहित, दोषों के आत्यंतिकरहित अर्हत् का स्मरण किया गया है। अर्हत् आप्त हैं और आप्त के वचन अनुयोग हैं, वह अनुयोग चार प्रकार का है—

- (१) धर्मकथानुयोग—उत्तराध्ययन आदि,
- (२) गणितानुयोग—सूर्यप्रज्ञप्त्यादिक,
- (३) चरणकरणानुयोग—कर्म और चारित्र ग्रंथ,
- (४) द्रव्यानुयोग—पूर्व ग्रंथ। सम्यक्त्व से युक्त ग्रंथ।

इन अनुयोगों की प्ररूपणा गणधरों के द्वारा की गई। इसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगल स्वरूप भगवत् वचन का अनुवाद या गुणानुवाद श्रुत में है। किसी भी कार्य या श्रुतज्ञान की विशेषता व्यक्त करने में बहुत से विघ्न होते हैं। अकल्याण के कारण भी उपस्थित होते हैं, इसलिए मंगलरूप वचन की प्रतिज्ञा की गई और कहा गया, सभी श्रुतशास्त्र मंगलरूप हैं। ज्ञानरूप होने के कारण से ज्ञान का कर्म निर्जरा में कारण होता है, इसलिए इसकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से की गई है—

“मां गालयत्यपनयति भवादिति मंगलं, माभूद् गलो विघ्नो  
गालो वा नाशः शास्त्रस्येति मंगलमित्यादि”



**आचारानुयोग**—‘आचारस्यानुयोगः आचारानुयोगः’ अर्थात् आचारण का सूत्र के अनुसार योग होना आचारानुयोग है। यह आचारानुयोग द्रव्य, क्षेत्र, काल, वचन, भाव आदि के रूप में भी होता है। आचार के अनुयोग का कथन अर्थ रूप में सर्वज्ञ ने कहा, इसलिए वे राग-द्वेष से रहित जिन हैं, वे तीर्थ हैं। उस तीर्थ मार्ग का अनुसरण करके “आचारसुत्त” का कथन गणधरों ने किया है। यह आचारसुत्त अंगश्रुतस्कन्ध के रूप में विख्यात है। इसको नय और निक्षेप के द्वारा समझा जाता है। इसलिये वृत्तिकार ने आचार की प्रमुखता को सिद्ध करने के लिए नय और निक्षेप की पद्धति को अपनाया है और यह कथन किया है कि आचार का पूर्व में उपदेश निक्षेप है, वही भाव आचार के विषय को लेकर आचार के रहस्य का प्रतिपादन करता है। भावाचार दो प्रकार का है—लौकिक और लोकोत्तर। इसी भाव में ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप आदि के गुणों का समावेश होता है। वृत्तिकार ने इसकी विशेषता को देने के लिए आचार के विविध नाम दिए हैं।

**आयारो आचालो आगालो आगरो य आसासो ।**

**आयरिसो, अंगंति य आङ्गणाऽजाइ आमोक्खा ॥<sup>१०</sup>**

अर्थात् आयार, आचार, आगाल, आगर, आसास, आयरिस, अंग, आङ्गणा, आजाइ और आमोक्ख, इन शब्दों की विस्तार से व्याख्या करके इस बात पर बल दिया है कि सभी आयार तीर्थ के प्रवर्तन में पहले से थे और शेष “अंग आनुपूर्वी से थे,” कहा है—

**सव्वेसिं आयारो तित्थस्स पवत्तणे पढमयाए ।**

**सेसाइं अंगाइं एकारस आणुपुव्वीए ॥<sup>११</sup>**

आयार अर्थात् आचारांग बारह अंगों में प्रथम अंग है। इसमें मोक्ष का उपाय है और यही प्रवचन का सार है। इस सार में छह प्रकार के जीवों के संरक्षण का भाव समाहित है। यही चारित्र का सार भी है। चारित्र के सार के विषय में प्रश्न और उसके उत्तर इस बात को प्रकट करते हैं कि अनुयोग अर्थ सार है, व्याख्यान रूप है और वही ग्रहण करने योग्य है। प्रश्न किया—

अंगाणं किं सारो? अंगों का सार क्या है?

आयारो—आयार—आचार है।

आयरस्स किं सारो? आचार का क्या सार है?

अणुओगत्यो सारो—अनुयोगार्थ सार है।

अणुओगत्यस्स सारो किं? अनुयोग का सार क्या है?

अणुओगस्सपरूवणा सारो<sup>१२</sup>—अनुयोग के अर्थ की प्ररूपणा सार है।

इस प्रश्नोत्तर शैली के उपरान्त वृत्तिकार ने नौ प्रकार की सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया है। इस अभिव्यक्ति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्ण व्यवस्था को देकर लौकिक और लोकोत्तर चारित्र की विशेषता को प्रस्तुत किया है। तदुपरान्त एक श्रुतस्कन्ध के गुणचरण की दृष्टि को नौ अध्ययन तक दी गई है। जो मूलोत्तर गुण के स्थापक हैं, यही आधार है अर्थात् आचारांग है।

पूर्व पीठिका के रूप में आचार की विवेचना के पश्चात् नौ प्रकार के अधिकारों पर विस्तृत व्याख्याएँ दी गई हैं।

**सत्य-परिणामा**—शस्त्रपरिज्ञा के प्रथम अधिकार में जीव एवं प्राणीमात्र के संरक्षण का कथन किया गया है, जीवादि के अस्तित्व का परिज्ञान होने पर निश्चित ही जीव संरक्षण होता है, वह परिज्ञा द्रव्यपरिज्ञा व भावपरिज्ञा के रूप में जगत के सामने आती है, द्रव्यपरिज्ञा सचित का निषेध करती है और भावपरिज्ञा मन, वचन, काय की गतिशीलता पर विराम देती है। अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवों के संरक्षण पर बल देती है। वृत्तिकार ने शस्त्रपरिज्ञा की विस्तृत व्याख्या में जीवों की योनियाँ, उनके सुख-दुःख, उनकी उत्पत्ति, उनके स्थान आदि पर विचार करते हुए यह शिक्षा दी है कि ज्ञान क्रिया से परिज्ञान से या अनुभूति से कर्म समारम्भ रुकता है। “ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्षः”<sup>१३</sup> यह वाक्य इस बात का संदेश देता है कि जिन्होंने ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के समारम्भ/कर्मसमारम्भ को पूर्णरूप से जान लिया है, वह कर्मबंधन से छूटता है व उसे ही मुक्ति होती है। इसके व्यापक वर्णन में सम्पूर्ण पृथ्वी से लेकर वनस्पति के ज्ञान-चेतना पर प्रकाश डाला गया है। इसके मूल में जो कुछ भी समाहित है, उसका सात उद्देशकों में धर्म-दर्शन की दृष्टि से विवेचन किया गया है, जिससे शस्त्रपरिज्ञा के सूत्रों का पूर्ण रूप से ज्ञान होता है।

### लोक विजय अध्ययन—

इस अध्ययन में छह उद्देशक हैं। इसके प्रथम उद्देशक में गुण और मूल स्थान की एकता, इन्द्रियों की शिथिलता, वृद्धत्व में अवगणना, अप्रमाद, संसारासक्ति, धन की अशरणता, स्वकृत कर्म-फल और यौवन में धर्म उद्यम के विषय को स्पष्ट किया गया है। संसार का कारण कषायोदय है और उसके मूल में आठ प्रकार के कर्म हैं, उसके स्थान कामगुण को उत्पन्न करते हैं। मूल और गुण दोनों की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार ने यह भी कथन किया है कि मूल शब्दादि हैं और स्थान कषाय हैं, इनसे संसार बनता है। संसार नारक, तिर्यंच, नर और अमर का नाम है। माता-पिता, भाई-बहिन आदि का स्नेह भी संसार है। इस संसार की समाप्ति से मूल गुणों की उत्पत्ति होती है, अन्यथा जन्म-मरण आदि ही उत्पन्न होते रहते हैं। कहा है—

संसारं छेतुमणो कम्मं उम्पूलाए तदड्डाए  
उम्पूलिज्ज कसाया तम्हा उ चइज्ज सयणाई ।

माया मेत्ति पिया मे भगिणी भाया य पुत्तदारा मे,  
अत्थमि च्चव गिद्धा, जम्पणमरणाणि पावन्ति ॥<sup>१४</sup>

इसके द्वितीय उद्देशक में अरतिनिवारण व उसकी व्याख्या, अनाज्ञावर्ती की उभय-भ्रष्टता, संसारविमुक्त स्वरूप, अनगारस्वरूप, अज्ञानीस्वरूप और ज्ञाता के कर्तव्य को भली-भाँति व्यक्त किया गया है। वृत्तिकार ने शरीर की अवस्था को चार विशेषताओं से पालन करने के लिए कहा है, परन्तु जो व्यक्ति प्रथम अवस्था में अध्ययन नहीं करता, द्वितीय अवस्था में धन नहीं कमाता और तृतीय अवस्था में तप नहीं करता, वह चौथी अवस्था में क्या कर सकेगा? इसके लिए इस प्रकार की सूक्ति दी है—

प्रथमे वयसि नाधीतं, द्वितीये नार्जितं धनम् ।

तृतीये न तपस्तपं, चतुर्थे किं करिष्यति ॥<sup>१५</sup>

इसी प्रसंग में वृत्तिकार ने यह भी कथन किया है कि शरीर अवस्था कौमार, यौवन और स्थविर के भेद से तीन प्रकार की है।

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने ।

पुत्राश्च स्याविरे भावे, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥<sup>१६</sup>

इसी तरह बाल, मध्य और वृद्ध के भेद से भी तीन भेद किए हैं। बाल्यावस्था सोलह वर्ष तक व उसके बाद मध्यम अवस्था तथा सत्तर वर्ष की अवस्था वृद्ध रूप है।

अज्ञानी मोह से आसक्त होता है, वह ज्ञान के अभाव में किसी भी अवस्था को नहीं जान पाता है, इसलिए वृत्तिकार इस बात की ओर संकेत करते हैं कि जो मनुष्य अज्ञानता से रहित हैं, वे ही पारगामी हैं। संसार-सागर से पार होते हैं। “पारं—ज्ञान—दर्शन—चारित्राख्यं”<sup>१७</sup> ।

इसके तृतीय उद्देशक में गोत्राभिमान-परिहार, कर्म-फल का द्रष्टा, मोक्षाचारी का स्वरूप, मृत्यु की अनियमितता, जीवन-प्रियता, धन-संग्रह का परिणाम, विज्ञ को अनुपदेश, अज्ञानी का संसार-भ्रमण आदि के कारणों पर प्रकाश डाला गया है, इसी में “उद्दिष्यते इत्युद्देशः—उपदेशः सदसत्कर्तव्यादेशः”<sup>१८</sup> जहाँ सत् और असत् कर्तव्य का आदेश उद्देश है, जो इसको देखता है, वह पश्यक है “पश्यतीति पश्यकः” “सर्वज्ञस्तुदुपेशवर्ती वा तस्य उद्दिष्यत इत्युद्देशो” इस भाव से वृत्तिकार ने उद्देश के महत्व को सर्वज्ञ के रूप में प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ उद्देशक में भोग से व्याधि, अशांति, धन विभाग होने की बात कही गई है। इसमें आशाओं का त्याग, आसक्ति आदि पर विचार किया गया है। मूल आचारांग के शब्दों को व्युत्पत्ति के रूप में भी दिया गया है। यथा—

संति—शमनं शांतिः—“अशेषकर्मापगमोऽतो मोक्ष एव शांतिरिति”

मरणं—मृत्यते प्राणिनः पौनःपुन्येन यत्र चतुर्गतिके संसारे स मरणः।<sup>१९</sup> इत्यादि

पंचम उद्देशक में भिक्षा की गवेषणा आम-गंध परिज्ञान, क्रयादिनिषेध, कालादिज्ञान, निर्ममत्व, आहार विधि, धर्मोपकरण का अपरिग्रहत्व, संकल्पों का त्याग आदि दिया गया है। षष्ठ उद्देशक में ममत्व बुद्धि के त्याग पर बल दिया गया है एवं इसी में वृत्तिकार ने लोक संज्ञा को गृहस्थ लोक संज्ञा कहा है।<sup>२०</sup>

### शीतोष्णीय अध्ययन—

इस अध्ययन में चार उद्देशक हैं। इसके प्रथम उद्देशक में भाव-जागरण से पूर्व जीवों के लिए यह बोध कराया गया है कि सभी प्रकार के परीषह दुःखरूप हैं, उनके त्याग से व्यक्ति जागृत होता है, अज्ञानता के अभाव का नाम जागरण है।

सुप्ता अमुणी सया मुणिणो जागरंति<sup>२१</sup>—वृत्तिकार ने इस मूल सूत्र पर द्रव्यसुप्त और भावसुप्त की दृष्टि से व्याख्या की है। जो अमुनि/अज्ञानी होते हैं, वे जागते हुए भी सोए हैं और जो धर्म में लगे हुए हैं, वे जागरणशील ज्ञानी हैं, मुनि हैं। मिथ्यात्व रूपी अज्ञान से धिरे हुए भावसुप्त आत्माएँ सम्यक्त्व को नहीं जान पाती हैं इसलिए वृत्तिकार ने यह कथन किया कि विवेकी लोक को जानकर इष्ट व अनिष्ट को समझे तथा समदर्शी बना रहे।

इसके द्वितीय उद्देशक में समदर्शी के स्वरूप पर विचार किया गया है और इसी में यह भी उपदेश दिया गया कि तत्त्वज्ञानी मोक्ष के मार्ग को जानकर पाप नहीं करता है।

“समत्तदंसी न करेइ पावं” इस सूक्ति के अनन्तर निष्कामदर्शी, लोकदर्शी, परमदर्शी आदि की व्याख्याएँ की हैं और इसी के तृतीय उद्देशक में सत्य और संयम की विशेषताओं को ग्रहण करने के लिए क्रोध, मान, माया और लोभ से हटने की बात कही गई है। शीतोष्णीय अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक में कषाय, त्याग एवं कर्मबंधन, परमार्थ आदि के विषय में विस्तार से विवेचन किया गया है।

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ,

जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ।<sup>२२</sup>

इस सूत्र की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार ने कहा है कि वस्तुतत्त्व का वास्तविक स्वरूप एक के जानने में ही है और जो एक को जानता है, वही उसके निज व पर स्वरूप को जानता है।

सम्यक्त्व अध्ययन—इस अध्ययन में भी चार उद्देशक हैं। ये चारों ही अध्ययन भाव पर बल देते हैं।

## लोकसार अध्ययन—

इस अध्ययन में छह उद्देशक हैं। मूलतः इसमें संसार परिभ्रमण के कारणों पर प्रकाश डाला गया और अंतिम उद्देशक में राग-द्वेष, कषाय एवं विषय आवर्त की विमुक्ति हेतु संवर एवं निर्जरा पर बल दिया गया है। कर्म निर्जरा होने पर जीव मुक्त होता है। मुक्त अवस्था में किसी भी प्रकार का रूप, रस, गंध आदि नहीं रहता।

## धूत अध्ययन—

इस अध्ययन में पाँच उद्देशक हैं। वृत्तिकार ने धूत शब्द की व्याख्या करते हुए कथन किया है कि धूत का अर्थ धुनना या धो डालना है, वह दो प्रकार का है—द्रव्य-धूत व भाव-धूत। वस्त्र आदि को धोना, उसका मल दूर करना द्रव्य-धूत है और आत्मा पर लगे हुए आठ कर्मों को धुनना भाव धूत है। कहा भी है—

उवसग्गा सम्माणयविहूआणि पंचमंमि उद्देसे

द्वधुयं वत्थाई भावधुयं कम्म अट्टविहं।<sup>२३</sup>

धूत अध्ययन के मूल सूत्र में जो गंडी, कोड़ी, राजांसि, मूर्च्छा आदि रोगों का कथन किया गया है, उन सभी सोलह रोगों की वृत्तिकार ने विस्तृत व्याख्या की है। वे रोग कैसे तथा किस कारण से होते हैं। इसका भी कथन किया है। उदाहरण के लिए मधुरोग को लिया जा सकता है, उसे वस्तीरोग कहा है। वस्तीरोग या मधुरोग शक्कर की अधिक मात्रा से होता है, यह रोग भी बीस प्रकार का है। मधुमेह के कारणों व उससे होने वाली व्याधियों को भी स्थान दिया गया है।<sup>२४</sup> इसी धूत अध्ययन में योनि दृष्टि को भी निरूपित किया गया है। प्रत्येक जीव की अलग-अलग योनियाँ हैं, उनमें दुःख-सुख का अनुभव होता है।

बाल्यकाल से लेकर रोगों से शोक, वियोग, दुर्योग व दोष आदि होते हैं। ये मृत्युपर्यंत रहते हैं। प्रत्येक योनि में बहुत दुःख हैं, कर्म करने में भी दुःख हैं, बल की कमी होने में भी दुःख हैं अर्थात् बाल्यावस्था से लेकर अंत तक अनेक रोगों से घिरा हुआ जीव चिकित्सा के लिए आतुर रहता है, अतः जीव को आत्मा की वास्तविकता जानने के लिए धर्माचरण की ओर प्रवृत्ति आवश्यक है। अठारह शील गुणों से अलंकृत व्यक्ति सम्यक्त्व को प्रकाशित करता है, अतः सम्यक्त्व के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

## महापरिज्ञा अध्ययन—

इस अध्ययन को प्रायः लुप्त माना गया है, वृत्तिकार ने भी यह स्पष्ट करते हुए अष्टम अध्ययन की ओर अपनी दृष्टि विस्तृत की है। सप्तम अध्ययन महापरिज्ञा का अध्ययन है, यह अध्ययन व्युच्छिन्न है।

## विमोक्ष अध्ययन—

इस अध्ययन में आठ उद्देशक हैं, यह आठवाँ अध्ययन मूलतः संलेखना व समाधि की विधि की ओर ले जाने वाला है। श्रमण एकत्व भावना से युक्त संलेखना विधि का अनुसरण करता है। उसके अनुसार चलता है और क्रम से पंच महाव्रत का पालन करते हुए अपने धर्म में स्थित होता है। वृत्तिकार ने आगम की दृष्टि को ध्यान में रखकर श्रमणों के लिए एक ही बात दर्शाई है कि अंतिम समय में श्रमण शान्त एवं आत्मकल्याण की कामना करता रहे।

## उपधान श्रुत—

इस अध्ययन के चार उद्देशक हैं। इन चारों में महावीर की चर्या, महावीर की शय्या, महावीर की सहिष्णुता व महावीर की तपश्चर्या पर प्रकाश डाला गया है। वृत्तिकार ने उपधान की व्याख्या इस प्रकार की है। “उप-सामीप्येन धीयते-व्यवस्थाप्यत इत्युपधान”<sup>२५</sup> अर्थात् उप का अर्थ समीपता है, जो उसकी समीपता से अपने आपको व्यवस्थित करता है, स्थापित करता है या ज्ञान करता है वह उपधान है। उपधान दो प्रकार का है—

**द्रव्योपधान**—शय्यादि, सुख-शयन अर्थरूप आलंबन।

**भावोपधान**—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप है।

उपधान की विस्तृत व्याख्या के अनन्तर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की उपधानता को धीर एवं वीर का विशेष गुण माना है। जो श्रमण इनका अनुसरण करते हैं, वे धीर हैं एवं वे ही शिव तथा निर्वाण प्राप्त करते हैं।

आचारांग का द्वितीय श्रुतस्कन्ध चूलिका के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें मूलतः मुनिचर्या को दर्शाया गया है। इसके वृत्तिकार शीलांकाचार्य ने जो विवरण दिए हैं वे धर्म, दर्शन और नीति के गुणों से परिपूर्ण हैं। इसमें पिण्डैषणा, शय्यैषणा, ईर्यावृत्ति, भाषासमिति, वस्त्रैषणा, उच्चारप्रस्रवण एवं भावना के सूत्रों में आचारप्रधान मार्ग पर चलने वाले श्रमणों की यथास्थिति को व्यक्त किया है और यह भी कथन किया है कि चरण, करण और ज्ञान की वृत्ति होने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है, उसके लिए मूलगुण व उत्तरगुण में प्रवृत्ति भी होनी चाहिए। इसी से क्रिया एवं ज्ञान दोनों ही यथेष्ट मार्ग को दर्शाते हैं।<sup>२६</sup>

पिण्डैषणा सूत्र से पूर्व वृत्तिकार ने अर्हम् को मंगल रूप में ग्रहण किया है और फिर द्वितीय श्रुतस्कन्ध की भूमिका प्रारम्भ करते हुए निक्षेपार्थ दृष्टि को व्यक्त किया है और यह भी समझाया है कि जीव-पुद्गल, समय, द्रव्य-प्रदेश और पर्याय अनन्त गुण रूप हैं। साधु-साध्वी, भिक्षु-भिक्षुणी, आचारकल्प की भूमिका में स्थित होकर निर्जराप्रेक्षी होते हैं।<sup>२७</sup> वे आहार आदि की प्राप्ति के लिए राग-द्वेष से रहित



वृत्ति करते हैं। इसी तरह इस परित्याग को महत्व देते हुए सम्यग्धर्म की आराधना करते हैं। तभी वे संयत<sup>२८</sup> बनते हैं।

आचारांग वृत्ति के विषय को समेटने के लिए साध्वी राजश्री ने जो कार्य किया है, उसके विषय में कुछ कह पाना सम्भव नहीं। उन्होंने तो आगम-परम्परा, आचारांग वृत्ति के मूल विषय का विवेचन, आचार-मीमांसा, ज्ञान-मीमांसा, दर्शन-मीमांसा आदि के साथ-साथ जो भाषा-शास्त्रीय अध्ययन दिया है, वह अत्यन्त सराहनीय है। यह वृत्ति का अनुसंधानात्मक रूप समीचीन है। इसमें विराटता है और वस्तु विषयपरक विवेचन भी है। वह अनुसंधानकर्त्री साधुवाद एवं आशिष की पात्र है।

साध्वी चारित्रप्रभा

## सन्दर्भ ग्रन्थ

१. आचारांग वृत्ति, पृ. १
२. आवश्यक निरूक्ति गाथा, पृ. १९२
३. आचारांग वृत्ति, पृ. १
४. अनुयोगद्वार, पृ. ४
५. तत्त्वार्थ भाष्य, १/२०
६. रत्नाकरावतारिका वृत्ति,
७. स्याद्वाद मंजरी, पृ. ३८
८. आचारांग वृत्ति, पृ. १
९. आचारांग वृत्ति, पृ. १
१०. आचारांग वृत्ति, पृ. ३
११. आचारांग वृत्ति, पृ. ४
१२. आचारांग वृत्ति, पृ. ५
१३. आचारांग वृत्ति, पृ. १८
१४. आचारांग वृत्ति, पृ. ६७
१५. आचारांग वृत्ति, पृ. ७०
१६. आचारांग वृत्ति, पृ. ७०
१७. आचारांग वृत्ति, पृ. ७६
१८. आचारांग वृत्ति, पृ. ८३
१९. आचारांग वृत्ति, पृ. ८५
२०. आचारांग वृत्ति, पृ. ९९
२१. आचारांग वृत्ति, पृ. १०१
२२. आचारांग वृत्ति, पृ. ११४
२३. आचारांग वृत्ति, पृ. १५५
२४. आचारांग वृत्ति, पृ. १५७
२५. आचारांग वृत्ति, पृ. १९८
२६. आचारांग वृत्ति, पृ. २८७-८८
२७. आचारांग वृत्ति, पृ. २१५
२८. आचारांग वृत्ति, पृ. २२७



# आचारंग - शीलोकवर्ति

एक अध्ययन





# १

## आगम-विवेचन

श्रमण और वैदिक विचारधारा भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इसके विचारकों और चिंतकों ने नये-नये आयाम प्रस्तुत किये हैं। चिन्तन की गतिवान् परम्परा दोनों ही रूपों में रहेगी। श्रमण चिन्तन के सूत्रधारों ने भ. महावीर उपदिष्ट वचन को जनोपयोगी बनाने के लिए श्रुत के रूप में स्थापित किया है। श्रुत मूलतः वीतराग वाणी है, सर्वज्ञ का सार्वभौमिक दृष्टिकोण है, जगत के समस्त वस्तु तत्त्वों का रहस्य है, जिसे विचारशील श्रुतधारकों द्वारा धारण किया गया, सुरक्षित रखा गया, तदनन्तर लिपिबद्ध किया गया। और यह अद्यतन आगम साहित्य के रूप में उपलब्ध है।

श्रमण संस्कृति की विचारधारा सदैव अध्यात्म चिन्तन को बल देती रही है। उसमें निवृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से निवृत्ति का मार्ग सामने आया।

जैनागम की यह अमूल्य धरोहर भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन जाती है, जिनकी सुरक्षा एवं उपादेयता तात्कालिक परिस्थितियों, धार्मिक चिन्तन से परिपूर्ण भावों, सांस्कृतिक मूल्यों से ओप्त-प्रोत सामग्री आदि से अभिव्यंजित हुई है। जैनागमों की उपादेयता को ध्यान में रखकर अनुसंधान के इस क्रम में नया अध्याय हो सकता है। जैनागमों का चयन जीवन-मूल्यों के चयन से कम नहीं है। इसलिए आगमों में जिस जीवन-मूल्य की चेतना को उजागर किया गया है, उसकी विशेषताओं पर आधारित यह आलेख दिशा-सूचक बनेगा।

### आगम शब्द का प्रयोग—

आगम अनादि है। आप्त के वाक्य के अनुरूप आगम है। जिन्हें आगम, सिद्धान्त या प्रवचन/प्रख्यणा भी कहा जाता था।<sup>१</sup> आप्त आज्ञा आगम है, शासन है, एक-दूसरे के विरोध से रहित वचन रूप आगम है। आगम में असत्य वचन नहीं होते हैं, क्योंकि आगम सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट हैं। उनके वचनों में कहीं भी, किसी भी तरह का विरोध नहीं होता है, इसलिए आगम वचन सत्य पर आधारित हैं और उनका जितना भी प्रतिपाद्य विषय है वह आज भी चिन्तन को प्रस्तुत करने वाला है।

आगम शब्द के विषय में कई दृष्टियों से विचार किया जाता है। वैदिक संस्कृति की अपेक्षा आगम वेद है। बौद्ध विचारधारा में आगम पिटक के रूप में हैं और श्रमण संस्कृति के चिन्तन में आगम श्रुत रूप में हैं। जिन्हें श्रुत, सूत्र, ग्रन्थ,

आचाराङ्ग-शीलाङ्कवृत्ति : एक अध्ययन

सिद्धान्त, वचन, आप्त वचन, उपदेश प्रज्ञापना आदि भी कहा गया है।<sup>1</sup> एतिह आम्नाय, जिन-वचन का नाम ही आगम है।<sup>3</sup>

## आगम की व्युत्पत्ति

**आगम शब्द**—‘आ’ उपसर्ग पूर्वक ‘गम्’ धातु से उत्पन्न हुआ है। ‘आ’ उपसर्ग का अर्थ पूर्ण है जिसे ‘समन्तात्’ शब्द से स्पष्ट किया गया है और ‘गम्’ धातु का अर्थ ‘गति’, चेष्टा या प्राप्ति/उपलब्धि, जो प्राप्त किया जाए, उसे गति कहते हैं।<sup>4</sup> इसलिए आगम की व्युत्पत्ति ‘आ—समन्ताद् गम्यते वस्तुतत्त्वमनेनेत्यागमः’, की जाती है अर्थात् ‘आ’ उपसर्ग से समन्तात् की प्राप्ति जिससे हो, वह आगम वस्तु तत्त्व का बोध कराने वाला है

## आगम का स्वरूप

सम्यक् शिक्षा का बोध कराने वाला विशेष ज्ञान जिसे प्राप्त हो वह ‘आगम’ है, शास्त्र है, आगम शास्त्र है और श्रुत है। श्रुत ज्ञान भी है।<sup>5</sup> आप्त के वचन आदि से होने वाले ज्ञान को भी आगम कहते हैं, क्योंकि वस्तु तत्त्व का परिपूर्ण ज्ञान आगम से ही होता है। इसलिए जिससे वस्तु तत्त्व का परिपूर्ण ज्ञान हो वह आगम है।<sup>6</sup> सकल श्रुत के विषय की व्याप्ति रूप से मर्यादा से जो वस्तु तत्त्व की यथा रूप में प्ररूपणा की जाती है या अर्थ का बोध कराया जाता है वह ‘आगम’<sup>7</sup> है। आगम मूल रूप में सर्वज्ञ उपदिष्ट अर्थ है। गणधरों ने जिन्हें सूत्र रूप में गुंजित किया है तथा उस आगत परम्परा, जो आचार्यों द्वारा यथार्थ स्थान निर्दिष्ट किया हो, वह आगम है। आचारांग वृत्ति में यही कहा गया है। आगम में आप्त का उपदेश है। ‘श्रुतमिति श्रुतज्ञानं’ अर्थात् आगम श्रुत है, श्रुतज्ञान है।

आप्त वचन से उत्पन्न अर्थ ज्ञान ‘आगम’ है। अर्थात् जो आप्त का कहा हुआ है वह वादी-प्रतिवादी द्वारा खण्डित नहीं किया जा सकता। प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों से विरोध रहित है, जिसमें वस्तु तत्त्व का उपदेश है, जो सब जीवों का हित करने वाला है और मिथ्यापथ का खण्डन करने वाला है, वह सत्यार्थ शास्त्र आगम है। आवश्यक निर्युक्ति में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कथन किया है कि अर्हन्त अर्थ रूप में उपदेश देते हैं, गणधर अपनी निपुणता से सूत्र रचते हैं तथा शासन के हित के लिए उन सूत्रों का प्रवर्तन किया जाता है। आचार्य सिद्धसेन ने ‘सम्मइ सुत’ में उपयुक्त कथन किया है। मूलाचार के प्रणेता बट्टेकर ने कथन किया है कि सूत्र गणधर कथित है, प्रत्येकबुद्ध द्वारा निरूपित है, श्रुतकेवली द्वारा प्रतिपादित है। इसके अतिरिक्त आगम दस पूर्व के रूप में भी निरूपित है।

इस तरह आगम के विविध स्वरूप एक ही विषय को प्रतिपादित करते हैं कि आगम पूर्व परम्परा से आगत है। अर्हत् द्वारा अर्थ रूप में कथित है, गणधरों द्वारा सूत्र रूप में निरूपण किया गया है और आचार्यों द्वारा उस श्रुत



विधि को लिपि बद्ध करके अनेक रूपों में विभक्त किया है।<sup>१८</sup> यद्यपि आगम अनादि हैं। वे अर्थागम के रूप में हैं और सूत्र आगम रूप में भी हैं फिर भी आगम की अक्षय निधि सभी तरह से अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आगम के विषय में बहुत कुछ कहा या लिखा जा सकता है, परन्तु उसके विस्तार में न जाकर उसकी सामान्य जानकारी से पूर्व आगम जिस रूप में हमारे सामने आए उनका उल्लेख भी करना आवश्यक है।

### आगम वाचना

जो आगम श्रुत रूप में पूर्व परम्परा से चले आए हुए थे, जिसकी श्रुत धारा अबाध गति से चलती रही वे श्रुत ज्ञान के विषय से औसत होने लगे तब श्रुत परम्परा की सुरक्षा का उपाय किया गया होगा।

आगम, जो पूर्व में श्रुत के रूप में विख्यात थे, महावीर के पश्चात् उन्हें विधिवत् ज्ञान, साधना एवं स्मृति के आधार पर लिपिबद्ध किया गया। आचार्यों ने समय-समय पर विविध वाचनाएँ कीं। उनके आधार पर आगम को सुरक्षित किया गया। आगम की प्रचलित वाचनाएँ विचारकों की दृष्टि से निम्न प्रकार हैं—

१. **पाटलीपुत्र वाचना**—यह प्रथम वाचना महावीर निर्वाण के पश्चात् (१६० वर्ष के पश्चात्) पाटलीपुत्र-पटना में बारह वर्ष के भीषण अकाल के पश्चात् हुई थी<sup>१९</sup>, जिनमें ग्यारह अङ्गों का संकलन किया गया। बारहवें अङ्ग ग्रन्थ के ज्ञाता भद्रबाहु स्वामी थे।

२. **द्वितीय वाचना**—महावीर निर्वाण के १६० वर्ष के पश्चात् सम्राट खारवेल के समय में द्वितीय वाचना हुई थी। हाथी गुंफा शिलालेख से यह स्पष्ट है।<sup>२०</sup>

३. **मथुरा वाचना**—वी. नि. सं. ८२७-८४० में आचार्य स्कन्दिल ने अपने नेतृत्व में श्रमण संघ का सम्मेलन बुलाया। उस समय स्कन्दिलाचार्य ने मथुरा में आगमों की सुरक्षा एवं विवेचन की दृष्टि से सम्मेलन कराया, जिससे श्रुत ज्ञान का विलुप्त भण्डार पुनः प्रकाश में आया।

४. **वल्लभी वाचना**—वी. नि. सं. ८२७-८४० में आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता में यह वाचना सौराष्ट्र प्रान्त के वल्लभी नगर में हुई थी, जिसे नागार्जुनीय वाचना भी कहा जाता है।<sup>२१</sup>

५. **वल्लभी वाचना**—देवर्धिगणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में पुनः श्रमण संघ का सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें श्रुत साहित्य के अंशों को पाठ-पाठान्तों के रूप में भी स्थान दिया गया है। देवर्धिगणी की यह वल्लभी वाचना सम्पूर्ण आगम साहित्य की प्रचलित परम्परा की साक्षी है अर्थात् आगम अङ्ग आगम आदि साहित्य का सम्पूर्ण विभाजन विषय आदि की दृष्टि से इस वल्लभी वाचना में स्पष्ट हुआ है।

## आगम साहित्य का मौलिक रूप

आगम साहित्य की मूलतः दो प्रचलित परम्पराएँ हैं—(१) शौरसेनी आगम और (२) अर्धमागधी आगम ।

### अनुयोग दृष्टि से आगम

अनुयोग सूत्र और अर्थ के विषय को प्रतिपादित करने वाला एक विशेष अध्ययन है जिसमें विषय के अनुसार विषय-वस्तु का प्रतिपादन किया जाता है। अनुयोग के चार प्रकार हैं—

१. चरणकरणानुयोग २. धर्मकथानुयोग ३. गणितानुयोग ४. द्रव्यानुयोग ।

चरणकरणानुयोग में श्रमणों के आचार-विचार की प्ररूपणा है। धर्मकथानुयोग में चरित्र, दृष्टान्त एवं कथा आदि का निरूपण किया गया है। गणितानुयोग में गणित एवं ज्योतिष आदि विषयों का निरूपण और द्रव्यानुयोग में आध्यात्मिक विषय सम्बन्धित ज्ञान की चर्चा है।

### आगमों का वर्गीकरण

अर्हतप्रणीत वचन दो तरह के हैं—

(१) अङ्ग प्रविष्ट और (२) अङ्ग बाह्य ।<sup>१२</sup>

अङ्ग आदि ग्रन्थों का विभाजन इन्हीं दो रूपों में हुआ है। अङ्ग प्रविष्ट में बारह अङ्गों को स्थान दिया है।

अङ्ग बाह्य में (१) उपांग (२) छेद सूत्र (३) मूल सूत्र (४) प्रकीर्णक ये भाग हैं। अङ्ग प्रविष्ट को पुरुष के अङ्ग की तरह स्थान दिया गया है, जैसे—मनुष्य के दो पैर, दो जंघाएँ, दो उरू, दो गूत्रार्थ, दो बाहु, ग्रीवा और सिर, ये बारह ही होते हैं, वैसे ही ऋतु पुरुष के आचारांग आदि बारह ही अङ्ग माने गये हैं। करण, नासिका, चक्षु, हाथ आदि उपांग हैं। उपांग साहित्य का विवेचन तत्त्वार्थ भाष्य में किया गया है। छेद सूत्रों का भी उल्लेख है। अङ्ग एवं उपांग आदि सूत्रों के विवेचन के विवाद में न पड़ कर वर्तमान में प्रचलित आगम साहित्य का संक्षिप्त परिचय ही यहाँ दिया जा रहा है।

### आगम साहित्य

ग्यारह अङ्ग ग्रन्थ—१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. भगवती, ६. ज्ञातृधर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृद्दशा, ९. अनुत्तरोपपातिक, १०. प्रश्नव्याकरण और ११. विपाकसूत्र ।

बारह उपांग—१. औपपातिक, २. राजप्रश्नीय, ३. जीवाभिगम, ४. प्रज्ञापना, ५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ६. सूर्यप्रज्ञप्ति, ७. चन्द्रप्रज्ञप्ति, ८. निरयावलिया, ९. कल्पवंतसिका, १०. पुष्पिका, ११. पुष्पचूलिका और १२. वृष्णिदशा ।

मूल सूत्र—१. आवश्यक २. दशवैकालिक ३. उत्तराध्ययन ४. नन्दी ५. अनुयोग द्वार और ६. पिण्डनिर्युक्ति ।

छेद सूत्र—१. निशीथ, २. महानिशीथ, ३. बृहत्कल्प, ४. व्यवहार, ५. दशाश्रुतस्कन्ध और ६. पञ्चकल्प ।

दस प्रकीर्ण—१. आतुरप्रयाख्यान, २. भक्तपरिज्ञा, ३. तन्दुलवैचारिक, ४. चन्द्र वेध्यक, ५. देवेन्द्रस्तव, ६. गणिविद्या, ७. महाप्रत्याख्यान, ८. चतुःशरण, ९. वीरस्तव और १०. संस्तारक ।

## आगम साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा

### अङ्ग साहित्य—

१. आचारांग—आयारो, आचारांग एवं आयारांग के नाम से प्रसिद्ध यह आगम अङ्ग ग्रन्थों में महत्वपूर्ण माना गया है। वृत्तिकार ने इसे अङ्गों का सार कहा है।<sup>१३</sup> आचार-विचार एवं श्रमण-श्रमणियों के स्थान आदि का विवेचन करने वाला आचारांग सूत्र दो श्रुत स्कन्धों में विभक्त है। इसके प्रथम श्रुत में नौ अध्ययन हैं, जो बंधचेर नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें ४४ उद्देशक हैं भाषा, विषय, वर्णन आदि की दृष्टि से प्रथम श्रुत स्कन्ध अधिक मौलिक और प्राचीन माना जाता है। द्वितीय श्रुत स्कन्ध में १६ अध्ययन हैं, इन अध्ययनों में मूलतः श्रमण चर्या के विषयों को प्रतिपादित किया गया है।

२. सूत्रकृतांग—यह सूयगडांग, सूतगंड, सूतकंड या सूयगंड नाम से प्रसिद्ध है।<sup>१४</sup> यह द्वितीय आगम अङ्ग ग्रन्थ ज्ञान, विनय, क्रिया आदि दार्शनिक विषयों का और अन्य मत-मतान्तरों की मान्यताओं का विवेचन करता है। श्रमण भगवान् महावीर के समय में प्रचलित ३६३ मतों का उल्लेख इस आगम में किया गया है।<sup>१५</sup> स्वसमय और परसमय की सूचना देने के कारण यह सूत्रकृतांग ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें श्रमणों की साधना और उनके आचार-विचार का भी विवेचन किया गया है। यह आगम दो श्रुत स्कन्धों में विभक्त है। प्रथम श्रुत स्कन्ध में १६ अध्ययन हैं, जिनमें स्वसमय और परसमय का विवेचन है। इसमें पञ्च महाभूतवादी मान्यताओं का उल्लेख है। आत्मा की अद्वैत दृष्टि, जीव की शरीरवादी दृष्टि, अक्रियावादी, आत्मषष्ठवादी, पञ्चस्कन्धवादी, क्षणिकवादी, ज्ञानवादी, नियतिवादी, लोकवादी आदि के विचारों का विवेचन एवं तत्सम्बन्धी दोषों का निराकरण तथा स्वपक्ष का विवेचन इस श्रुत स्कन्ध की विशेषता है।

द्वितीय श्रुत स्कन्ध भी दार्शनिक दृष्टि को प्रतिपादित करने वाला है। इसमें सात अध्ययन हैं, वे दार्शनिक मतों के साथ सांसारिक विषयों के परित्याग का कारण प्रस्तुत करते हैं। गद्य-पद्य प्रधान यह अङ्ग ग्रन्थ भाषा और विषय की दृष्टि से दार्शनिक जगत में जितना प्रसिद्ध है, उतना ही भाषा वैज्ञानिक जगत में भी प्रसिद्ध है।

३. स्थानांग—इस सूत्र में दस अध्ययन हैं जिन्हें स्थान कहा गया है। इन दस स्थानों में धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल—इन छः द्रव्यों का

आचाराङ्ग-शीलाङ्कवृत्ति : एक अध्ययन

विवेचन है। ७८३ सूत्रों में विभक्त यह सूत्र ग्रन्थ जीव-अजीव आदि के भेद और उनके गुण पर्यायों की संख्याओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है।

४. **समवायांग**—एक संख्या से लेकर दस तक की संख्या विविध स्थानों को निर्धारित करने वाली है। दस के अतिरिक्त दो, दो संख्या वाले स्थान भी इसमें हैं। इस तरह यह संख्याओं के आधार पर जीवादि द्रव्यों की प्ररूपणा करने वाला महत्त्वपूर्ण अङ्ग ग्रन्थ है। एक से लगा कोड़ाकोड़ि की संख्याओं के आधार पर विषय की वस्तु का विवेचन किया गया है।

एक वस्तु में आत्मा, दो वस्तु में जीव और अजीव राशि, तीन में तीन गृहित, चार में चार कषाय, पाँच में पञ्च महाव्रत आदि के स्थानों का निरूपण इस ग्रन्थ में है। समवाय समुदाय को कहते हैं।

५. **व्याख्याप्रज्ञप्ति**—विभिन्न प्रकार की प्ररूपणाओं को प्रतिपादित करने वाला यह अङ्ग ग्रन्थ प्रश्नोत्तर शैली के लिए प्रसिद्ध है। इसमें जीवादि पदार्थों की व्याख्याओं का प्ररूपण किया गया है। इसमें ३६,१०० प्रश्नों के उत्तर हैं जो भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न व्यक्तियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के समाधान हैं। प्रश्नकर्ता गौतम गणधर हैं और समाधानकर्ता भगवान् महावीर। इसमें दार्शनिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, तात्विक एवं गणित सम्बन्धी विषयों का विवेचन प्रश्नोत्तर रूप में ही है।

भगवती सूत्र के रूप में प्रसिद्ध यह व्याख्याप्रज्ञप्ति सांस्कृतिक सामग्री को प्रस्तुत करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जा सकता है; क्योंकि इसमें नगर, जनपद, राज्य, वैभव, दास-दासी आदि का भी विवेचन है। इसमें कुछ जीवन घटनाओं और कथाओं का भी उल्लेख है, इसलिए यह विविध विषयों का शब्दागार भी है।

६. **ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र**—प्रस्तुत आगम दो श्रुत स्कन्धों में विभक्त है। प्रथम श्रुत स्कन्ध में १९ अध्ययन हैं। इन अध्ययनों में विविध कथाएँ, उप कथाएँ, दृष्टान्त, उप दृष्टान्त एवं उदाहरण हैं। जो ज्ञातृ पुत्र महावीर के धर्म प्रधान प्रसंगों को प्रस्तुत करते हैं। ज्ञाता का अर्थ है उदाहरण रूप और धर्मकथा का अर्थ है धर्म प्रधान कथानक। अतः ज्ञान धर्म कथा उदाहरणों के माध्यम से धर्म साधना की प्रक्रिया को समझाने वाला महत्त्वपूर्ण आगम ग्रन्थ है। इसमें विविध दृष्टान्तों एवं रूपकों के माध्यम से विनय की शिक्षा दी गई है। पञ्च महाव्रतों की महिमा का गुणगान किया गया है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र श्रेष्ठता का परिचय दिया गया है। महापुरुषों के चरित्र-प्रधान कथानकों के माध्यम से साधना पथ की प्रेरणा दी गई है। प्रथम श्रुत स्कन्ध साधु एवं साध्वियों के लिए साधना के मार्ग को प्रस्तुत करने वाला है।

द्वितीय श्रुत स्कन्ध में एक अध्ययन है जो दस भागों में विभक्त है, जिसे वर्ग की संज्ञा दी गई है। यह भी संयम साधना की श्रेष्ठता की विवेचना वाला

अध्ययन है। उसकी विभिन्न कथाएँ, उपकथाएँ, दृष्टान्त एवं उदाहरण श्रद्धा को उत्पन्न करने वाले हैं।

इस तरह यह ज्ञाताधर्मकथा अङ्ग ग्रन्थ जहाँ समस्त कथाओं, उपकथाओं, दृष्टान्तों के कारण कथा साहित्य का प्रारम्भिक चिह्न है, वहाँ यह सांस्कृतिक सामग्री का निचोड़ प्रस्तुत करने वाला भी है। इसमें दृष्टान्त, रूपक और कथाओं में विविध नगर, गाँव, उद्यान, वन, नदी, तालाब, राजा, मंत्री, राजपुत्र, श्रेष्ठी, श्रेष्ठीपुत्र, पुत्र-पुत्रवधू माता-पिता, दास-दासी आदि की पर्याप्त सामग्री इसके विषय की गम्भीरता को प्रतिपादित करने वाली है।

७. **उपासक-दशांग सूत्र**—उपासक लोक में पूजित होता है; क्योंकि उसका साधना मार्ग धर्म मार्ग के बारह व्रतों पर आधारित होता है। श्रावक में अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षा व्रत है जो इन व्रतों की आराधना एवं पूर्ण हिंसा आदि व्रतों के त्यागी हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों की उपासना करते हैं। इसलिए वे गृहस्थ धर्म के गुणों पर चलने वाले आंशिक हिंसादि व्रतों के त्यागी श्रमणोपासक हैं, श्रावक हैं या उपासक हैं।

उपासक-दशांग सूत्र दस अध्ययनों में विभक्त है—

१. आनन्द, २. कामदेव, ३. चूलनी पिता, ४. सुरादेव, ५. कुण्डकौलिक, ६. शकडाल पुत्र, ७. महाशतक, ८. नन्दनी पिता, ९. शालिनी पिता और १०. तेतलीपिता (शालीपुत्र)

ये दस महावीर के उपासक हैं इसलिए इसका नाम उपासक-दशांग सूत्र है।

आनन्द आदि दस उपासकों के वैभव, भोग-विलास, धन-धान्य आदि का वर्णन भी कथानकों के प्रसंग में आगया है। ये सभी श्रावक गृहस्थ धर्म में रत श्रावकों के गुणों से अनभिज्ञ थे। जैसे ही महावीर का विचरण उस प्रान्त या नगर में हुआ, उस प्रान्त के नर-नारी धर्म श्रवण हेतु उपस्थित हो जाते थे। उन्हीं के बीच में कुछ ऐसे श्रावक भी धर्म श्रवण करते हैं जो सभी दृष्टियों से समृद्ध थे तथा जो भोग-विलास आदि में डूबे हुए थे। वे भी धर्मकथा या धर्मोपदेश से प्रेरित होकर सर्वप्रथम श्रावक व्रतों को अङ्गीकार कर अपने जीवन की यात्रा का शुभारम्भ करते थे। महावीर के साधना मार्ग पर चल श्रुत अभ्यास, तपश्चर्या, यम-नियम आदि व्रतों को धारण करना प्रमुख उद्देश्य था। नियमानुसार गृहस्थ धर्म में रत १५ कर्मादानों से रहित अपनी जीविका चलाते थे। मूलतः ये आनन्द आदि दस ऐसे श्रावक थे, जिन्होंने साधना मार्ग को अपनाकर समाधिकरण को धारण किया, तदुपरान्त विविध ऐश्वर्य के साथ देवलोक को प्राप्त हुए।

८. **अन्तकृतदशांग-सूत्र**—संसार का अन्त करने वाले १० महान् आत्माओं के जीवन का चित्रण इस आगम ग्रन्थ में है, जिन्होंने अपने जीवन के अन्तिम समय में

केवलज्ञान को प्राप्त करके समस्त कर्मों का अन्त किया है या समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त हुए हैं, उन महान् पुरुषों की जीवनचर्या इस अङ्ग ग्रन्थ में है।

इस आगम ग्रन्थ के अध्ययन वर्ग के रूप में विभक्त हैं। अध्ययन का समूह ही वर्ग है। इसमें वर्तमान समय में होने वाले (महावीर के समय में होने वाले) ९० श्रमण-श्रमणियों का वर्णन है। यह आगम सांस्कृतिक, धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

९. अनुत्तरोपपातिक—प्रस्तुत आगम में प्रभावक दिव्य साधकों की ज्योतिर्मय साधना का वर्णन है। अनुत्तर का अर्थ है—जिससे कोई प्रधान, श्रेष्ठ या उत्तम नहीं है और उपपात<sup>१६</sup> का अर्थ है—जन्म ग्रहण करना।

इसका साभिप्राय यह है कि देवलोक के श्रेष्ठ विमानों में जन्म लेने वाले साधक। ये अनुत्तर विमान पाँच हैं—

१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित और ५. सर्वार्थ सिद्धि।

इन विमानों को प्राप्त करने वाले सभी देव सम्यग् दृष्टि होते हैं और मनुष्यभव को प्राप्त करके सर्व कर्म-बन्धन से मुक्त-उन्मुक्त हो जाते हैं।

इसमें दस अध्ययन हैं। यह तीन वर्गों में विभक्त है। तीन वर्गों में ३३ दिव्य पुरुषों के जीवन का वर्णन है। प्रथम और द्वितीय वर्ग में क्रमशः श्रेणिक राजा के आत्मज जालि कुमार आदि के १० अध्ययन और दीर्घसेन आदि के १३ अध्ययन हैं। तृतीय वर्ग में—

१. धन्य-धन्ना अणगार, २. सुनक्षत्र, ३. ऋषिदास, ४. पेलक, ५. राम-पुत्र, ६. चन्द्र कुमार, ७. पोष्ठी-पुत्र, ८. पेढाल कुमार, ९. पोटिल कुमार और १०. बहल कुमार के दस अध्ययन हैं।

ये सभी साधक अपने साधना काल को सम्पूर्ण करके अनुत्तर विमान में गये हैं और वहाँ से च्युत होकर मनुष्यभव को प्राप्त करेंगे और पुनः साधना करके सिद्ध बुद्ध एवं मुक्त बनेंगे। यह सूत्र आकार की दृष्टि से लघु है। इसके प्रत्येक वर्ग में पहले अध्ययन का विस्तार से वर्णन है। शेष अध्ययनों की कथाओं में संकेत मात्र किया गया है। यह देवलोक को प्राप्त होने वाले पुरुषों के जीवन का समस्त चित्रण करने वाला आगम है। इसमें ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए धर्मोपदेश शैली को आधार बनाया गया है।

१०. प्रश्नव्याकरण सूत्र—इस आगम में प्रश्नों का स्व-समय और पर-समय का निरूपण करने में प्रवीण प्रत्येक बुद्ध श्रमण द्वारा अनेकान्त भाषा में दिये गये उत्तरों की या भगवान् महावीर द्वारा जगत के जीवों के हित के लिये किये समाधान की प्ररूपणा की गई है। इस आगम में दस द्वार हैं—पहले पाँच द्वारों में हिंसा आदि पाँच आस्रवों का और अन्तिम में अहिंसा, सत्य आदि पाँच संवरों का वर्णन है। प्रश्न का अर्थ सामान्य रूप से जिज्ञासा होता है, परन्तु यह आगम विद्या विशेष को

प्रतिपादित करने वाला होने से विविध तथ्यों का निरूपण करने वाला है। प्रश्न और व्याकरण ये दोनों ही शब्द विविध प्रकार के अभिप्राय के प्रतिपादक, विवेचक या व्याख्या करने वाले हैं अर्थात् प्रश्न का अर्थ है—पदार्थ को जानने की इच्छा। उस इच्छा के प्रतिपादित जो वाक्य हैं, वे प्रश्न हैं।<sup>१०</sup> प्रश्न व्याकरण का अर्थ जिज्ञासाओं के समाधान की खोज है। इस तरह यह आगम महावीर द्वारा प्रतिपादित समाधानों की सम्यक् सूची है जिसमें जगत के सम्पूर्ण मानव के हित के लिये उनकी जिज्ञासाओं के अनुसार शिक्षा प्रदान की गई है।

११. विपाक सूत्र—शुभ और अशुभ ये दो कर्म हैं। दोनों ही कर्मों का विपाक (फल) अर्थात् परिणाम अच्छा-बुरा होता है इसमें अच्छे और बुरे कर्मों की विवेचना है। अभयदेव सूरी ने इसकी वृत्ति में कहा है कि यह विपाक सूत्र पाप और पुण्य के विपाक का वर्णन करने वाला आगम है।<sup>१६</sup> स्थानांग सूत्र में इसे 'कम्म-विवाय दसाओ' नाम से स्मरण किया गया है।

इसके दो श्रुत स्कन्ध हैं—

१. दुःख विपाक और २. सुख विपाक।

दोनों में दस-दस अध्ययन हैं प्रत्येक अध्ययन कथात्मक शैली से युक्त हैं। दुःखी व्यक्ति के जीवन को दर्शाने के लिए दुःख विपाक नामक इस अध्ययन में महावीर से पूछे गये प्रश्नों के समाधान के रूप में किसी व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व को सामने रख कर कर्म की प्रत्येक दुःख रूप अवस्था का विवेचन किया है। पूर्व भव के रूप में कर्मों की विवेचना की गई है। उनमें किसी व्यक्ति विशेष के पूर्व भव को आधार बनाकर अन्धे, लूले, लँगड़े, गूंगे या बहरे आदि के कारणों का कथन किया गया है। मृगापुत्र, उजिका, अभग्नसेन, सघट, वृहस्पति दत्त, नन्दीवर्धन, शौरिय दत्त, देवदत्ता अञ्जु आदि की कथा कर्म विपाक की वास्तविकता को प्रतिपादित करने वाली है। अशुभ कर्म का फल नरक और तिर्यच के दुःखों को उत्पन्न करने वाला है। अशुभ कर्म से ही संसार परिभ्रमण का कारण बनता है इसलिए कथाओं के अन्त में व्यक्ति को यही शिक्षा दी गई है कि दुष्कर्म या क्रूर कर्मों के कारणों से अपने आप को बचाएँ, दुष्टता से दूर रहें। पहला सुख विपाक से सम्बन्धित इसके द्वितीय श्रुत स्कन्ध में सुबाहु कुमार आदि के पूर्व भव का वर्णन किया है। संयमनिष्ठ जीवन, तपश्चर्यापूर्ण जीवन निश्चित ही कर्म बन्धनों को तोड़ने वाला है। कर्म बन्धन सम्यक्त्व के बाधक हैं। इसलिए संसार सागर से पार होने के लिए ज्ञान, दर्शन और चारित्र की ज्योतिर्मय दृष्टि को जगाना आवश्यक है। इस सुख विपाक में शुभ कर्म करने वाला सुखपूर्वक अपने साध्य की सिद्धि करने में समर्थ होता है।

अङ्ग और उपांग शुरु से ही प्रचलित हैं। अङ्ग ग्रन्थों में आचारांग आदि का विवेचन है और उपांग ग्रन्थों में औपपातिक आदि द्वादश उपांग आगमों को रखा जाता है।

वैदिक ग्रन्थों में पुराण, न्याय और धर्मशास्त्र को उपांग कहा गया है। चार वेदों के भी अङ्ग हैं और उनके उपांग भी होते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरूक्त और ज्योतिष—ये छः अङ्ग हैं। पुराण, न्याय मीमांसा और धर्मशास्त्र उपांग हैं। अङ्गों की रचना गणधरों ने की है और उपांगों की रचना स्थविरों ने की है इसलिए दोनों का सम्बन्ध घटित नहीं होता है, फिर भी अङ्ग ग्रन्थों की तरह उपांग ग्रन्थों का भी अपना स्थान है। वे द्वादशांग की तरह भी द्वादश संख्या रूप हैं जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

## द्वादश-उपांग

### उपांग-आगम-साहित्य

१. **औपपातिक सूत्र**—इस आगम में चम्पा नगरी, पूर्ण भद्र उद्यान, वन खण्ड, अशोक वृक्ष, पृथ्वी-शिला का और चम्पा के अधिपति कोणिक राजा, महारानी धारणी और उसके राज-परिवार तथा भगवान् महावीर का वर्णन है। इसमें विभिन्न सम्प्रदायों के तापस श्रमणों एवं भिक्षुओं, परिव्राजकों और उसके साधनों के द्वारा प्राप्त होने वाली देवगति में उपपात आदि का उल्लेख है। कर्म बन्ध के कारण केवली समुद्घात और सिद्ध स्वरूप का भी वर्णन है। देव नारकियों के जन्म एवं सिद्धि-गमन के कारण का वर्णन इस सूत्र में है। औपपातिक सूत्र में ४३ सूत्र हैं। इस पर अभयदेव सूरि ने वृत्ति रची है।

२. **राजप्रश्नीय सूत्र**—इसे रायपसेणिय भी कहा जाता है। इसमें राजा प्रसेनजित नाम की कथा है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के केशी श्रमण के साथ एक नास्तिक राजा प्रदेशी के जीवन का वर्णन किया गया है। राजा का जीवन परिवर्तन एवं श्रावक धर्म का परिपालन करना, समाधिपूर्वक मरण, सूर्यार्ध नामक देव का बनना आदि वर्णन प्रस्तुत आगम में है।

राजप्रश्नीय की गणना प्राचीन आगम ग्रन्थों में की जाती है। यह विषय वर्णन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इसमें दार्शनिक प्रश्नों का समाधान विविध दृष्टियों से किया गया है। यह दो भागों में विभक्त है, जिसमें २१७ सूत्र हैं। मलयगिरि ने १२वीं शताब्दी में इस पर टीका रची है।

प्रस्तुत आगम जहाँ विविध सूचनाओं को देने वाला ग्रन्थ है, वहाँ नाट्य रचना, वेदिका सोपान, प्रतिष्ठान, स्तम्भ, इलुका, इन्द्रकील आदि अभिनय का वर्णन भी है। इसमें स्थापत्य कला, संगीत कला और नाट्य कला भी देखने को मिलती है।

३. **जीवाभिगम**—प्रस्तुत आगम में जीव-अजीव, द्वीप, समुद्र, नदी आदि का विस्तृत वर्णन है। जीवाभिगम का अर्थ है—जिस आगम में जीव और अजीव का अभिगम ज्ञान है। इसमें नव प्रकरण हैं। इसमें गणधर और महावीर के प्रश्न और उनके उत्तर आदि कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें २० विभाग हैं। इसकी मलयगिरि



की टीका प्रसिद्ध है। हरिभद्र और देवसूरि ने भी इस पर अपनी वृत्ति रची है। जीवाभिगम पर चूर्णि भी प्राप्त होती है। यह सूत्र नौ प्रकरणों में विभक्त है, जिसमें २२७ सूत्र हैं। इसमें सांस्कृतिक सामग्री की प्रचुरता भी देखने को मिलती है; क्योंकि इसके प्रकरणों में विविध प्रकार के धातुओं का विवेचन, अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन, भवन-वस्त्र आदि का उल्लेख एवं विविध प्रकार के रोगों का भी विवेचन है। इसलिए यह सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें स्थापत्य कला का भी वर्णन है।

४. **प्रज्ञापना सूत्र**—प्रज्ञापना का अर्थ है—प्रकर्ष रूप से ज्ञापन करना-जानना। जिस आगम द्वारा पदार्थ के स्वरूप को प्रकर्ष व्यवस्थित रूप से जाना-समझा जाए, उसे प्रज्ञापना कहते हैं। इसमें जीव, अजीव, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष का वर्णन है। प्रज्ञापना में ३४९ सूत्र हैं जो ३६ पदों में विभक्त हैं—

१. प्रज्ञापना, २. स्थान, ३. अल्प बहुत्व, ४. स्थिति, ५. पर्याप्त, ६. उपपातोद्वर्तन, ७. उच्छवास, ८. संज्ञा, ९. योनि, १०. चरम, ११. भाषा, १२. शरीर, १३. परिणाम, १४. कषाय, १५. इन्द्रिय, १६. प्रयोग, १७. लेश्या, १८. कार्यस्थिति, १९. सम्यक्त्व, २०. अन्तःक्रिया, २१. अवगाहन; २२. क्रिया, २३. कर्म प्रकृति, २४. कर्म बन्ध, २५. कर्म वेद, २६. कर्म वेद बन्ध, २७. कर्म प्रकृति वेद, २८. आहार, २९. उपयोग, ३०. पश्यत, ३१. संज्ञा, ३२. संयम, ३३. ज्ञान परिणाम, ३४. प्रविचार परिमाण, ३५. वेदना और ३६. समुद्घात।

इसमें विविध प्रकार की भाषाओं का भी उल्लेख है। अर्ध मागधी भाषा को आर्य भाषा कहा है। इसी प्रसंग में ब्राह्मी, यावनी, खरोष्ठी, अङ्गलिपि और आदर्श लिपि आदि का उल्लेख है।<sup>१९</sup>

५. **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति**—जम्बूद्वीप एवं उसमें स्थित भरत क्षेत्र आदि का वर्णन इस आगम की प्रमुख विशेषता है। यह भौगोलिक विषय को प्रतिपादित करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें अवसर्पिणि और उत्सर्पिणि इन दो कालों का वर्णन है। ये काल और रूप में प्रसिद्ध हैं। इसके प्रथम, द्वितीय और तृतीय आरे में दस कल्प वृक्षों का वर्णन है तथा तृतीय एवं चतुर्थ आरे में भावी तीर्थंकरों, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव आदि प्रतिनारायणों का भी विवेचन है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पर कई टीकाएँ रची गई हैं। जिनमें धर्मसागर उपाध्याय की टीका प्रसिद्ध है। इस पर पुण्यसागर उपाध्याय ने भी टीका रची है। शान्तिचन्द्र वाचक ने प्रमेय-रत्न-मञ्जूषा नाम से टीका रची है। इसके अतिरिक्त बहार्षि की भी टीका है।

यह आगम दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में चार और उत्तरार्द्ध में तीन वच्छकार हैं, जो १७६ सूत्रों में विभक्त हैं। इस तरह यह आगम

भौगोलिक चित्रण के अतिरिक्त तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि के जन्म स्थान, शासन, राज्य, शिक्षा, दीक्षा आदि के वर्णन के कारण ऐतिहासिक ग्रन्थ भी है।

६. **सूर्यप्रज्ञप्ति**—यह प्राभृत रूप में विभक्त है। इसमें कुल २० प्राभृत हैं, जिनमें सूर्य आदि ज्योतिष चक्र का वर्णन है। खगोलशास्त्र की दृष्टि से इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की गति आदि का १०८ सूत्रों में वर्णन है। इसके २० प्राभृत निम्न हैं—

१. मंडल गति संख्या, २. सूर्य का तिर्यक परिभ्रमण, ३. प्रकाश्य क्षेत्र परिमाण, ४. प्रकाश संस्थान, ५. लेश्या प्रतिघात, ६. प्रकाश कथन, ७. प्रकाश संक्षिप्त, ८. उदय-अस्त-संस्थिति, ९. पौरुषी छाया परिमाण, १०. योग स्वरूप, ११. संवत्सरों का आदि-अन्त, १२. संवत्सरों के भेद, १३. चन्द्र की वृद्धि-क्षय, १४. ज्योत्स्ना लक्षण, १५. शीघ्र मन्द गति निर्णय, १६. अन्धकार, १७. च्यवन और उपात, १८. ज्योतिषी विमानों की ऊँचाई, १९. चन्द्र-सूर्य संख्या और २०. चन्द्र-सूर्य अनुभाव।

उक्त १९ प्राभृतों में प्रश्नोत्तर के रूप में विषय को प्रतिपादित किया गया है। इस पर मलयगिरि ने टीका रची है और भद्रबाहु ने निर्युक्ति रची है। यह भारतीय ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है; क्योंकि इसमें गणित के आधार पर सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्र आदि का वर्णन किया गया है इसलिए इसे ज्योतिष और गणित का भण्डागार कहा जा सकता है।

७. **चन्द्रप्रज्ञप्ति**—चन्द्र के विषय को प्रतिपादित करने वाला यह आगम ग्रन्थ सूर्य प्रज्ञप्ति की तरह चन्द्र ज्योतिष चक्र का वर्णन करने वाला है। इसमें भी २० प्राभृत हैं जिनमें चन्द्र की गति, चन्द्र का परिभ्रमण, चन्द्र की संख्या, चन्द्र का विस्तार, स्थान, प्रतिघात, प्रकाश-ज्योत्स्ना, चन्द्र की वृद्धि, क्षय आदि का वर्णन है। यह वर्णन भी प्रश्नोत्तर के रूप में है।

चन्द्र प्रज्ञप्ति पर मलयगिरि ने टीका लिखी है। इसमें भूगोल, खगोल आदि के अतिरिक्त वैज्ञानिक पक्ष भी हैं। यह विज्ञान की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इसमें चन्द्र से सम्बन्धित समस्त जानकारी प्राप्त होती है उससे इसकी ऐतिहासिकता का परिचय मिलता है।

८. **निरयावलिका सूत्र**—इस सूत्र में नरक की यावलि पूर्ण करने वाले पुरुषों के जीवन का वर्णन है। यह पाँच उपांगों में विभक्त है—

१. निरयावलिया अथवा कलिका (कल्पिका)
२. कप्पवडंसिया (कल्पावतंसिका)
३. पुप्फिया (पुष्पिका)
४. पुप्फचूलिया (पुष्प चूलिका)
५. वण्ह दसा (वृष्णि दशा)

श्रीचन्द्रसूरि ने इस पर टीका लिखी है निरयावलि सूत्र में दस अध्ययन हैं जिनमें अलग-अलग कथानक उनके नरक सम्बन्धी विषय को प्रतिपादित करते हैं। नरक की अवधि पूर्ण करने के बाद वे कहाँ पैदा हुए और वहाँ से निकल कर किस तरह मुक्ति पथ के मार्ग पर प्रवृत्त हुए, इत्यादि विषय का प्रतिपादन इसी ग्रन्थ में है। इसमें मात्र महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का उल्लेख नहीं है, अपितु यह उनके जन्म-स्थान, राज्य, राज्याभिषेक, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार, सेना आदि सांस्कृतिक सामग्री को प्रस्तुत करने वाला भी है। मूलतः कथानक वस्तु तत्त्व का विवेचन भी करता है। प्रत्येक प्रश्न और उनके उत्तर कथानकों से जुड़ हुए अनन्त शक्ति की ओर प्रेरित करते हैं। सर्वत्र कथानक भी गति मुक्ति पथ की ओर ले जाने वाली है। यह नरक की अवस्था से लेकर मुक्ति पथ की अवस्था तक का विवेचन करने वाला ग्रन्थ है।

९. कल्पावतंसिका-सूत्र—कल्प/देवलोक को प्राप्त होने महापुरुषों के जीवन-चरित्र को प्रतिपादित करने वाला यह आगम ग्रन्थ है। मूलतः इसमें श्रेणिक के दस पौत्रों का वर्णन है जो कल्पावतंस तक की देव पर्याय के उपरान्त मनुष्य आयु के सुख को भोग कर मुक्ति मार्ग को प्राप्त होंगे।

१०. पुष्पिका-सूत्र—इस सूत्र में दस अध्ययन हैं—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) महाशुक्र, (४) बहुपुत्रिया, (५) पूर्णभद्र, (६) मणीभद्र, (७) दत्त, (८) बल, (९) शिव और (१०) अनादीत्। इन दस देवों के पूर्व भव और उनकी साधना का वर्णन इस सूत्र में है। ये सभी देव पुष्पक विमान में बैठ कर महावीर के दर्शन के लिए उनके समवशरण में आते हैं। उन्हीं से सम्बोधित पूर्व भय की जानकारी गणधर द्वारा पूछे जाने पर महावीर स्वयं देते हैं। इस तरह इस सूत्र में दस देवों के पूर्व भव के साथ उनके द्वारा की गई साधना का भी उल्लेख है।

११. पुष्प-चूलिका-सूत्र—यह सूत्र दस अध्ययनों में विभक्त है, इसमें श्री, ही, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि दस देवियों के पूर्व भव का विवेचन है तथा उनके द्वारा की गई साधना का भी उल्लेख है।

१२. वृष्णिदशा-सूत्र—इस आगम में १२ अध्ययन हैं, जिनमें वृष्णि वंश के बारह पुत्रों का नेमी कुमार के पास दीक्षित होने का उल्लेख है। ये बारह पुत्र दीक्षा के उपरान्त साधना करके स्वार्थ सिद्धी विमान को प्राप्त हुए तथा वहाँ के विविध भोगों को भोगते हुए महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्ति पथ को प्राप्त करेंगे। इसका सम्यक् विवेचन इस सूत्र में है।

मूल-सूत्र साहित्य—साधु के मूल और उत्तर गुणों को प्रतिपादित करने वाले ये मूल सूत्र उपांग-ग्रन्थों की तरह उपयोगी हैं। इनमें साधु के आचार-विचार, विहार एवं उनके मूल नियमों का उपदेश दिया गया है। इसलिए ये मूल सूत्र हैं। साधु के मूल गुण २८ हैं। अनशन आदि तप उत्तर गुण हैं, उनके कारण होने से वृत्तों में मूल गुण का व्यपदेश होता है।<sup>१०</sup> इसलिए मूल-सूत्र कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। मूल-सूत्रों

में दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी सूत्र, अनुयोग द्वार सूत्र और आवश्यक सूत्र आते हैं। पिण्ड निर्युक्ति आदि को भी मूल-सूत्रों में रखा गया है। यद्यपि उत्तराध्ययन, आवश्यक और दशवैकालिक सूत्रों को ही मूल-सूत्र मानते हैं, पिण्ड निर्युक्ति और ओघ निर्युक्ति को इसमें नहीं रखा जाता है। पिण्ड निर्युक्ति दशवैकालिक निर्युक्ति का और ओघ निर्युक्ति आवश्यक निर्युक्ति का अंश है<sup>२१</sup> ऐसा विद्वानों का अभिमत है। कुछ विद्वान पिण्ड निर्युक्ति को मूल सूत्रों में सम्मिलित कर मूल सूत्रों की संख्या चार मानते हैं और नन्दीसूत्र एवं अनुयोगद्वार को चूलिका सूत्र मानते हैं।<sup>२२</sup> इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

१. **दशवैकालिक-सूत्र**—साधु जीवन की जीवन साधना को प्रस्तुत करने वाला यह सूत्र ग्रन्थ है। इसमें दस अध्ययन हैं और दो चूलिकाएँ हैं। काल से निवृत्त होकर विकाल में अर्थात् संध्या समय में इसका अध्ययन किया जाता था। इसलिए इसे दशवैकालिक कहा गया है।<sup>२३</sup> इस पर जिनदास-गणि ने चूर्णि लिखी है। इसके अतिरिक्त आधुनिक विचारशील विद्वानों ने समय-समय पर धम्मपद, संयुक्त-निकाय आदि से तुलना की है। मुनि पुण्यविजय जी ने इस सूत्र के विषय में कहा है कि यह पिण्डेषणा के पश्चात् कहा जाने लगा होगा।<sup>२४</sup> हरिभद्र सूरि ने इस पर वृत्ति रच कर इस सूत्र को अधिक सरल बना दिया है। यद्यपि यह सूत्र इतना सरल एवं सुबोध है कि पढ़ने वाला या सुनने वाला कोई भी व्यक्ति इसे सुगमता से कंठस्थ कर सकता है। भाषा, छन्द आदि की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

२. **उत्तराध्ययन-सूत्र**—उत्तराध्ययन एक सैद्धान्तिक सूत्र ग्रन्थ है, जिसमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक आध्यत्मिक विषय का समावेश है। यह विनय से प्रारम्भ होता है। इसका अन्त जीव और अजीव की विभक्ति से होता है इसके ३६ अध्ययन ही उपदेश प्रधान हैं जिसमें संयम, तप, त्याग की भावना निहित है। यह धम्म पद और गीता की तरह महनीय है। महाभारत, धम्म-पद, गीता और सुत निपात्त आदि के साथ इस सूत्र की तुलना की गई है। इसमें जहाँ उपदेशों की प्रधानता है वहीं दृष्टान्तों की भी प्रधानता है। कई दृष्टान्त संवाद-रूप में हैं जो निश्चित ही जन-जन पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं।

यह सूत्र धार्मिक काव्य होते हुए भी काव्य साहित्य की सामग्री से भी परिपूर्ण है। रस, छन्द, अलङ्कार, भाषा आदि की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण है। इस पर नेमिचन्द्र सूरि ने 'सुख बोधा' टीका रची है। इस पर आधुनिक विचारकों ने भी अपना विशेष अनुसंधान करके इसकी विशेषताओं को शिक्षा जगत के लिए उपयोगी बतलाया है। मेरी दृष्टि से यह सूत्र शिक्षक, शिक्षा और शिष्य के साथ समन्वय को स्थापित करने वाला है।

३. **नन्दी-सूत्र**—इस आगम में मूल रूप से संघ को महत्त्व दिया गया है। इसमें तीर्थंकरों के नामों का उल्लेख है। गणधरों की नामावली है। संघ के नायक गणधर आदि की इसमें स्तुति की गई है। सूत्र रूप में अभिनिबोधज्ञान, श्रुतज्ञान,

अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान—इन पाँच ज्ञानों का निरूपण किया गया है। इनके भेद-प्रभेद भी गिनाए गए हैं। ज्ञान के दो भेद किये हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष के इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष भेद किये हैं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष आदि के भेदों को भी गिनाया गया है। यह एक संक्षिप्त दार्शनिक ग्रन्थ भी है; क्योंकि इसमें ज्ञान, दर्शन आदि की समीक्षा सूत्र रूप में की गई है।

नन्दी-सूत्र को हम ज्ञान-सूत्र भी कह सकते हैं; क्योंकि ज्ञान के प्रतीक तीर्थंकर हैं, गणधर हैं और उनका प्रतिपादित मार्ग भी है। ज्ञान से ही यह सूत्र प्रारम्भ होता है और ज्ञान पर ही इसका अन्त होता है। इसमें आभिनिबोध ज्ञान को मतिज्ञान भी कहा गया है श्रुत ज्ञान के रूप में अक्षर श्रुत, अनक्षर श्रुत आदि का विवेचन किया गया है। प्रचलित आगमों का उल्लेख भी इसमें है।

४. **अनुयोगद्वार-सूत्र**—इसमें अधिकार आनुपूर्वी, दस नाम, प्रमाण द्वार, निक्षेप, अनुगम और नय का वर्णन है। यह काव्य शास्त्र की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें महाभारत, रामायण, कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि का उल्लेख है।

५. **आवश्यक**—साधु के लिए जो क्रिया अवश्य करने योग्य है उसे आवश्यक कहते हैं। उसके छह अध्ययन हैं—

१. सामायिक, २. चतुर्विंशति-स्तव, ३. वन्दन, ४. प्रतिक्रमण, ५. कायोत्सर्ग और ६. प्रत्याख्यान

साधु के ये नित्य नैमित्तिक कर्म हैं। साधु अपने उपयोग की रक्षा करने के लिए इन क्रियाओं को अवश्य करता है, इसी से सम्बन्धित यह आवश्यक सूत्र है।

६. **पिण्ड निर्युक्ति**—इस सूत्र में साधु के ग्रहण करने योग्य आहार का निरूपण है। इसमें आठ अधिकार हैं, ६७१ गाथाएँ हैं। इसमें उदगम, उत्पादन, एषणा, संयोजना प्रमाण, अङ्गार, धूम और कारण इन आठ साधु के निषेध करने योग्य कार्यों की विवेचना करके आहार ग्रहण करने की विधि का उल्लेख है।

इसके रचनाकार भद्रबाहु हैं। इस पर मलयगिरि की बृहद्-वृत्ति और वीराचार्य की लघु-वृत्ति भी प्राप्त है।

**ओघ निर्युक्ति**—ओघ का अर्थ है सामान्य या साधारण। इसमें साधु के सामान्य समाचारी का उल्लेख है। इसके रचनाकार भद्रबाहु हैं। इसको आवश्यक निर्युक्ति का अंश माना गया है। यह निर्युक्ति श्रमणों के आचार-विचार आदि को प्रतिपादित करने योग्य है।

**छेद-सूत्र**—छेद-सूत्र श्रमणों की आचार संहिता के प्रकाश-स्तम्भ हैं। इन सभी में उत्सर्ग, उपसर्ग, दोष और प्रायश्चित्त का वर्णन है क्योंकि आचार की पवित्रता दोषों की समाप्ति बिना संभव ही नहीं है इसलिए साधक किए गए कार्यों से बचने के लिए द्रव्य शक्ति के साथ क्षेत्र शुद्धि को भी महत्त्व देता है। श्रमण कृत कर्मों की

निर्जरा के लिये सदैव प्रयत्नशील होता है प्रायश्चित्त विधि-पूर्वक दोषों का परिहार करता है। इस तरह छेद सूत्र आचार धर्म के निरूपण करने वाले महत्त्वपूर्ण सूत्र कहे जा सकते हैं। छेद-सूत्रों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. निशीथ—आचार, अग्र, प्रकल्प और चूलिका ये निशीथ के पर्यायवाची शब्द हैं। निशीथ को अग्र भी कहा जाता है। इसमें श्रमण-श्रमणी के आचार-विचार, गोचरी-भिक्षाचारी, कल्प क्रिया आदि सामान्य नियमों का वर्णन है। इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का वर्णन है। इस आगम में मुख्य रूप से श्रमणाचार का वर्णन है।

निशीथ सूत्र आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुत स्कंध की पाँचवीं चूला है। निशीथ में पाँच महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति आदि से शुद्धिकरण पर बल दिया गया है। इसमें प्रायश्चित्त विधि आदि का भी उल्लेख है।

२. बृहत्कल्प-सूत्र—कल्प या बृहत्कल्प का कल्पाध्ययन नाम भी मिलता है। यह आगम श्रमण आचार के प्राचीनतम ग्रन्थों में से एक है। निशीथ और व्यवहार की तरह इसकी भाषा भी प्राचीन है। इसमें मुख्य रूप से साधु-साध्वियों के आचार का वर्णन है। दस प्रकार के प्रायश्चित्त का इसमें उल्लेख है। यह कल्प के भेदों का भी उल्लेख करता है।

इसमें छः उद्देशक हैं तथा यह ८१ अधिकारों में विभक्त है। इसके सूत्रों की कुल संख्या २०६ है जो ४७३ श्लोक प्रमाण है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से भी इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें ग्राम, नगर, राजा आदि का वर्णन है। यह धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक तथ्यों की सामग्री को प्रस्तुत करने वाला सूत्र ग्रन्थ भी है।

३. व्यवहार-सूत्र—श्रमणों की समाचारी वृत्ति को प्रतिपादित करने वाला यह सूत्र कई प्रकार की महत्त्वपूर्ण जानकारी को प्रस्तुत करता है। श्रमण गण से अलग होकर एकाकी विचरण नहीं कर सकता है; क्योंकि इससे शिथिलाचारी का दोष लगता है। श्रमण अपने किए हुए दोषों की आलोचना आचार्य या उपाध्याय के समक्ष प्रायश्चित्त लेकर करता है। उनके अभाव में बहु श्रुत ज्ञानी के समक्ष कृत कर्मों की आलोचना करता है। इस प्रकार से यह व्यवहार-सूत्र आचार संहिता का उपदेशक सूत्र है। इसमें दस उद्देशक हैं। यह २६७ सूत्रों में विभक्त है।

४. दशा-श्रुतस्कन्ध-सूत्र—इसका अपर नाम आचार दशा है। इसमें दस अध्ययन हैं। १८३० अनुष्टुप् छन्द प्रमाण इसकी सीमा है। २१६ गद्य सूत्र हैं। इसमें ५२ पद्यमय सूत्र हैं। इसके आठवें अध्ययन में श्रमण भगवान् महावीर के जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान प्राप्ति एवं मोक्ष आदि का वर्णन है। काव्यमय भाषा में २४ तीर्थकरों की स्थिति है। इस तरह यह महावीर के आचार-विचार की शिक्षा के साथ श्रमण-श्रमणियों

के जीवन व्यवहार से सम्बन्धित तथ्यों पर प्रकाश डालने वाला है। इसका प्रत्येक अध्ययन श्रमणों की आचार संहिता को जीवन्त बनाने वाला है। इस तरह यह सूत्र ग्रन्थ कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

५. पञ्चकल्प-सूत्र—प्रस्तुत आगम वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। पञ्चकल्प-सूत्र और पञ्चकल्प महाभाष्य दोनों दो भिन्न ग्रन्थ नहीं एक ही हैं, ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

६. महानिशीथ-सूत्र—इसमें आलोचना और प्रायश्चित्त विधि का प्रतिपादन किया गया है। महाव्रत में, विशेष करके चतुर्थ महाव्रत में, दोष लगने पर साधक को कितना दुःख सहन करना पड़ता है इसका वर्णन है। इसमें कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। भाषा और विषय की दृष्टि से इसकी प्राचीन आगमों में गणना नहीं की जा सकती। इसमें तान्त्रिक विषय एवं जैनागमों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है।

### प्रकीर्णक—

श्रुत का अनुसरण करके वचन, कौशल से धर्म देशना आदि के प्रसंग से श्रमणों द्वारा कथित रचनाएँ प्रकीर्णक कही जाती हैं।<sup>२५</sup> ये रचनाएँ पद्यात्मक हैं। मलयगिरि ने नन्दी सूत्र की टीका में लिखा है कि तीर्थंकर द्वारा उपादिष्ट सूत्र का अनुसरण करके श्रमण प्रकीर्णकों की रचना करते हैं।<sup>२६</sup> प्रकीर्णकों की संख्या १४००० मानी गई है। प्रचलित प्रकीर्णक निम्न प्रकार हैं—

१. चतुःशरण, २. आतुर-प्रत्याख्यान, ३. महाप्रत्याख्यान, ४. भक्त-परिज्ञा, ५. तन्दुल वैचारिक, ६. संस्तारक, ७. गच्छाचार, ८. गणिविद्या, ९. देवेन्द्रस्तव और १०. मरण समाधि।

मूलतः प्रकीर्णकों में शरण, समाधि मरण, भक्त परिज्ञा, व्रत अङ्गीकरण, जन्म-स्थान, आत्मा की एकप्रता, विविध प्रकार की स्थिति, ग्रह, नक्षत्र का वर्णन आचार की प्रमुखता को ध्यान में रख कर किया गया है। प्रकीर्णकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. चतुःशरण—अरहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म—ये चार शरण हैं। ये चारों ही लोक प्रसिद्ध हैं। जो इनकी शरण में जाता है वह अक्षय निधि को प्राप्त करता है, आत्मसिद्धि को प्राप्त करता है। इस सूत्र में लिखा है कि अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवली कथित धर्म सुख को प्रदान करने वाला है। यही सच्ची शरण है तथा चतुर्गति के परिभ्रमण को उपशान्त करने वाली है।<sup>२७</sup>

इसमें कुल ६३ गाथाएँ हैं। यह वीरभद्र की रचना है। इस पर भुवनतुंग की वृत्ति और गुणरत्न की अवचूरि उपलब्ध है। सोमसुन्दर ने संस्कृत में अवचूर्णि भी लिखी है। इसके चारों शरण कुशल शुभ कार्यों के सूचक हैं इसलिए इसका दूसरा नाम कुशलानुबन्ध है।

२. आतुर प्रत्याख्यान—यह समाधिमरण के पक्ष को प्रतिपादित करने वाला प्रकीर्णक है। इसमें ७० गाथाएँ हैं। कुछ अंश गद्य भाग से युक्त है। साधक के लिए प्रत्याख्यान आवश्यक है इसलिए उन्हें बार-बार समझाया गया कि बाल मरण, बालपण्डित मरण और पण्डित मरण किस व्यक्ति को प्राप्त होता है इसका सम्यक् विवेचन इस प्रकीर्णक की विशेषता है। इसमें अतिचारों की शुद्धि आदि का भी विचार किया गया है। इसके रचनाकार वीरभद्र हैं।

३. महाप्रत्याख्यान—इस प्रकीर्णक में तीर्थंकर जिन देव, सिद्धि एवं संयतजनों को नमन किया गया है। इसमें दुश्चरित्र की निन्दा की गई है। ज्ञान, दर्शन और चरित्र की प्रशंसा करके आत्मा की शुद्ध अवस्था पर प्रकाश डाला गया है। इसमें एकत्व भावना, त्याग मार्ग, संसार परिभ्रमण का कारण, महाव्रतों की श्रेष्ठता, ज्ञानी और अज्ञानी आदि के विषय को प्रतिपादित किया गया है सर्वत्र प्रत्याख्यान का विवेचन होने के कारण से इसे महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक कहा गया है इसमें १४२ गाथाएँ हैं, वे सभी वास्तविक आनन्द के मार्ग को सूचित करने वाली हैं।

४. भक्त-परिज्ञा—इस प्रकीर्णक ग्रन्थ में मूलतः सम्यक् दर्शन की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया गया है। सम्यक् दर्शन से भ्रष्ट व्यक्ति को निर्वाण प्राप्त नहीं होता है। सम्यक् दर्शन से रहित साधक चारित्र की उत्कृष्टता को भी प्राप्त नहीं हो पाते हैं जो सम्यक् दर्शन से रहित है वह सिद्ध नहीं हो सकता है।<sup>१८</sup> सम्यक् सुख की उपलब्धि का कारण सम्यक् आराधना है। पण्डित मरण से आराधना पूर्ण रूप से सफल होती है। भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक में इसका उल्लेख करते हुए मरण के तीन भेद किये हैं—

१. भक्त परिज्ञा, २. इंगिनी मरण और ३. पादपीयगमन।

इसमें भक्त परिज्ञा की 'प्रधानता' है। यह कुल १७२ गाथाओं का प्रकीर्णक है। इसके रचनाकार वीरभद्र हैं। गुणरत्न ने इस पर अवचूरि भी लिखी है।

५. तन्दुल वैचारिक<sup>१९</sup>—प्रस्तुत प्रकीर्णक में महावीर को नमन करने के पश्चात् सौ वर्ष की आयु की परिगणना की गई है, इसमें जीव की दस अवस्थाओं का विवेचन है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. बाल दशा, २. क्रीड़ा दशा, ३. मंदा दशा, ४. बला दशा, ५. प्रज्ञा दशा, ६. हायनी दशा, ७. प्रपंचा दशा, ८. प्राग्भारा दशा, ९. उन्मुखी दशा और १०. शायनी दशा

इन दस दशाओं में मनुष्य की आहार विधि, गर्भ अवस्था, शरीर के उत्पादक कारण, संहनन, संस्थान, तन्दुल गणना आदि का विवेचन है। इसका अधिकांश विवेचन गर्भावस्था से सम्बन्धित है। इसमें कुल १३९ गाथाएँ हैं, कहीं-कहीं पर गद्य भाग भी है।



६. **संस्तरक**—संस्तरक का अर्थ है तृण आकद की शैया। जो मृत्यु के समय अनशन व्रत स्वीकार करते समय तृण की शैया के बिछाने का वर्णन है। अनेक दृष्टान्तों के माध्यम से इसकी विशेषताओं को स्पष्ट किया है। साधना पद्धति में संस्तरक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संयमी साधक संस्तरकपूर्वक मृत्यु को सफल बनाता है। संस्तरक पर आसीन श्रमण पण्डित मरण को प्राप्त करने वाला होता है। संस्तरक की उपमा देते हुए लिखा है कि जैसे पर्वतों में मेरु, समुद्रों में स्वयंभूरमण और तारों में चन्द्र श्रेष्ठ है। उसी प्रकार सुविहितों में संधार (संस्तरक) सर्वोत्तम है।<sup>३०</sup> इस तरह यह संस्तरक नाम प्रकीर्णक श्रेष्ठ कर्मों की ओर अङ्गित करने वाला है। इसमें अर्णिका पुत्र, सुकोशल ऋषि, अवन्ति कातिकार्य, चाणक्य, अमृत घोष, चिलाति पुत्र, गज सुकुमाल आदि महान् आत्माओं की प्रशंसा की गई है।

७. **गच्छाचार**—यह प्रकीर्णक गच्छ में रहने वाले श्रमण-श्रमणियों के आचार का विवेचन करने वाला है। इसमें कुल १३७ गाथाएँ हैं। यह महानिशीथ कल्प सूत्र और व्यवहार सूत्र के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।<sup>३१</sup> आनन्द विमल सूरि के शिष्य विजय विमल गणि ने इस पर टीका लिखी है। इसका सम्पूर्ण प्रतिपाद्य विषय चारित्र की उज्ज्वलता को प्रस्तुत करना है। गच्छ प्रभावशाली होता है, उसमें रहने से निर्जरा होती है तथा दोषों की उत्पत्ति नहीं होती है। सुगच्छ उसे ही माना है जिसमें दान, शील, तप और भावना प्रधान धर्म का आचरण होता है गच्छाचार के इस प्रकीर्णक में श्रमण-श्रमणियों की मर्यादा का भी विवेचन है तथा इसमें ज्ञान, दर्शन और चारित्र की प्रधानता पर भी बल दिया गया है।

८. **गणिविद्या**—यह प्रकीर्णक ८२ गाथाओं से युक्त है। इसमें दिन, तिथि, नक्षत्र करण, गृह दिवस, मुहूर्त, शकुन, लग्न और निमित्त आदि विषयों का विवेचन है। ज्योतिष सम्बन्धी यह प्रकीर्णक शुभ योग के विषय को ही प्रतिपादित करने वाला है। शुभाशुभ तिथियाँ कौनसी हैं इसकी भी इसमें जानकारी दी गई है।

९. **देवेन्द्र स्तव**<sup>३२</sup>—इस प्रकीर्णक में ३२ देवेन्द्रों का वर्णन है। इसमें ३०७ गाथाएँ हैं। देवेन्द्र और देवेन्द्रों के अधीन रहने वाले सूर्य, चन्द्र आदि देवों, उनके निवास-स्थानों, उनकी स्थिति, उनके भवन और उनके परिग्रह आदि का विवेचन है। सांस्कृतिक दृष्टि से भी इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

१०. **मरण समाधि**—इसका दूसरा नाम मरण विभक्ति है। मूलतः यह प्रकीर्णक मरण विभक्ति, मरण विशोधि, मरण समाधि संलेखनाश्रुत भक्त-परिज्ञा, आतुर प्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, आराधना के विषय को प्रतिपादित करने वाला है। इसमें बारह प्रकार के तपों का विवेचन आभ्यन्ता और बाह्य संलेखना की विधि एवं धर्म से सम्बन्धित बारह भावनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत सभी प्रकीर्णक आत्म आलोचन की दिशा को प्रस्तुत करने वाले हैं। अलग-अलग रूप में प्रत्येक प्रकीर्णक की सामग्री अनुसंधान का विषय बन सकती है क्योंकि धर्म, दर्शन, समाज संस्कृति आदि की सामग्री इसके विषय को नया रूप दे सकती है।

**उपसंहार**—प्रज्ञाशील मानव मस्तिष्क के लिये साहित्य सदैव महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरक रहा है। श्रुति से लगा कर आख्यायिका तक की यात्रा में क्लान्त मानव को साहित्य की छाया में ही एक अनूठी आत्मशान्ति व विश्रान्ति मिली है। कथा को इन रहस्यों से लगाकर दर्शन के निगूढ़ प्रश्नों का समाधान साहित्य की गौरवमयी परम्परा से प्राप्त हुआ है।

जैनागम श्रमणों के उत्कृष्ट आचार-विचार, वृत, नियम, सिद्धान्त, स्वमत संस्थापन तथा परमत निरसन प्रभृति अनेक विषयों पर विस्तार से विश्लेषण करता है।

आगमों के गहन रहस्य जब विस्मृति के अञ्जल में सिमटने लगे तभी वाचनाओं की व्यवस्था कर जैनाचार्यों ने इसका संरक्षण करके न केवल जैन धर्मीय प्रभावना की अपितु साहित्य धर्म का भी सुन्दर निर्वाह किया है।

जैन आचार शास्त्र के विविध विधानों की व्याख्या के साथ जिन कल्प, स्थविर कल्प के स्वमत विभाजन का विवेचन आगमों में है। इनमें क्रियावादी, अक्रियावादी, नियतिवादी, कर्मवादी आदि तीन सौ तिरैसठ मत-मतान्तरों का सामाजिक महत्त्व भी दर्शाया गया है तथा उनके प्रभाव की साक्षी ये आगम देते हैं। गणधरवाद, निह्वववाद आदि क्षिप्तचित तथा दीप्तचित श्रमणों की चिकित्सा एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में सामने आती है। साथ ही क्षिप्तचित और दीप्तचित होने के कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है।

जैन आगमों का जब अवधानपूर्वक अनुशीलन करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि इनमें आहार, शिल्प कर्म, कृषि, लेखन, उपासना, चिकित्सा, अर्थशास्त्र, यज्ञ, उत्सव, विवाह आदि संस्थाओं का भी एक व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है। इनमें समाज शास्त्र के अनेक विषयों का विशद वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त नगर योजना में ग्राम, नगर, खेट, कर्वटक, मंडप, पत्तन, आकर, द्रोण मुख, निगम और राजधानी का स्वरूप भी व्यक्त हुआ है।

इनमें गृह निर्वाण, गुण अट्ट-अट्टालक आदि अनेक प्रकार के गृहों का कोष्टागार, भांडागार, पानागार, क्षीणगृह गजशाला, मानसशाला आदि गृह निर्वाण रूप वास्तु शिल्प की विवेचना भी सुसंबद्ध रूप से प्राप्त होती है।

आगम साहित्य का दार्शनिक और आचार शास्त्रीय दृष्टि से महत्त्व ही नहीं है, अपितु साहित्यिक दृष्टि से भी उनका अनुपम स्थान है। विविध छंदों के प्रयोग के साथ रत्नैक्ष, रूपक, उपमा, श्लेष, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों से भी आगम

सुसज्जित है। आगम में गद्य और पद्य के अनूठे प्रयोग हैं। इसी प्रणाली का अनुगमन ही आगे चलकर चम्पू काव्य आदि में हुआ है। समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के बीज जैनागमों में बहुत स्पष्टता के साथ उभरे हैं। जैनागमों में विविध भाषाओं का विवेचन है। इनमें लोक भाषाओं का भी प्रयोग है। प्राकृत, शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी, महाराष्ट्री, चूलिका, पैशाची, ठकी आदि अपभ्रंश के रूप भी हैं। प्राकृत की प्रकृति की इसी प्रवृत्ति से ही उसके गौरव की श्रीवृद्धि हुई है।

आगमों ने भारतीय दर्शनों को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। आस्तिक और नास्तिक विचारों के बीच के सेतु का नाम ही जैन दर्शन है। जहाँ आस्तिक दर्शनों की तरह उसने शाश्वत आत्मा को स्वीकार किया है तो नास्तिक दर्शनों की भाँति उसने ईश्वर को नहीं नकारा, किन्तु परस्पर ब्रह्म के उस विचार को निरूपित किया जिसमें ईश्वर को सर्वव्यापी कर्ता रूप माना है।

जैनागमों का दर्शन न केवल पदार्थ का दर्शन है और न कोरा आत्मवाद है। सापेक्ष कथंचित्वाद की संभावनापरक शब्दावली में ही वह व्याख्यायित है।

शब्द और अर्थ की अवधारणा के बारे में भी जैनागमों की अपनी मौलिक संस्थापना है। शब्द की जड़वादी व्याख्या करके पाश्चात्य परमाणुवाद के साथ उसने अपना कंधा जोड़ लिया। वही शब्द के अर्थबोध को उसकी भाव शक्ति स्वीकार कर वैदिक स्फोट दर्शन के साथ अपना रिश्ता जोड़ लिया। इस तरह विभिन्न विचारों और व्यवहारों को एक साथ जोड़ कर रखने की अपूर्व क्षमता इस दर्शन के पास है।

जैनागमों की जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन है, वह है—अनेकांतिक विचार एवं व्यवहार पद्धति। अनेकान्त जैन विचार का मानव संस्कृति को प्रदत्त सर्वोत्तम उपाय है। आज सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक पर्यावरण पर एकांतवाद एवं आग्रहवाद के काले बादल मँडरा रहे हैं। उसको अनेकांतीय जैन दिग्बोध ही हटा सकता है। द्वन्द को अन्ध दर्शन का सम्यक् नेत्र अनेकान्त ही हो सकता है।

प्रस्तुत अध्याय में जैनागमों के परिणाम से लगा कर जैनागमों की वैचारिक पृष्ठभूमि तक को स्पष्ट करने का एक विनम्र प्रयास किया है। इस अध्याय में श्रमण सांस्कृतिक संस्थानों के साथ उन सामाजिक प्रसाधनों के बारे में भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। आज की इस परिस्थिति में अतीत के वे सभी संस्थान प्रेरणास्पद हो सकते हैं। मूल्यों की माला के बिखरते मोती आज उस सूत्र की खोज में हैं जो उन्हें जीवन के सुमेल से जोड़कर अपने साथ रख सकें।

आगम का नैतिक दर्शन आज की संक्रमणकालीन स्थितियों के लिये वरदान है; क्योंकि मानवता महाविनाश के कगार पर खड़ी है और इस महाविनाश को महासृजन में बदलना ही जैन आगम दर्शन का अभीष्ट है।

आगम साहित्य की विशालता केवल धर्म, दर्शन और आचार तक ही सीमित नहीं है अपितु इनमें सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, स्थापत्य कला, वास्तु कला, लिपि विज्ञान, गणित, ज्योतिष आदि विषयों का भी उल्लेख मिलता है। कोई भी आगम ऐसा नहीं है जिनमें केवल एक ही विषय हो। आगम तो विविध विषयों के केन्द्रबिन्दु हैं। अतः विषय की प्रधानता के कारण आगम पूर्व की तरह आज भी अत्यधिक मानवीय मूल्यों की स्थापना करने वाले हैं। इन आगमों की समीचीनता का दिग्दर्शन कराने के लिए व्याख्याकारों ने विविध व्याख्याओं के माध्यम से आगम की सूक्ष्मता को सहज एवं बोधगम्य बना दिया है। परिणामस्वरूप आज उन व्याख्या साहित्य की दृष्टि शोध का विषय बन गई है। व्याख्या साहित्य की शोध प्रक्रिया का यह प्रथम प्रयास ही मेरा होगा; क्योंकि इससे पूर्व मूल सूत्रों पर बहुत कुछ अनुसंधान किया जा चुका है और हो ही रहा है। इसकी प्रथम प्रस्तुत आचारांग वृत्ति की समालोचना प्रस्तुत करते हुए आगम भी एक अनुपम सेवा होगी। आगम के ग्रन्थों पर जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं उनका भी संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है जो अलग-अलग रूपों में व्याख्या साहित्य की विस्तार योजना को आगे बढ़ाएगा।

## आगम का व्याख्या साहित्य

अर्धमागधी आगम साहित्य के रहस्य को व्याख्या साहित्य में विपुल रूप से देखा जा सकता है, इस पर समय-समय में अनेक प्रकार की व्याख्याएँ लिखी गई हैं, इनमें निर्युक्ति, भाष्य, महाभाष्य, चूर्णि, टीका, विवरण, वृत्ति, दीपिका, अवचूरी, अवचूर्णि, विवेचन, व्याख्या, छाया, पञ्जिका, अक्षरार्थ, टब्बा, भाषा, टीका, वचनिका, अंग्रेजी अनुवाद आदि विपुल साहित्य उपलब्ध है। इस साहित्य के विस्तृत विवेचन को मूल रूप से पाँच भागों<sup>३४</sup> में विभक्त कर सकते हैं—

१. निर्युक्ति, २. भाष्य, ३. चूर्णि, ४. संस्कृत टीका और ५. लोक भाषा में लिखित व्याख्या साहित्य।

आगमों पर लिखा गया सम्पूर्ण व्याख्या साहित्य सूत्रों से जुड़ा हुआ है।<sup>३५</sup> व्याख्याकारों ने आगम के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए व्याख्याओं का आश्रय लिया है। इनके अभाव में<sup>३६</sup> आगम का रहस्य नहीं खुल पाता और न इनके पारिभाषिक शब्दों का अर्थ ही स्पष्ट हो पाता। अतः आगमों पर लिखा गया व्याख्यात्मक साहित्य सभी दृष्टियों से उपयोगी है। आगमों के विषय की गम्भीरता को प्रतिपादित करने वाली अनेक संग्रहणियाँ भी लिखी गई हैं। संग्रहणियों के रचनाकार आर्य-कालक माने गये हैं।<sup>३७</sup> निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि का संक्षिप्त परिचय अग्र प्रकार है—

## निर्युक्ति—

अर्ध-मागधी आगम साहित्य पर सर्वप्रथम प्राकृत में पद्यमय व्याख्या प्रतिपादित की गई है। उन्हें सबसे प्राचीन माना गया है। जिन्हें निर्युक्ति संज्ञा दी गई है। ये निर्युक्तियाँ आगमों के संक्षिप्त विवरण हैं। इनकी उपयोगिता यह है कि छन्द बद्ध होने के कारण सरस और मधुर कंठ से गाया भी जा सकता है। इनमें विविध कथाओं एवं दृष्टान्तों के संकेत भी हैं। भाषा, शैली एवं विषय की दृष्टि से भी निर्युक्तियाँ प्राचीन हैं। इनसे आगमों के सूत्रबद्ध प्रसंगों को संक्षिप्त रूप में स्पष्ट किया गया है।<sup>३८</sup>

निर्युक्तियों के रचनाकार आचार्य भद्रबाहु माने जाते हैं। पर वे भद्रबाहु कौन हैं? इस पर अभी तक प्रकाश नहीं डाला गया है और न ही विद्वान एकमत हुए हैं, परन्तु निर्युक्ति की रचना का प्रारम्भ भद्रबाहु से हुआ है। डॉ. नेमीचन्द्र, डॉ. जगदीश चन्द्र, देवेन्द्र मुनि शास्त्री आदि ने इनके रचनाकार के विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। विजय मुनि शास्त्री ने अपने व्याख्या साहित्य 'एक परिशीलन' नामक निबन्ध में लिखा है कि निर्युक्ति रचना का प्रारम्भ प्रथम भद्रबाहु से ही हो जाता है। इसके आधार पर इनका समय ४०० से ६०० विक्रम सं. माना गया है।<sup>३९</sup> डॉ. जगदीश चन्द्र जैन ने इनकी रचना के विषय में लिखा है कि निर्युक्तियाँ वल्लभी वाचना के समय ई. वी. सन् की पाँचवीं-छठी शताब्दी के पूर्व में ही लिखी जाने लगी थीं। नयचक्र के कर्ता मल्लवादी ने अपने ग्रन्थ में निर्युक्ति की गाथा का उद्धरण दिया है। इससे निर्युक्तियों का समय विक्रम सं. पाँचवीं शताब्दी भी सिद्ध होता है।<sup>४०</sup>

अर्ध-मागधी आगमों पर लिखी गई निर्युक्तियों में जहाँ विषय की गंभीरता को खोला गया है वहाँ निर्युक्तियों में धर्म, दर्शन, संस्कृति, समाज, राजनीति, इतिहास एवं पुराण पुरुषों आदि के विवेचन भी उपलब्ध होते हैं। आगमों पर प्रसिद्ध निर्युक्तियाँ निम्न हैं<sup>४१</sup>—

१. आचारांग निर्युक्ति, २. सूत्रकृतांग निर्युक्ति, ३. सूर्य-प्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ४. व्यवहार निर्युक्ति, ५. बृहत्-कल्प निर्युक्ति, ६. दशाश्रुत-स्कन्ध निर्युक्ति, ७. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, ८. आवश्यक निर्युक्ति, ९. दशवैकालिक निर्युक्ति और १०. ऋषिभाषित निर्युक्ति।

विजय मुनि शास्त्री ने अपने व्याख्या साहित्य 'एक परिशीलन' नामक लेख में यह क्रम दिया है—

आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्र-कृतांग, दशाश्रुत-स्कन्ध, बृहत् कल्प, व्यवहार, औष, पिण्ड, ऋषि-भाषित आदि।<sup>४२</sup> देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्र-कृतांग, दशाश्रुत-स्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार, सूर्य-प्रज्ञप्ति और ऋषिभाषित इन दस निर्युक्तियों का उल्लेख किया है।<sup>४३</sup>

सूर्य प्रज्ञप्ति और ऋषि-भाषित निर्युक्ति अब तक प्रकाश में नहीं आ पाई हैं। औष निर्युक्ति, पिण्ड निर्युक्ति, पञ्चकल्प निर्युक्ति और निशीथ निर्युक्ति को

क्रमशः आवश्यक निर्युक्ति, दशवैकालिक निर्युक्ति, बृहत्-कल्प निर्युक्ति और आचारांग निर्युक्ति के ही अंश हैं।<sup>४४</sup> आराधना-निर्युक्ति का उल्लेख भी मिलता है।<sup>४५</sup> इन निर्युक्तियों के अतिरिक्त भी संशक्त निर्युक्ति और गोविन्द निर्युक्ति का उल्लेख भी मिलता है। वर्तमान में ये अनुपलब्ध हैं।<sup>४६</sup>

### निर्युक्तियों का परिचय—

१. आचारांग निर्युक्ति—आचारांग सूत्र के दोनों श्रुतस्कन्धों पर निर्युक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इसके निर्युक्तिकार आचार्य शीलांक हैं, जिन्होंने २७४ गाथाओं के आधार पर आचारांग के विषय की गंभीरता का पाण्डित्यपूर्ण परिचय दिया है। 'अङ्गणा कि सारो? आचारो।' इस तरह के अर्थ गांभीर्यपूर्ण व्याख्या ने आचारांग की विशेषता का परिचय दे दिया।

२. सूत्रकृतांग निर्युक्ति—निक्षेप पद्धति पर आधारित यह निर्युक्ति दार्शनिक विषय को आगे बढ़ाती है। इसमें क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और बैनयिक के दार्शनिक मत का विवेचन है। इसके प्रारम्भ में सूत्रकृतांग सूत्र की व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है। इसमें गाथा षोडश श्रुत-स्कंध, विभक्ति, समाधि, मार्ग, आदान, ग्रहण, अध्ययन, पुण्डरीक, आहार, प्रत्याख्यान, सूत्र आदि शब्दों पर भी चिन्तन किया गया है। इसके रचनाकार शीलाङ्कचार्य हैं।

३. सूर्य-प्रज्ञप्ति निर्युक्ति—यह निर्युक्ति भद्रबाहु द्वारा रचित मानी गई है, परन्तु मलयगिरि ने अपनी टीका में इसका संकेत किया है। अतः इस पर कुछ कहा जाना संभव नहीं है। परन्तु इतना अवश्य है कि यह सूत्रों की व्याख्या को प्रस्तुत करने वाली निर्युक्ति है।

४. व्यवहार निर्युक्ति—इस निर्युक्ति के रचनाकार भद्रबाहु माने गए हैं। व्यवहार निर्युक्ति, व्यवहार भाष्य की गाथाओं के साथ मिश्रित हो गई है। इसमें मूलतः श्रमणों के आचार-विचार एवं जीवन-पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। संक्षिप्त में लिखी गई यह प्राकृत निर्युक्ति सिद्धान्त के रहस्य को प्रतिपादित करने वाली है।

५. बृहत्कल्प निर्युक्ति—श्रमण और श्रमणियों की जीवन-पद्धति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने वाली यह निर्युक्ति निक्षेप पद्धति से समस्त विवेचन को प्रस्तुत करती है। आचार-विचार, आहार, ज्ञान, दर्शन और चारित्र आदि का संक्षिप्त परिचय इसकी प्रमुख भूमिका है। इसमें ग्राम क्या है? नगर क्या है? पत्तन क्या है? द्रोणमुख क्या है? निगम क्या है? और राजधानी क्या है? इत्यादि विवेचन राजनीतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करने वाला है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, जाति, कुल, कर्म, भाषा, शिल्प, ज्ञान, दर्शन और चारित्र—इन बारह निक्षेपों से आर्य पद पर विचार किया गया है। इस तरह निर्युक्ति विषय को बृहद् रूप से प्रस्तुत करने वाली टीका है। निर्युक्ति संस्कृत टीका के साथ जुड़ गई है। बृहत् कल्प भाष्य या लघु भाष्य

के साथ इसका मिश्रण हो गया है। इसमें धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक चित्रण के साथ लोक कथाओं का भी उल्लेख है।

६. **दशाश्रुत-स्कन्ध निर्युक्ति**—यह निर्युक्ति मूलतः द्रव्य और भाव्य समाधि के चिन्तन को प्रस्तुत करने वाली है। इसकी वर्णनात्मक शैली निक्षेप पद्धति पर आधारित है। इसमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, अधा, अर्ध, चर्या, वसति, संयम, प्रग्रह, योष, अचल, गणन, संस्थान और भाव—ये पन्द्रह निक्षेप विषय की गंभीरता को स्पष्ट करते हैं। इसमें पर्यूषण के पर्यूषण, परियुवशमना, परिवसना, वर्षावास, स्थापना और ज्येष्ठ ग्रह आदि के नामों को भी गिनाया गया है। इसी तरह चित्र उपासका, प्रतिमा आदि शब्दों का भी निक्षेप पद्धति के साथ विवेचन किया गया है।

७. **उत्तराध्ययन निर्युक्ति**—प्रस्तुत निर्युक्ति में अनेक पारिभाषिक शब्द दिये गए हैं। कुछ शब्दों के पर्यायवाची भी इस निर्युक्ति में हैं। इसमें ६०७ गाथाएँ हैं। निर्युक्तिकार ने इसके प्रारम्भ में उत्तर और अध्ययन शब्दों की व्याख्या की है। श्रुत और स्कन्ध को स्पष्ट किया है। शिक्षाप्रद कथाओं के कथानकों ने इसके गाम्भीर्य को अधिक रुचिपूर्ण बना दिया है। सूक्ति वचनों और भावों की विशेषताओं के कारण यह निर्युक्ति कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण बन गई है।

८. **आवश्यक निर्युक्ति**—इसके रचनाकार आचार्य भद्रबाहु हैं। आचार्य भद्रबाहु की यह प्रथम कृति है। विषय की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है। आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार में भी इस निर्युक्ति का उल्लेख किया है।<sup>५७</sup> इससे जान पड़ता है कि आवश्यक निर्युक्ति आवश्यक सूत्र पर लिखी गई एक प्राचीन रचना है।<sup>५८</sup>

निर्युक्ति में गाथाएँ कितनी हैं, यह निश्चित नहीं है परन्तु १६३७ गाथाएँ स्वीकार की गई हैं, हरिभद्र सूरि ने अपनी वृत्ति में २३८६ गाथाओं का उल्लेख किया है। गाथाओं के अतिरिक्त इसमें अनुष्टुप छन्द भी हैं। भाषा की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण निर्युक्ति है।

इस निर्युक्ति में ज्ञानवाद, गणधरवाद और निह्वववाद के दार्शनिक विषयों का संक्षिप्त परिचय है। इसमें चिकित्सा सम्बन्धी विवेचन, अर्थशास्त्र की आर्थिक दृष्टि, विविध कलाओं के साथ शिल्पकला, लेखन कला, गणित, ज्योतिष आदि कलाओं का भी उल्लेख है।

९. **दशवैकालिक निर्युक्ति**—प्रस्तुत निर्युक्ति में श्रमण-श्रगणियों के आचार-विचार पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इसमें ३७१ गाथाएँ हैं। इसके रचनाकार भद्रबाहु हैं। मूलतः यह निर्युक्ति अहिंसा, संयम और तप की प्रधानता को प्रतिपादित करने वाली है। इसमें साधक की साधना मार्ग का भी उल्लेख है। निर्युक्तिकार की निर्युक्तियों में लौकिक और धार्मिक कथाओं का भी उल्लेख है जो प्रश्नोत्तर शैली में है। कहीं-कहीं पर इनमें दर्शन-शास्त्र की विशेषताओं को भी देखा जा सकता है।

१०. ऋषिभाषित निर्युक्ति—प्रत्येकबुद्ध द्वारा भाषित होने के कारण इस ग्रन्थ को ऋषिभाषित कहा गया है। आचार्य भद्रबाहु ने इस पर निर्युक्ति लिखी थी, जो अनुपलब्ध है।

### अन्य निर्युक्तियों का परिचय—

१. निशीथ निर्युक्ति—यह निर्युक्ति निशीथ सूत्र पर निक्षेप पद्धति के आधार पर लिखी गई है। इसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यह भाष्य के साथ समाविष्ट हो गई है। इसके रचनाकार आचार्य भद्रबाहु हैं। इन्होंने इसमें श्रमणों के आचार-विचार पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

२. पिण्ड निर्युक्ति—इसके रचनाकार भद्रबाहु हैं। इन्होंने साधु जीवन की आहार विधि का वर्णन किया है। इसमें उद्गम, उत्पादन, एषणा, संयोजना प्रमाण, अङ्गार, धूम और कारण आदि दोषों का उल्लेख है। मूलाचार की गाथाएँ पिण्ड निर्युक्ति की गाथाओं से मिलती हैं।<sup>४९</sup>

३. ओघ निर्युक्ति—प्रस्तुत निर्युक्ति के कर्ता आचार्य भद्रबाहु हैं। यह ओघ-निर्युक्ति आवश्यक निर्युक्ति का ही एक अंश है। इसमें श्रमणों की समाचारी का उल्लेख किया गया है तथा इसमें प्रतिलेखन, उपाधि प्रतिसेवना, आलोचना और विशुद्धि आदि के विषयों का उल्लेख है।<sup>५०</sup>

४. संसक्त निर्युक्ति—आचार्य भद्रबाहु की यह लघु रचना है। इसका किसी आगम के साथ सम्बन्ध नहीं है और न ही इसका कहीं उल्लेख मिलता है। यह निर्युक्ति किस आगम पर लिखी गई है इसका भी कोई संकेत नहीं है।

५. गोविन्द निर्युक्ति—इसमें दार्शनिक तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसलिये इसे दर्शन शास्त्र या दर्शन प्रभावक शास्त्र भी कहा जाता है।<sup>५१</sup> आचार्य गोविन्द ने इस पर निर्युक्ति लिखी है।

६. आराधना निर्युक्ति—आराधना निर्युक्ति भी अनुपलब्ध है। ८४ आगमों में आराधनापताका नामक एक आगम ग्रन्थ भी है इसलिए यह कहा जाता है कि इसी ग्रन्थ पर आराधना निर्युक्ति लिखी गई है। आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार में इसका उल्लेख किया है।<sup>५२</sup>

आगमों पर जो भी निर्युक्तियाँ लिखी गई हैं, उनमें अधिकांशतः आचार्य भद्रबाहु द्वारा रचित हैं। ये सभी प्राकृत में हैं। इनके छन्द गाथाओं में हैं। कहीं-कहीं निर्युक्तियों में अनुष्टुप छन्द भी हैं। ये भाषा, शैली, विषय वर्णन एवं मूल सूत्रों के अर्थों की गंभीरता को उद्घाटित करने वाली निर्युक्तियाँ व्याख्या साहित्य की अनुपम धरोहर हैं।

इस तरह निर्युक्ति ग्रन्थ आगमों के रहस्य को उद्घाटित करने वाले आगम ग्रन्थ हैं। इनके अध्ययन अनुसंधान से धर्म-दर्शन-संस्कृति आदि के तत्त्व सामने आ



सकते हैं। इनका मंथन आज के विषम वातावरण में विभिन्न दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर सकता है।

## भाष्य-परिचय

निर्युक्ति की तरह भाष्य भी गाथा छन्द में निबद्ध हैं। विषय विवेचन की अपेक्षा भाष्य विस्तार शैली से युक्त हैं। इनका समय चौथी-पाँचवीं शताब्दी माना गया है। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने भाष्य का यही समय दिया है।<sup>43</sup> डॉ. जगदीश चन्द्र जैन ने भाष्य ग्रन्थों का समय ई. सन् की चौथी-पाँचवीं शताब्दी निर्धारित किया है।<sup>44</sup> मुनि जिन विजय जी ने विशेषावश्यक भाष्य के आधार पर भाष्य ग्रन्थों का रचनाकाल विक्रम सम्वत् ६६६ माना है।<sup>45</sup> गणधरवाद की प्रस्तावना में दलसुख मालवणिया ने मुनि जिन विजय की इस प्रस्तुति पर असम्मति व्यक्त की है। उन्होंने भाष्य के रचनाकाल के विषय में कही गई बात का खुलासा करते हुए यह कथन किया कि विशेषावश्यक भाष्य की गाथाओं के आधार पर जो रचनाक्रम निर्धारित किया है वह ठीक नहीं है। उनकी दृष्टि से भाष्य का समय शक सम्वत् ५३१ उचित माना गया है।<sup>46</sup> भाष्यकारों में संघदासगणि और जिनभद्र क्षमाश्रमण विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनका समय सातवीं शताब्दी माना गया है।<sup>47</sup>

भाष्य मूल रूप से आगम सूत्र ग्रन्थों के विषय को समझाने वाले प्रमुख व्याख्या सूत्र हैं। निर्युक्तियों की तरह भाष्य अर्धमागधी प्राकृत में हैं। परन्तु शौरसेनी और मागधी के प्रयोग भी भाष्य ग्रन्थों में हुए हैं। भाष्य विषय की विस्तार के साथ तत्त्व दृष्टि को भी प्रतिपादित करने वाले हैं, इन्हें ज्ञान का महासागर कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भाष्य दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि तथ्यों से भरे पड़े हैं। मुख्य रूप से निम्नलिखित भाष्य अतिप्रसिद्ध हैं—

१. कल्प भाष्य, २. पञ्च कल्प भाष्य, ३. जीतकल्प भाष्य, ४. उत्तराध्ययन भाष्य, ५. आवश्यक भाष्य, ६. दशवैकालिक भाष्य, ७. निशीथ भाष्य और, ८. व्यवहार भाष्य।

१. कल्प भाष्य—वृहत् कल्प भाष्य और लघु कल्प भाष्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। भाष्य सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। संघदासगणी ने इसकी रचना की। वृहत् कल्प सूत्र के विषय विस्तार को प्रतिपादित करने के लिए लघु भाष्य नामक टीका लिखी गई, जिसमें ६४९० गाथाएँ हैं। यह छः उद्देश्यों में विभक्त है। इसकी प्रारम्भिक पीठिका में ८०५ गाथाएँ हैं, जो सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

भाष्य श्रमण जीवन के आचार-विचार को, उनकी दैनिकचर्या को एवं आहार विधि को निरूपित करने वाला है। इसमें उत्सर्ग मार्ग और अपवाद मार्ग का भी विवेचन है। चिकित्सा पद्धति, राजनीति, धार्मिक एवं दार्शनिक विषय भी इसके अन्तर्गत समाविष्ट हैं। इसके अनेक प्रसंग मनोवैज्ञानिक दृष्टि को भी प्रस्तुत करने वाले हैं।

२. पञ्चकल्प भाष्य—पञ्चकल्प भाष्य को पञ्चकल्प महाभाष्य भी कहा जाता है। इसके रचनाकार संघदासगणि हैं। इसमें कुल २६५५ गाथाएँ हैं। भाष्य के रूप में २५७४ गाथाएँ प्रचलित हैं।

३. जीतकल्प भाष्य—जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित यह जीत-कल्प भाष्य जीतकल्प पर आधारित है। यह एक संग्रह आगम ग्रन्थ है। इसमें २६०६ गाथाएँ हैं। जिनभद्रगणि ने इस भाष्य में प्रायश्चित्त विधि का निर्देश किया है। इसे हम आचार संहिता का मापक यंत्र कह सकते हैं।

४. उत्तराध्ययन भाष्य—शान्ति सूरि की प्राकृत टीका में उत्तराध्ययन भाष्य की गाथाएँ मिलती हैं। इनकी कुल संख्या ४५ है। इस भाष्य की गाथाएँ अन्य भाष्य ग्रन्थों की तरह निर्युक्तियों के साथ मिल गई हैं।

५. आवश्यक भाष्य—आवश्यक सूत्र पर आधारित आवश्यक भाष्य श्रमण-श्रमणियों की साधना पद्धति को प्रस्तुत करने वाला महत्त्वपूर्ण भाष्य ग्रन्थ है। इस भाष्य में २५३ गाथाएँ हैं जो निर्युक्त गाथाओं के साथ निसृत हो गई हैं। आवश्यक सूत्र पर तीन भाष्य लिखे गये हैं—१. लघुभाष्य, २. महाभाष्य, ३. विशेषावश्यक भाष्य।

६. दशवैकालिक भाष्य—आचार्य हरिभद्र ने दशवैकालिक पर एक लघु भाष्य की रचना की है, जिसमें ३६ गाथाएँ हैं। इसमें श्रमणों के मूलगुण और उत्तरगुणों का विवेचन है। इसमें हेतु विशुद्धि, जीव सिद्धि, प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण की चर्चा की गई है। जीव के स्वरूप का वैदिक, बौद्ध (सामइक) एवं लौकिक दृष्टि से तार्किक शैली में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जैन दृष्टि से जीव का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न का समाधान इसकी प्रमुख विशेषता है। प्रसंगानुसार दशवैकालिक भाष्य में साधु धर्म की चर्चा भी की गई है तथा उनके आचार-विचार पर भी प्रकाश डाला गया है। यह भाष्य लघु होते हुए भी विषय प्रतिपादन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

७. निशीथ भाष्य—संघदास गणि ने निशीथ सूत्र पर प्राकृत भाषा में जो व्याख्या प्रस्तुत की वह निशीथ भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। संघदास गणि ने प्रस्तुत रचना में श्रमणों के आचार के सम्यक् व्याख्या की है। निशीथ भाष्य को निशीथ लघु भाष्य भी कहा जाता है। डॉ. जगदीश चन्द्र जैन ने निशीथ लघु भाष्य शब्द का उल्लेख करते हुए यह भी कथन किया है कि निशीथ भाष्य के रचनाकार संघदास गणि हैं। वसुदेवहिंडी के रचनाकार संघदास गणि वाचक नहीं हैं। निशीथ सूत्र पर लिखी गई भाष्य युक्त गाथाएँ कल्प भाष्य और व्यवहार भाष्य में भी प्राप्त होती हैं। यह भाष्य २० उद्देशकों में विभक्त है जिसमें कुल ६७०३ गाथाएँ हैं। इसमें सभी तरह सांस्कृतिक सामग्री है।

८. **व्यवहार भाष्य**—इसके रचनाकार का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु व्यवहार भाष्य पर मलयगिरि ने जो विवरण लिखा है उससे व्यवहार भाष्य की उपयोगिता बढ़ जाती है। इस भाष्य में दस उद्देशक हैं जिनमें साधु और साध्वियों के आचार-विचार, तप, प्रायश्चित्त, आलोचना, गच्छ, पदवी, विहार, उपाश्रय, उपकरण, प्रतिमाएँ आदि का विवेचन इसकी प्रमुख विशेषता है।

उक्त भाष्यों के अतिरिक्त अन्य भाष्य भी आगमों पर लिखे गये हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

**विशेषावश्यक भाष्य**—आवश्यक सूत्र पर लिखा गया एक विस्तृत, विशाल और बृहत्काय महाकाव्य विशेषावश्यक भाष्य है। यह ज्ञान-विज्ञान का महाकोष है।<sup>14</sup>

**पिण्ड निर्युक्ति भाष्य**—पिण्ड निर्युक्ति के सूत्र पर रचा गया यह भाष्य ४६ गाथाओं से युक्त है, जिसमें श्रमणों के पिण्ड (आहार) पर विचार किया गया है। पिण्ड के दोष आधाकर्म, औद्देशिक, मिश्र, जात, सूक्ष्म प्रवृत्ति का विश्रोधी-अवश्रोधी आदि पर विचार किया गया है। इसमें राजा चन्द्रगुप्त का उल्लेख है। उनके महामंत्री चाणक्य का भी विवेचन है। इसमें पाटलीपुत्र में पड़ने वाले दुर्भिक्ष (काल) का भी उल्लेख है। इस भाष्य में आचार्य सुस्थित और उनके शिष्यों का भी वर्णन है। इसलिए इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान है।

**ओघ निर्युक्ति लघु भाष्य**—यह भाष्य किसका है? इसका कहीं उल्लेख नहीं है। इस भाष्य में ३२२ गाथाएँ हैं, जिनमें श्रमण धर्म की चर्चा की गई है।

**ओघ निर्युक्ति बृहद् भाष्य**—इसके रचनाकार का भी उल्लेख नहीं है। परन्तु यह ओघ निर्युक्ति लघु भाष्य के विषय को विस्तार से प्रस्तुत करने वाला विशालकाय आगम भाष्य है। इसमें २५१७ गाथाएँ हैं। भाष्य की गाथाएँ निर्युक्तियों की गाथाओं में समाविष्ट हो गई हैं।

आगमों पर लिखे गए भाष्य प्राकृत भाषा में हैं, जिनका भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। इन भाष्यों में भाष्यकारों ने शब्द अर्थ की प्रधानता के साथ प्राकृत में जो परिभाषाएँ दी हैं वे महत्वपूर्ण हैं। शब्द के रहस्य को प्रतिपादित करने के लिए भाष्यकारों ने व्युत्पत्तिपरक एवं निर्युक्ति समन्वित शैली को अपनाया है। दार्शनिक पक्ष को उजागर करने के लिए भाष्यकारों ने नयों का सहारा लिया है तथा विषय की वास्तविकता का बोध कराने के लिए निक्षेप पद्धति का आश्रय लिया है। भाषा, भाव, अभिव्यक्ति, धर्म, दर्शन, समाज, संस्कृति, अर्थशास्त्र, राजनीति-विज्ञान, समाज-शास्त्र गणित-विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, खगोल आदि के तत्त्व भाष्यकारों के भाष्यों में देखने को मिलते हैं।

अतः भाष्य कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। इनका ज्ञान का महासागर तत्त्व ज्ञान की विशालता को अधिक गहराई तक ले जाने वाला है। भाष्यकारों ने भाष्यों को बहुआयामी बनाने के लिए जो प्रयत्न किया उस पर अनुसंधान किया जाये तो कई अनुसंधानकर्ता अलग-अलग विषयों की दृष्टि से अनेक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर सकते हैं। शोधपरक सामग्री ज्ञान के क्षेत्र में नयी जागृति ला सकती है। इसलिए भाष्यों पर स्वतन्त्र रूप से अनुसंधान किया जाना चाहिये।

### चूर्णि परिचय

गद्य प्रधान शैली में चूर्णियाँ आचार्यों द्वारा लिखी गई हैं। निर्युक्ति और भाष्य के उपरान्त आगम ग्रन्थों के सूत्र शैली के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए चूर्णियों की व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं। मूलतः चूर्णिकारों ने संस्कृत में चूर्णियाँ प्रतिपादित की हैं किन्तु संस्कृत के साथ इनमें प्राकृत का भी प्रयोग किया गया है। संस्कृत और प्राकृत मिश्रित चूर्णियाँ जैन सिद्धान्त के रहस्य को विस्तार से प्रतिपादित करने के लिए ही लिखी गई हैं। चूर्णियों के अन्तर्गत प्राकृत भाषा में अनेक कथाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। प्रायः सभी कथाएँ सिद्धान्त के रहस्य को जितना प्रतिपादित नहीं करती हैं उससे कहीं अधिक ये कथाएँ जन-जन में फैले हुए रीति-रिवाजों, मेले, त्योहारों, दुष्काल, चोर, लुटेरे, सार्थवाह, व्यापार के मार्ग, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि की विशेषताओं को प्रस्तुत करने वाली हैं। जैनाचार्यों का मूल कार्य धर्म प्रभावना रहा है। इसलिए उन्होंने जन सम्पर्क के माध्यम के लिये इस तरह की कथाओं का चयन किया। इसलिए इन कथाओं को लोक कथा भी कहा गया है।<sup>५१</sup>

चूर्णियों के रचनाकार जिनदास गणि महत्तर माने जाते हैं। इनका समय विक्रम की सातवीं शताब्दी है। चूर्णियों की रचना का समय जहाँ नेमिचन्द्र शास्त्री ने छठी-सातवीं शताब्दी माना है<sup>५०</sup> विजय मुनि शास्त्री ने इनका समय सातवीं-आठवीं शताब्दी प्रस्तुत किया है।<sup>५१</sup> देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने चूर्णियों के समय के विषय में लिखा है कि आचार्य हरिभद्र ने अपनी वृत्तियों में चूर्णियों का उपयोग किया है इसलिए आचार्य जिनदास गणि का समय विक्रम सम्वत् ६५०-७५० के मध्य होना चाहिये। नन्दी-चूर्ण के उपसंहार में उसका रचना समय शक सम्वत् ५९८ अर्थात् विक्रम सम्वत् ७३३ है।<sup>५२</sup> डॉ. जगदीश चन्द्र जैन ने जिनदास गणि महत्तर की चूर्णियों के आधार पर ई. सन् की छठी शताब्दी माना है।<sup>५३</sup> पं. दलसुख मालवणिया ने सातवीं-आठवीं शताब्दी ही चूर्णियों का समय माना है।<sup>५४</sup>

आगमों पर लिखी गई चूर्णियों में ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, कलात्मक आदि सामग्री का प्रचुर प्रयोग देखने को मिलता है। इन्हें डा. नेमिचन्द्र शास्त्री ने मानव समाज शास्त्र की संज्ञा दी है और कहा है कि चूर्णियाँ महत्त्वपूर्ण मानव समाज शास्त्र हैं। इनमें सहस्रों वर्षों के आर्थिक जीवन का सजीव वर्णन उपस्थित है। उस युग की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने वाली सामग्री बिखरी पड़ी है। प्राचीन भारत की वेशभूषा, मनोरञ्जन, नगर निर्माण,

शासन व्यवस्था और सहायता के साधनों का पूरा विवेचन किया गया है।<sup>६५</sup> आगमों पर प्रसिद्ध और उपलब्ध चूर्णियों के नाम इस प्रकार हैं—

१. आचारांग चूर्ण, २. सूत्र-कृतांग चूर्ण, ३. व्याख्या-प्रज्ञप्ति चूर्ण, ४. जीवाभिगम चूर्ण, ५. निशीथ चूर्ण, ६. महानिशीथ चूर्ण, ७. व्यवहार चूर्ण, ८. दशाश्रुत-स्कन्ध चूर्ण, ९. वृहत्कल्प चूर्ण, १०. पञ्चकल्प चूर्ण, ११. ओष नियुक्ति चूर्ण, १२. जीत-कल्प चूर्ण, १३. उत्तराध्ययन चूर्ण, १४. आवश्यक चूर्ण, १५. दशवैकालिक चूर्ण, १६. नन्दी चूर्ण, १७. अनुयोगद्वार चूर्ण और १८. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिचूर्ण।

उपर्युक्त चूर्णियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

१. **आचारांग चूर्ण**—आचारांग के दोनों श्रुत स्कन्धों पर प्राकृत एवं संस्कृत निःसृत चूर्ण लिखी गई है। भाषा, भाव आदि की दृष्टि से चूर्ण सरल एवं सुबोध है। विषय की गंभीरता को स्पष्ट करने के लिये कहीं-कहीं पर कथाओं का आश्रय लिया है जिससे पढ़ने वाला, सुनने वाला अर्थ की वास्तविकता का बोध कर सके। आचारांग चूर्ण की यही विशेषता है।

२. **सूत्र-कृतांग चूर्ण**—सूत्र-कृतांग सूत्र पर लिखी गई चूर्ण दार्शनिक सिद्धान्तों को अधिक सरल बना देती है। चूर्णिकार ने लोक कथाओं के माध्यम से सूत्र-कृतांग के विषय को अधिक सरल बना दिया है। इस चूर्ण के रचनाकार जिनदास गणि महत्तर हैं। इसमें चूर्णिकार ने विविध दार्शनिकों के मतों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कर नय और निक्षेप की दृष्टि का सर्वत्र उपयोग किया है।

३. **व्याख्या-प्रज्ञप्ति चूर्ण**—भगवती सूत्र के नाम से प्रसिद्ध यह आगम सूत्र की दृष्टि से बड़ा और विस्तृत है। परन्तु इसकी चूर्ण अति संक्षिप्त होते हुए भी शब्दों की व्युत्पत्ति को एवं सैद्धान्तिक विवेचन को स्पष्ट करने वाली है।

४. **जीवाभिगम चूर्ण**—जीवाभिगम सूत्र उपांग ग्रन्थों में आता है। यह जीव-तत्त्व और अजीव-तत्त्व के विषय को प्रस्तुत करने वाला है। यह मूलतः प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया ग्रन्थ है। चूर्णिकार ने जीव और अजीव तत्त्व के भेद और प्रभेदों के विस्तार के लिये चूर्ण का उपयोग किया है। जीवाभिगम चूर्ण पर मलयगिरि की टीका है। हरिभद्र और देव सूरि की लघु वृत्तियाँ इस पर लिखी गई हैं। इस पर एक छोटी अवचूर्ण थी, ऐसा भी संकेत मिलता है।

५. **निशीथ चूर्ण**—निशीथ चूर्ण के रचनाकार आचार्य जिनदास गणि महत्तर हैं। उपलब्ध सभी चूर्णियों में यह सबसे बड़ी व्याख्यात्मक चूर्ण है, क्योंकि यह निशीथ सूत्र, निशीथ नियुक्ति और निशीथ भाष्य इन तीनों पर लिखी गई है। प्राकृत और संस्कृत मिश्रित व्याख्या निशीथ चूर्ण को विशेष चूर्ण भी कहते हैं।

६. **महानिशीथ चूर्ण**—यह अनुपलब्ध चूर्ण है। इसकी गणना छेद सूत्रों में की जाती है। इसमें छः अध्ययन और दो चूलिकाएँ थीं, ऐसा संकेत मिलता है। वृद्धवादी, सिद्धसेन और देव गुप्त आदि आचार्यों ने इसे मान्य किया है।

७. व्यवहार चूर्णि—इस चूर्णि को द्वादशांग का नवनीत कहा जाता है। व्यवहार सूत्र छेद सूत्र का अङ्ग है। चूर्णिकार ने व्यवहार सूत्र पर संस्कृत और प्राकृत मिश्रित गद्य प्रधान शैली में साधु जीवन के आचार-विचार की सुन्दर समीक्षा की है।

८. दशाश्रुत स्कन्ध चूर्णि—यह चूर्णि दस अध्ययनों के अधिकारों में दशाश्रुत स्कन्ध की समीक्षा करता है। इसके रचनाकार भद्रबाहु हैं। इसकी गणना छेद सूत्रों में की जाती है। निर्युक्ति का आश्रय लेकर यह चूर्णि लिखी गई है। इसमें दशा, कल्प और व्यवहार को प्रत्याख्यान पूर्व से उद्धृत किया गया है। इसमें राजा सातवाहन, आचार्य कालक, सिद्धसेन एवं गोशालक आदि का आलेख भी है। इसके अतिरिक्त अन्य कई तपस्वियों का उल्लेख इस चूर्णि में हुआ है।

९. वृहतकल्प चूर्णि—यह चूर्णि वृहतकल्प सूत्र और उस पर लिखे गए लघु भाष्य पर संस्कृत और प्राकृत में लिखी गई गद्य प्रधान व्याख्या है। इसमें कल्प, वृहत् कल्प को कल्पाध्ययन भी कहा है। यह चूर्णि श्रमण-श्रमणियों के आचार-विचार की रूपरेखा को प्रस्तुत करने वाली है।

१०. पञ्चकल्प चूर्णि—इसकी गणना छेद सूत्रों में की जाती है। यह चूर्णि वृहतकल्प भाष्य का ही अंश है। इसमें आचार सम्बन्धी पाँच कल्पों का विवेचन है। इस पर लिखी गई चूर्णि अनुपलब्ध है। यह अगस्त्य सिंह सूरि की रचना है।

११. ओष-निर्युक्ति चूर्णि—ओष सूत्र पर लिखी गई एक लघु चूर्णि है। इसकी गणना मूल सूत्रों में की जाती है। इसमें मूलतः श्रमणों की समाचारी का विवेचन किया गया है। इसमें यह भी निर्देश किया गया है कि संयम की साधना में रत श्रमण असंयम से कैसे बचें? और संयम को कैसे धारण करें? सरल एवं सुबोध शैली में प्रस्तुत चूर्णि श्रमण जीवन की आदर्श कुंजी भी कही जा सकती है।

१२. जीत-कल्प चूर्णि—एक मात्र यही एक ऐसी चूर्णि है, जिसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग नहीं है। एक मात्र प्राकृत भाषा में निबद्ध गद्यात्मक शैली से युक्त इस चूर्णि का अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य सिद्धसेन ने इस पर चूर्णि लिखी है। उस पर चन्द्रसूरि ने विषम पद टीका लिखी है। चूर्णिकार सिद्धसेन ने प्रायश्चित्त के दस विकल्पों का प्राकृत में बहुत ही अच्छा विवेचन किया है। जीत कल्प की चूर्णि में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण को स्मरण किया है। इस पर एक अन्य चूर्णि भी लिखी गई है।<sup>६६</sup> ऐसा कथन भी किया जाता है।

१३. उत्तराध्ययन चूर्णि—जिनदासगणि महत्तर ने प्राकृत एवं संस्कृत मिश्रित उत्तराध्ययन सूत्र की जो व्याख्या प्रस्तुत की है उस व्याख्या का नाम उत्तराध्ययन चूर्णि है। यह चूर्णि निर्युक्ति का आश्रय लेकर लिखी गई है। चूर्णिकार ने जगह-जगह पर लोक कथाओं के माध्यम से भी विषय की गंभीरता को स्पष्ट किया है। प्रसंगवश इस चूर्णि में तत्त्व चर्चा और लोक चर्चा भी उपलब्ध होती है।

१४. **आवश्यक चूर्णि**—जिनदास गणि महत्तर द्वारा लिखी गई यह चूर्णि विषय और विवेचन की दृष्टि से यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन गया है। चूर्णिकार ने अनेक प्रकार के विषय के विस्तार को प्रस्तुत करने के लिए ही चूर्णि लिखी है। इसमें आवश्यक निर्युक्ति को आधार बनाया गया है। कहीं-कहीं पर विशेषावश्यक भाष्य की गाथाओं के विषय को सरल बनाया गया है। यह चूर्णि केवल शब्दों के अर्थ तक ही सीमित नहीं है अपितु भाषा और विषय की स्वतन्त्रता के लिए हुए बहुत ही पूर्ण व्याख्या को प्रस्तुत करने वाली है।

१५. **दशवैकालिक चूर्णि**—इस चूर्णि के प्रस्तुतकर्ता जिनदासगणि महत्तर हैं। दशवैकालिक निर्युक्ति के आधार पर यह चूर्णि लिखी गई है। इसमें आवश्यक चूर्णि का उल्लेख मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह कृति आवश्यक चूर्णि के पश्चात् प्रस्तुत की गई होगी। भावना, भाषा और शैली की दृष्टि से यह चूर्णि अति उपयोगी है। प्रसंगानुसार इस चूर्णि में लोक कथाओं एवं लोक परम्पराओं का भी मिश्रण हो गया है। भाषा, विज्ञान की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण चूर्णि है।

१६. **नन्दी चूर्णि**—नन्दी सूत्र पर आधारित यह चूर्णि ज्ञान की गंभीरता को स्पष्ट करती है, इसमें ऐतिहासिक सामग्री की प्रचुरता है। इसमें लोक कथाओं एवं लोक रूपों का समावेश है।

१७. **अनुयोग-द्वार चूर्णि**—अनुयोग-द्वार सूत्र पर जिनदास गणि महत्तर ने प्राकृत और संस्कृत मिश्रित गद्य प्रधान शैली में व्याख्या प्रस्तुत की है। इसमें शासन व्यवस्था का उल्लेख है। संगीत के पदों का भी कहीं-कहीं पर प्रयोग किया गया है इसलिए यह कहा जाता है कि प्राकृत में संगीत शास्त्र पर कोई ग्रन्थ अवश्य रहा होगा। इसमें सात स्वरों और नव रसों का सोदाहरण विवेचन किया गया है।<sup>६७</sup> यह चूर्णि भाव और शैली की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

१८. **जम्बू-द्वीपप्रज्ञप्ति चूर्णि**—जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति पर लिखी गई चूर्णि जम्बू-द्वीप के विस्तार को प्रस्तुत करने वाली है। यह चूर्णि लघु होते हुए भी द्वीप-समुद्रों जैसे विवेचन के लिए उपयोगी है।

आंगमों पर प्रस्तुत की गई चूर्णियों के अध्ययन प्रस्तुत करने से ज्ञात होता है कि चूर्णियाँ विषय की गहराई तक को स्पर्श करने वाली हैं। इनमें धर्म, दर्शन, समाज, संस्कृति, कला इतिहास, पुरातत्त्व, लोक जीवन, लोक व्यवहार, लोक संस्कृति, लोक कथा आदि की विपुल सामग्री होने के कारण कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। चूर्णियों पर अब तक कोई भी अनुसंधान नहीं किया गया है। अनुसंधान के कारण चूर्णियों के वास्तविक स्वरूप को आँका जा सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि चूर्णियाँ भी उपयोगी हैं।

## टीका साहित्य का परिचय

अर्ध-मागधी प्राकृत में लिखे गए मूल आगमों पर प्रारम्भ में निर्युक्तियों और भाष्य ग्रन्थों पर प्रणयन हुआ। चूर्णिकारों ने चूर्णि युग में प्राकृत और संस्कृत से युक्त विवेचन प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् इनका टीका साहित्य ने व्याख्या साहित्य के रूप में प्रवेश किया। टीकाओं को वृत्तियाँ कहते हैं। मूल रूप से रूप सूत्रों, निर्युक्तियों, भाष्यों और चूर्णियों पर संस्कृत में जो टीकाएँ प्रस्तुत की गईं, उन्हें वृत्ति कहा जाता है।

आगम पर वृत्तियों के लिखे जाने के कारण से मूल सूत्र के रहस्य अधिक स्पष्ट हुए। इसलिए संस्कृत में लिखी गई वृत्ति को जैन साहित्य का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है।<sup>६८</sup> क्योंकि संस्कृत की वृत्तियों ने आगम के शब्दों को, आगम के भावों को और आगम के गंभीर चिन्तन को विस्तार प्रदान किया। वृत्ति के रूप में प्रस्तुत विवेचन दार्शनिक विश्लेषण को प्रस्तुत करने वाला है। इसलिए वृत्ति साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

### आगम के प्रसिद्ध वृत्तिकार—

आगमों पर चूर्णि युग के बाद जो विवेचन प्रस्तुत किया गया, वह वृत्ति के रूप में प्रसिद्ध हुआ। वृत्तिकारों में हरिभद्र सूरि का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने आगम साहित्य के अतिरिक्त अन्य कई प्राकृत एवं संस्कृत साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों पर वृत्तियाँ लिखी हैं। आपके द्वारा प्रस्तुत वृत्तियाँ दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विषयों को प्रस्तुत करने वाली हैं।

शीलाङ्काचार्य ने आचारांग और सूत्र-कृतांग पर जो विवेचन प्रस्तुत किया है वह वृत्ति साहित्य में विस्तृत दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाला है।

मूलतः इनके वृत्ति ग्रन्थों में दार्शनिक तत्त्वों की बहुलता है। इनकी वृत्तियों में सामाजिक, धार्मिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष को विस्तृत रूप से देखा जा सकता है।

### वृत्तिकारों का परिचय—

१. जिनभद्रगणि की स्वोपज्ञ वृत्ति—विशेषावश्यक भाष्य पर जिनभद्र गणि क्षमाक्षमण ने स्वोपज्ञ वृत्ति लिखी, पर यह पूर्ण नहीं है। आगम साहित्य की यह प्रथम विवेचना शैली की दृष्टि से सरल, संक्षिप्त, सरस और विविध गुणों से अलंकृत है। विशेषावश्यक भाष्य की अपूर्ण वृत्ति को कोट्याचार्य ने पूर्ण किया।

२. हरिभद्रसूरि और उनकी वृत्तियाँ—हरिभद्रसूरि प्राकृत एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने मूल आगम ग्रन्थों के प्राकृत विवेचन को अपनी अनुभूति में उतार कर उन पर संस्कृत में वृत्तियाँ लिखी हैं। उन वृत्तियों में महत्त्वपूर्ण वृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—



१. नन्दी वृत्ति, २. अनुयोग-द्वार वृत्ति, ३. दशवैकालिक वृत्ति, ४. प्रज्ञापना-प्रदेश व्याख्या और ५. आवश्यक वृत्ति इत्यादि कई वृत्तियाँ उनकी प्रसिद्ध हैं। आपने १४४ ग्रन्थों की रचना की थी। उपलब्ध ग्रन्थों में दार्शनिक विवेचन की बहुलता है।

**कोट्याचार्य की वृत्ति का विवेचन**—विशेषावश्यक भाष्य पर १३,७०० श्लोक प्रमाण विवरण प्रस्तुत किया है जो विवेचन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

**आचार्य गन्धहस्ति की वृत्ति का विवेचन**—तत्त्वार्थभाष्य पर जो बृहद् वृत्ति का उल्लेख मिलता है, वह गन्धहस्ति का माना गया है।<sup>६९</sup> दूसरा सिद्धसेन का था, जो तार्किक विद्वान् थे।

**शीलाङ्गाचार्य और उनकी वृत्तियाँ**—तत्त्वादित्य एवं शीलाचार्य के नाम से प्रसिद्ध शीलाङ्गाचार्य का नाम मूल आगम ग्रन्थों की वृत्तियों के लिये प्रसिद्ध है। शीलाङ्गाचार्य का नाम आचारांग वृत्ति में शीलाचार्य दिया गया है और दूसरा नाम तत्त्वादित्य भी आया है।<sup>७०</sup>

आचारांग वृत्ति के प्रथम श्रुत स्कन्ध में यह भी कथन किया गया है कि शीलाचार्य ने भाद्र शुक्ला पञ्चमी के गुप्त सं. ७७२ के दिन सम्यक् विवेचन युक्त टीका प्रस्तुत की।<sup>७१</sup> जिससे महत्त्वपूर्ण शोध कार्य हमारे सामने आया है। टीकाकार शीलाङ्गाचार्य ने ब्रह्मचर्य श्रुत स्कन्ध की समाप्त के पश्चात् यह प्रतिज्ञा की है कि जो मेरे द्वारा यह आचारांग की टीका आचार (चारित्र) के प्रतिपादन के लिये प्रस्तुत की जा रही है वह इसी पुण्य के संचय का कारण है। जगत के सामने निवृत्ति रूप है जो अतुल योग्य तुला पर सदाचार को मेरे द्वारा रखा जा रहा है। उसमें वर्ण, पद, अर्थ, वाक्य, पद्य आदि किसी तरह से छूट गए होंगे, उसे यदि शोधार्थी के द्वारा शोध का प्रयत्न किया गया तो निश्चित ही किसी तरह का व्यामोह नहीं होगा।<sup>७२</sup>

शीलाङ्गाचार्य अर्थात् शीलाचार्य का विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता है। प्रभावक चरित्र के अनुसार शीलाचार्य ने नौ अङ्ग आगम ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी हैं। परन्तु आचारांग वृत्ति और सूत्र-कृतांग वृत्ति ही उपलब्ध हैं। डॉ. जगदीश चन्द्र जैन ने टीका साहित्य के परिचय में आचारांग और सूत्र-कृतांग की संस्कृत टीकाओं के विषय में विशेष उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने इस विषय में यह लिखा है कि हरिभद्र सूरि के पश्चात् लगभग १०० वर्ष के उपरान्त शीलाङ्क सूरि ने आचार-विचार एवं तत्त्व-ज्ञान सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन आचारांग और सूत्र-कृतांग वृत्ति में किया है।<sup>७३</sup> डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने शीलाङ्क आचार्य के विषय में सामान्य रूप से यही लिखा है कि आचारांग और सूत्रकृतांग इन दो अङ्ग आगमों पर महत्त्वपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं।<sup>७४</sup>

टीकाकार के समय के विषय में डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि शीलाङ्क आचार्य ने ईस्वी ८७६ में वृत्तियाँ लिखी हैं।<sup>७५</sup> जगदीश चन्द्र जैन ने यही समय

निश्चित किया है।<sup>१६</sup> देवेन्द्र मुनि ने अपने विस्तृत विवेचन में शीलांक का समय विक्रम की नौवीं-दसवीं शताब्दी माना है।<sup>१७</sup>

### आचारांग वृत्ति—

अङ्ग आगम साहित्य का प्रथम सूत्र आचारांग सूत्र है। यह आगम विषय की दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही अर्ध-मागधी प्राकृत भाषा श्रेष्ठतम आगम है। इस आगम पर निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि जैसी टीकाएँ लिखी गई हैं जो आचारांग की विषय-वस्तु को अत्यन्त सरल एवं मार्मिक दृष्टि को प्रस्तुत करता है, परन्तु आचारांग के मूल विषय को आधार बना कर शीलांक आचार्य ने संस्कृत में वृत्ति लिखकर न केवल विषय के गाम्भीर्य को सुगम बनाया है अपितु प्रत्येक विवेचन के साथ आचारांग की मूल भावना को व्यक्त किया है। उन्होंने प्रत्येक शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया है। अर्थ के गाम्भीर्य का खुलासा किया है तथा विविध प्रकार की व्युत्पत्तियों को भी प्रस्तुत किया है।

वृत्तिकार की वृत्ति में अनेक प्रकार की विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही मैंने अपने शोध का विषय बनाया है। आचारांग वृत्ति के विविध विषयों की विवेचना में से एक विषय को ही अपने शोध क्षेत्र का कार्य बनाया जा सकता था। परन्तु वृत्ति के गाम्भीर्य को समेटने के लिये समग्र विवेचन को प्रस्तुत करने का मेरा प्रयास क्षमा योग्य नहीं होगा।

मुझे आचारांग वृत्ति के विविध विषय विवेचन, भाषा, शैली, दार्शनिक विवेचन, आदि की सामग्री ने सुबोध विवरण लिखने के लिए प्रेरित किया। इसमें जो कुछ देखा गया, अनुभव किया गया या चिन्तन किया गया उसके अनुसार सामग्री को समालोचनात्मक दृष्टि से प्रतिपादन अपने आप में महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। आचारांग वृत्ति की समग्र दृष्टि निक्षेप पद्धति पर आधारित है जो दर्शन क्षेत्र में श्रेष्ठकर मानी गई है। शीलाङ्काचार्य ने इस वृत्ति में आचारांग की आचार संहिता को स्पष्ट किया है।

### सूत्र-कृतांग वृत्ति—

शीलाङ्काचार्य ने मूल आगम पर दार्शनिक वृत्ति लिखी है। सूत्र-कृतांग पर निर्युक्ति भी लिखी गई है। यह निर्युक्ति भी दार्शनिक चिन्तन से पूर्ण है। सूत्र-कृतांग सूत्र मूल आगम साहित्य का दार्शनिक ग्रन्थ माना जाता है। इसका प्रत्येक अध्ययन दार्शनिक चिन्तन को प्रस्तुत करने वाला है। इसमें सर्वप्रथम अपने मत की अर्थात् जिन मत की पुष्टि की गई है और उसी प्रसंग में दार्शनिक के चिन्तनशील विचारों एवं मान्यताओं का विवेचन है। वृत्तिकार ने प्रत्येक दार्शनिक के विचारों को प्रस्तुत करके अपने मत का स्पष्टीकरण किया है। सूत्रकृतांग के वृत्तिकार ने दार्शनिक एवं धार्मिक चिन्तन के अनेक दृष्टान्तों के माध्यम से स्पष्ट किया है। विषय को सरल

बनाने के लिए गद्य प्रधान शैली के बीचोंबीच विविध गाथाएँ भी दी हैं और कही-कहीं संस्कृत श्लोकों को रखा है।

शीलांकाचार्य की वृत्ति १२८५० श्लोक प्रमाण है। इस वृत्ति में वृत्तिकार ने कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है।

वृत्तिकार शान्तिसूरि विचारशील दार्शनिक थे इसलिए इन्हें वादी बेताल की उपाधि से अलंकृत किया गया था। यह उपाधि राजा भोज द्वारा दी गई थी। धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' पर शान्तिसूरि ने जो टिप्पणी लिखी, वह वृत्ति के रूप में प्रचलित हुई। उत्तराध्ययन सूत्र पर प्राकृत में लिखी गई वृत्ति, जिसे शिष्यहिता वृत्ति कहा गया है। शान्तिसूरि ने अन्य कई ग्रन्थों पर वृत्ति लिखी हैं जो दार्शनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

विक्रम सं. की ११वीं-१२वीं शताब्दी में आचार्य द्रोण ने संस्कृत और प्राकृत में ओष निर्युक्ति और लघुभाष्य पर वृत्ति लिखी हैं जो सरल भाषा में हैं।

### अभयदेवसूरि और उनकी वृत्तियाँ—

अनुपम प्रतिभा के धनी अभयदेव सूरि ने कई आगमों पर वृत्तियाँ लिखी हैं जिनमें स्थानांग, प्रश्नव्याकरण, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुतरोपपातिक दशा, विपाक औपपातिक आदि वृत्तियाँ प्राप्त हैं।

स्थानांग वृत्ति को लिखते समय अभयदेव सूरि ने अपनी कठिनाइयों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

१. संत सम्प्रदाय का अभाव—अर्थ बोध की सम्यक् गुरु परम्परा की अनुपलब्धता।
२. सद्-ऊह-अर्थ की आलोचनात्मक स्थिति की अप्राप्ति।
३. आगम की अनेक वाचनाएँ।
४. पुस्तकों की अशुद्धता।
५. आगम का सूत्रात्मक होना विषय की गंभीरता का परिचायक है।
६. अर्थ-विषयक भेद।<sup>५८</sup>

### मलयगिरि और उनकी वृत्तियाँ—

आचार्य मलयगिरि बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने आगमों पर महत्त्वपूर्ण वृत्तियाँ लिखी हैं जिनमें जैन सिद्धान्त के सभी पक्षों का सम्यक् विवेचन देखने को मिलता है। मलयगिरि की वृत्तियों में गणित, ज्योतिष, भूगोल और सिद्धान्त, कर्म विवेचन, तत्त्व चिन्तन आदि के विषय देखे जा सकते हैं।

मलयगिरि आगम के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्हें शब्दानुशासन का पंडित माना गया था, क्योंकि उन्होंने शब्दानुशासन की भी रचना की थी। उनकी वृत्तियों में व्याकरण सम्बन्धी नियम एवं व्याकरण के सूत्र भी देखे जाते हैं। मलयगिरि ने १५वीं

शताब्दी में बहुत कुछ लिखा परन्तु उपलब्ध निम्न ग्रन्थ ही हैं,<sup>५९</sup> जिनका निर्देश इस प्रकार है—

**उपलब्ध वृत्तियाँ—**कोष्ठक में श्लोक प्रमाण दिये हैं।

१. भगवती सूत्र—द्वितीयशतक वृत्ति	(३७५०)
२. राजप्रश्नीयोपाङ्ग टीका	(३७००)
३. जीवाभिगमोपाङ्ग टीका	(१६०००)
४. प्रज्ञापनोपाङ्ग टीका	(१६०००)
५. चन्द्रप्रज्ञप्त्युपाङ्ग टीका	(९५००)
६. सूर्यप्रज्ञप्त्युपाङ्ग टीका	(९५००)
७. नन्दी-सूत्र टीका	(७७३२)
८. व्यवहार-सूत्र वृत्ति	(३४०००)
९. बृहत्कल्प पीठ की वृत्ति (अपूर्ण)	(४६००)
१०. आवश्यक वृत्ति (अपूर्ण)	(१८०००)
११. पिण्डनिर्युक्ति टीका	(६७००)
१२. ज्योतिष्करण्डक टीका	(५०००)
१३. धर्म संग्रहणी वृत्ति	(१००००)
१४. कर्मप्रकृति वृत्ति	(८०००)
१५. पञ्च संग्रह वृत्ति	(१८८५०)
१६. षडशीति वृत्ति	(२०००)
१७. सप्ततिका वृत्ति	(३७८०)
१८. वृहत्संग्रहणी वृत्ति	(५०००)
१९. वृहत्क्षेत्रसमास वृत्ति	(९५००)
२०. मलयगिरि शब्दानुशासन	(५०००)

**अनुपलब्ध वृत्तियाँ—**

१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, २. ओष निर्युक्ति, ३. विशेषावश्यक, ४. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र।

**मलधारी हेमचन्द्र और उनकी वृत्तियाँ—**

आगम ज्ञाता के रूप में प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र अपने समय के प्रतिभा सम्पन्न आगम वेत्ता थे। अभयदेव सूरि के पश्चात् मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने कई

वृत्तियाँ लिखी हैं। आप आगमवेत्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपने ५००० ग्रन्थ पढ़े थे।<sup>१०</sup> उनकी वृत्तियाँ निम्न हैं। कोष्ठक में श्लोक प्रमाण दिये हैं—

१. आवश्यक टिप्पणी	(५०००)
२. शतक विवरण	(४०००)
३. अनुयोगद्वार वृत्ति	(८०००)
४. पुष्पमाला मूल	X
५. पुष्पमाला वृत्ति	(१४०००)
६. जीव समास विवरण	(७०००)
७. भवभावना सूत्र	X
८. भवभावना विवरण	(१३०००)
९. नन्दि टिप्पणक	X
१०. विशेषावश्यक भाष्य बृहद् वृत्ति	(२८०००)

### नेमिचन्द्र की वृत्ति—

सुबोधक सुख-बोधा वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध यह विवेचन जन-जन की श्रुति का केन्द्रबिन्दु बना हुआ है। विक्रम सं. ११२९ में उत्तराध्ययन पर सरल से सरल एवं सुबोध शैली में सुख का बोध कराने वाली वृत्ति लिखी गई।

नेमिचन्द्र सूत्र का दूसरा नाम देवेन्द्र गणि भी प्राप्त होता है। ये बृहद् गच्छीय उपाध्याय आम्रदेव के शिष्य थे। उनके गुरु भ्राता मुनिचन्द्रसूरि की प्रेरणा से सामान्यजनों के हित के लिए यह वृत्ति लिखी। जिसकी पूर्णाहुति अणहिलपुरपाटण नगर में हुई थी। उत्तराध्ययन की इस वृत्ति में १२००० श्लोक प्रमाण वृत्ति का विवेचन है। नेमिचन्द्र सूत्र की अन्य रचनाएँ अब तक प्रकाश में नहीं आईं। यह सूचना भी शीलाङ्गाचार्य हरिभद्र और शान्तिसूरि की वृत्तियों से प्रभावित होकर लिखी गई थी।

उत्तराध्ययन वृत्ति में वृत्तिकार ने ग्रन्थ के आरम्भ में तीर्थकरों, सिद्धों, साधुओं एवं श्रुत आराधक देवों की वन्दना की है। उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययन के मूलभूत विषय को ध्यान में रख कर प्रत्येक विवेचन में सैद्धान्तिक निपुणता का परिचय दिया है। सम्पूर्ण प्रसूति दृष्टान्तों से परिपूर्ण है।

### श्रीचन्द्रसूरि की वृत्तियाँ—

श्रीचन्द्रसूरि ने—१. न्याय प्रवेश-पञ्जिका, २. जयदेवछन्द : शास्त्र टिप्पणक, ३. निशीथ-चूर्णि टिप्पणक, ४. नन्दि-सूत्र हरिभद्री टिप्पणक, ५. जीतकल्प चूर्णि टिप्पणक, ६. पञ्चोपांग सूत्रवृत्ति, ७. श्राद्ध-सूत्र, ८. प्रतिक्रमण सूत्र वृत्ति, ९. पिण्ड-विशुद्धिवृत्ति इत्यादि वृत्तियाँ न्याय एवं सिद्धान्त के विषय को प्रतिपादित करने वाली लिखी हैं। आगमों पर श्रीचन्द्रसूरि की कम वृत्तियाँ हैं, अन्य ग्रन्थों पर अधिक हैं।

## आगमों की वृत्तियों का संक्षिप्त परिचय—

अङ्ग	टीकाकार
१. आचारांग	आचार्य शीलांक, जिनहंस, जिनचन्द्र
२. सूत्र-कृतांग	आचार्य शीलांक, हर्षकुल, साधुरंग
३. स्थानांग	अभयदेवसूरि, नगर्षि, सुमतिकल्लोल
४. समवायांग	अभयदेवसूरि, नगर्षि
५. भगवती	अभयदेवसूरि, नगर्षि
६. ज्ञाताधर्मकथांग	अभयदेवसूरि, नगर्षि, कस्तूरचन्द्र
७. उपासकदशांग	अभयदेवसूरि, नगर्षि
८. अन्तकृद्दशांग	अभयदेवसूरि, नगर्षि
९. अनुत्तरोपपातिकदशांग	अभयदेवसूरि, नगर्षि
१०. प्रश्नव्याकरण	अभयदेवसूरि, ज्ञानविमल
११. विपाक	अभयदेवसूरि

उपांग	टीकाकार
१. औपपातिक	अभयदेव सूरि
२. राज-प्रश्नीय	हरिभद्र, मलयगिरि, देवसूरि
३. जीवाभिगम	मलयगिरि
४. प्रज्ञापना	मलयगिरि, हरिभद्र, कुलमण्डन
५. सूर्य-प्रज्ञप्ति	मलयगिरि
६. जम्बू-द्वीप प्रज्ञप्ति	मलयगिरि, शान्तिचन्द्र, ब्रह्मर्षि
७. चन्द्र-प्रज्ञप्ति	मलयगिरि
८. कल्पिका	श्री चन्द्रसूरि, लाभश्री
९. कल्पावतंसिका	श्री चन्द्रसूरि, लाभश्री
१०. पुष्पिका	श्री चन्द्रसूरि, लाभश्री
११. पुष्पचूलिका	श्री चन्द्रसूरि, लाभश्री
१२. वृष्णिदशा	श्री चन्द्रसूरि, लाभश्री

मूल	टीकाकार
१. दशवैकालिक	हरिभद्र, समयसुन्दरगणि तिलकाचार्य, सुमति सूरि, अपराजित सूरि, विनयहंस

२. उत्तराध्ययन

३. आवश्यक

४. पिण्ड-निर्युक्ति अथवा

औष-निर्युक्ति

**चूलिका**

१. नन्दी

२. अनुयोगद्वार

**छेद**

१. निशीथ

२. महानिशीथ

३. व्यवहार

४. दशाश्रुतस्कन्ध

५. वृहत्कल्प

६. पञ्चकल्प

**प्रकीर्णक**

१. चतुःशरण

२. आतुरप्रत्याख्यान

३. महाप्रत्याख्यान

४. भक्तपरिज्ञा

५. तन्दुलवैचारिक

६. संस्तारक

७. गच्छाचार

८. गणि-विद्या

९. देवेन्द्र-स्तव

१०. मरण-समाधि

वादिवेताल शान्ति-सूरि, नेमिचन्द्र  
कमलसंयम, लक्ष्मी-वल्लभ, भाव-विजय

हरिभद्र, मलयगिरि, तिलकाचार्य,  
कोट्याचार्य, नमि-साधु, माणिक्य,  
शेखर, तरुणप्रभाचार्य

मलयगिरि, वीराचार्य  
द्रोणाचार्य, मलयगिरि

**टीकाकार**

हरिभद्र, मलयगिरि, जिनचारित्रसूरि

हरिभद्र, मलधारी हेमचन्द्र

**टीकाकार**

प्रद्युम्न सूरि

प्रद्युम्न सूरि

मलयगिरि

ब्रह्मर्षि

मलयगिरि, क्षेमकीर्ति सूरि

मलयगिरि, क्षेमकीर्ति सूरि

**टीकाकार**

गुणरत्नसूरि

गुणरत्नसूरि

गुणरत्नसूरि

गुणरत्नसूरि

विजयविमल

गुणरत्नसूरि

विजयविमल

विजयविमल

विजयविमल

विजयविमल

**अन्य वृत्ति और वृत्तिकार—**

**वृत्तिकार**

**वृत्तिग्रन्थ**

**आचाराङ्ग-शीलाङ्गवृत्ति : एक अध्ययन**

४१

- |   |  |
|---|--|
| १. श्री तिलकसूरि<br>(१२वीं शताब्दी)                                 | आवश्यक सूत्र, जीत-कल्प वृत्ति<br>दशवैकालिक वृत्ति  |
| २. क्षेमकीर्ति  | मलयगिरि रचित बृहद्-कल्प की<br>अपूर्ण टीका  |
| ३. भुवनतुंगसूरि (महेन्द्र सूरि<br>के शिष्य थे)<br>(विक्रम सं. १२९४) | चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान और<br>संस्तारक पर टीकाएँ।  |
| ४. गुणरत्न (विक्रम सं. १४८४)  | भक्तपरिज्ञा, संस्तारक, चतुःशरण<br>आतुरप्रत्याख्यान प्रकरणों की टीकाएँ<br>तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार की टीकाएँ |
| ५. विजयविमल<br>(विक्रम सं. १६३४)                                    |  |
| ६. वानर्षि  | गच्छाचारप्रकीर्णक की वृत्ति  |
| ७. हीरविजय सूरि<br>(विक्रम सं. १६३९)                                | जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की टीका   |
| ८. शान्तिचन्द्रगणि<br>(विक्रम सं. १६६०)                             | जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति पर प्रमेयरत्नमञ्जूषा<br>टीका   |
| ९. जिनहंस (विक्रम सं. १५८२)   | आचारांग की टीका  |
| १०. हर्षकुल (विक्रम सं. १५८३)                                       | सूत्र-कृतांग, दीपिका, भगवती टीका<br>और उत्तराध्ययन टीका  |
| ११. लक्ष्मीकल्लोलगणि<br>(विक्रम सं. १५९६)                           | आचारांग वृत्ति, ज्ञाताधर्मकथा वृत्ति   |
| १२. दानशेखर   | व्याख्या-प्रज्ञप्ति लघु वृत्ति   |
| १३. विनयहंस   | उत्तराध्ययनवृत्ति, दशवैकालिक वृत्ति  |
| १४. जिनभट्ट   | आवश्यक वृत्ति  |
| १५. नमिसाधु (विक्रम सं. ११२२)                                       | आवश्यक वृत्ति  |
| १६. ज्ञानसागर (विक्रम सं. १४४०)                                     | आवश्यक वृत्ति  |
| १७. माणिक्यशेखर   | आवश्यक वृत्ति  |
| १८. शुभवर्द्धन गणि (सं. १५४०)                                       | आवश्यक वृत्ति  |
| १९. धीरसुन्दर (सं. १५००)  | आवश्यक वृत्ति  |
| २०. श्रीचन्द्रसूरि (सं. १२२२)                                       | आवश्यक वृत्ति  |
| २१. कुलप्रभ (१३)  | आवश्यक वृत्ति  |
| २२. राजवल्लभ  | आवश्यक वृत्ति  |



२१. कुलप्रभ (१३)	आवश्यक वृत्ति
२२. राजवल्लभ	आवश्यक वृत्ति
२३. हितरुचि (सं. १६९७)	आवश्यक वृत्ति
२४. अजितदेव सूरि	आचारांग वृत्ति
२५. पार्श्वचन्द्र (सं. १५७२)	आचारांग वृत्ति
२६. माणिक्यशेखर	आचारांग वृत्ति
२७. साधुरंग उपाध्याय (सं. १५९९)	सूत्र-कृतांग वृत्ति
२८. नगर्षिगणि (सं. १६५७)	स्थानांग वृत्ति
२९. पार्श्व चन्द्र	स्थानांग वृत्ति
३०. सुमतिकल्लोल	स्थानांग वृत्ति
३१. हर्षनंदन (सं. १७०५)	स्थानांग वृत्ति
३२. मेघराज वाचक	समयावांग
३३. भावसागर	व्याख्याप्रज्ञप्ति
३४. पद्मसुन्दरगणि	भगवती व्याख्या
३५. कस्तूरचन्द्र (सं. १८९९)	ज्ञाताधर्मकथा
३६. हर्षवल्लभ उपाध्याय (सं. १६९३)	उपासक-दशांग
३७. विवेकहंस	उपासक-दशांग वृत्ति
३८. ज्ञानविमलसूरि	प्रश्नव्याकरण वृत्ति
३९. पार्श्वचन्द्र	प्रश्नव्याकरण वृत्ति
४०. अजितदेवसूरि	प्रश्नव्याकरण वृत्ति
४१. राजचन्द्र	औपपातिक वृत्ति
४२. पार्श्वचन्द्र	औपपातिक वृत्ति
४३. राजचन्द्र	राजप्रश्नीय वृत्ति
४४. रत्नप्रभसूरि	राजप्रश्नीय वृत्ति
४५. समरचन्द्र सूरि	राजप्रश्नीय वृत्ति
४६. पदसागर (सं. १७००)	जीवाभिगम
४७. जीवविजय (सं. १८८४)	प्रज्ञापना
४८. पुण्यसागर (सं. १६४५)	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
४९. विनयराजगणि	चतुःशरण

५०. पार्श्वचन्द्र	चतुःशरण
५१. विनयसेनसूरि	चतुःशरण
५२. हेमचन्द्र गणि	आतुर-प्रत्याख्यान
५३. समरचन्द्र (सं. १६०३)	संस्तारक वृत्ति
५४. पार्श्वचन्द्र	तन्दुल वैचारिक
५५. सौभाग्यसागर	बृहद्-कल्प
५६. कीर्तिवल्लभ (सं. १५५२)	उत्तराध्ययन
५७. उपाध्याय कमलसंयम (सं. १५५४)	उत्तराध्ययन
५८. तपोरत्न वाचक (सं. १५५०)	उत्तराध्ययन
५९. गुणशेखर	उत्तराध्ययन
६०. लक्ष्मीवल्लभ	उत्तराध्ययन
६१. भावविजय (सं. १६८९)	उत्तराध्ययन
६२. हर्षनंदनगणि	उत्तराध्ययन
६३. धर्ममंदिर उपाध्याय (सं. १७५०)	उत्तराध्ययन
६४. उदयसागर (सं. १५४६)	उत्तराध्ययन
६५. मुनिचन्द्रसूरि	उत्तराध्ययन
६६. ज्ञानशीलगणि	उत्तराध्ययन
६७. अजितचन्द्र सूरि	उत्तराध्ययन
६८. राजशील	उत्तराध्ययन
६९. उदयविजय	उत्तराध्ययन वृत्ति
७०. मेघराज वाचक	उत्तराध्ययन वृत्ति
७१. नगर्षिगणि	उत्तराध्ययन वृत्ति
७२. अजितदेव सूरि	उत्तराध्ययन वृत्ति
७३. माणिक्यशेखर	उत्तराध्ययन वृत्ति
७४. ज्ञानसागर	उत्तराध्ययन वृत्ति
७५. सुमतिसूरि	दशवैकालिक वृत्ति
७६. समयसुन्दर (सं. १६८१)	दशवैकालिक वृत्ति
७७. शान्तिदेवसूरि	दशवैकालिक वृत्ति
७८. सोमविमलसूरि	दशवैकालिक वृत्ति

८१. मेरुसुन्दर	दशवैकालिक वृत्ति
८२. माणिक्यशेखर	दशवैकालिक वृत्ति
८३. ज्ञानसागर	दशवैकालिक वृत्ति
८४. क्षमारल	पिण्ड निर्युक्ति वृत्ति
८५. माणिक्यशेखर	पिण्ड निर्युक्ति वृत्ति
८६. जयदयाल	नन्दिवृत्ति
८७. पार्श्वचन्द्र	नन्दिवृत्ति
८८. ज्ञानसागर (सं. १४३९)	ओघ निर्युक्ति
८९. माणिक्यशेखर	ओघ निर्युक्ति
९०. ब्रह्ममुनि (ब्रह्मर्षि)	दशाश्रुतस्कन्ध वृत्ति

उपर्युक्त वृत्ति और वृत्तिकारों की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत न करके एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है। वृत्तिकारों ने अन्य कई वृत्तियाँ भी लिखी हैं, जिनका उल्लेख इतिहासकारों ने अलग-अलग विवेचनों में प्रस्तुत किया है। आज उपलब्ध वृत्तियों पर केवल कथन मात्र ही किया जाता है, उस पर परिचयात्मक दृष्टिकोण अपने आप में वृत्तियों की विषय की गंभीरता को प्रस्तुत कर सकेगा। यह एक स्वतन्त्र अनुसंधान का विषय है। विचारकों के सामने एवं मेरे स्वयं की दृष्टि में यह जिज्ञासा बनी रही कि वृत्ति के रहस्य को अलग-अलग खोला जाए। यह कठिन कार्य हजारों हाथों से ही संभव है दो हाथों से शीलांक-आचार्य के आचारांग सूत्र पर प्रस्तुत विवेचन को भारी मानते हुए जो कुछ प्रयास किया जा रहा है, वह सूर्य को दीपक दिखाने की तरह होगा।

आज भी वृत्तियों की खोज की आवश्यकता है। शास्त्र भण्डार मौन पड़े हुए हैं। वे ऐसे व्यक्ति की आकांक्षा कर रहे हैं जिनमें वृत्ति रूप पर्वत को उठाने की शक्ति है। हमारे प्राचीन भण्डार निश्चित ही सांस्कृतिक धरोहर के प्रहरी हैं। इसलिए ऐसा प्रयास आवश्यक हो जाता है कि अनुसंधानकर्ता सामान्य विषयों की अपेक्षा इस तरह के दुरूह कार्य को संपादित कर अनुसंधान के क्षेत्र को बढ़ाएँ।

आचारांग वृत्ति इन वृत्तियों में इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि यह आचारांग सूत्र का प्रथम परिचय है। आगमों में यह प्रथम आगम है। इसलिए भी इसका महत्त्व नहीं है, अपितु यह आचारांग वृत्ति की नयात्मक, दार्शनिक दृष्टि शब्द की विश्लेषणात्मक पद्धति, पारिभाषिक विवेचना और पर्यायवाची शब्दों की शृंखला भी वृत्ति की शोभा बढ़ाने वाली है। शीलांक आचार्य की इस वृत्ति में बहुत कुछ है। इसलिए अन्य आगमों की वृत्ति की तरह इस वृत्ति का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

## टब्बा परिचय—

निर्युक्ति भाष्य चूर्णि एवं वृत्ति की परिसमाप्ति के उपरान्त टब्बा युग का प्रारम्भ होता है, जिसमें प्राकृत और संस्कृत की पारम्परिक पद्धति से हट कर प्राकृत की एक अन्य विधा अपभ्रंश में अपने स्थायीत्व के कारण विवेचनकर्ताओं के लिए इस मार्ग को अपनाया पड़ा।

टब्बा एक संक्षिप्त विवेचन शैली है, जिसे संक्षिप्त वृत्ति, संक्षिप्त टीका, संक्षिप्त विवेचन या संक्षिप्त परिचय भी कहा जा सकता है।

संस्कृत पण्डितों की भाषा थी। संस्कृत के स्थायीत्व ने भाष्य और वृत्तिकारों को जन्म दिया। परन्तु प्राकृत भाषा का अपना स्थान होने के कारण प्राकृत के ग्रन्थों पर प्राकृत में निर्युक्ति, चूर्णि आदि विवेचन प्रस्तुत किए गए। वे भाषा के बदलाव के साथ विवेचनकर्ता प्रस्तुति की पारम्परिक पद्धति को छोड़कर जन बोली को भी आदर देने लगता है। यही कारण था कि अपभ्रंश के स्वर्ण युग में अपभ्रंश में आगमों पर अनेक विवेचन प्रस्तुत किए गए। टब्बा का अर्थ विषय को विस्तार नहीं दे पाये, परन्तु संक्षिप्त शैली और जन बोली में जो विवेचन प्रस्तुत किया गया वह टब्बा कहा गया।

## टब्बाकार कौन ?

टब्बाकार में पार्श्वचन्द्र सूरि का नाम प्रसिद्ध है। धर्मसिंह जी महाराज ने २७ सूत्रों पर टब्बे लिखे थे। टब्बे बहुत सुन्दर और स्पष्ट लिखे हुए हैं। इनका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है।

टब्बा उन लोगों के लिये महत्व का है जो संस्कृत और प्राकृत से अनभिज्ञ हैं। संस्कृत और प्राकृत के अभाव में टब्बाकारों द्वारा लिखित टब्बा के माध्यम से साधारण जन भी आगमों का ज्ञान कर सकते थे। इसलिये इन्हें बालावबोध कहा जाता था।<sup>६९</sup>

## अनुवाद परिचय—

आगम सूत्र मूल रूप में प्राकृत में लिखे गये हैं। उन पर टीकाकारों ने संस्कृत एवं प्राकृत में अपनी व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। उन व्याख्याओं या विवेचनों को पूर्व में विशिष्ट ज्ञानीजन ही अध्ययन कर पाते थे। धीरे-धीरे यह परम्परा लुप्त होती गई। भाषा ने भी विकास को प्राप्त किया। स्थानीय भाषाओं, बोलियों ने अपना आधिपत्य समाया, तदनुसार बदलते भाषा परिवेश में उसी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किये गये, जिस भाषा से आगम के रहस्य को भली-भाँति समझा जा सके। पहले प्राकृत एवं संस्कृत विवेचन को तथा मूल सूत्रों को भाषान्तर रूप में प्रस्तुत किया गया। फिर प्रान्तीय या राष्ट्रीय भाषाओं में। मूलतः उनमें तीन प्रमुख भाषाएँ हैं :—

१. अंग्रेजी भाषा
२. गुजराती
३. हिन्दी

### १. अंग्रेजी भाषान्तर—

हर्मन जैकोबी ने आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन और कल्पसूत्र पर जो भाषान्तर/अनुवाद प्रस्तुत किये, उससे देश-विदेश के विद्वानों को आगमों की वास्तविकता का बोध हो सका। इनके प्रस्तुतिकरण से आगमों की सांस्कृतिक धरोहर का ज्ञान हो सका। जर्मन के इस विद्वान ने अन्य कई जैन ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद या उसकी अंग्रेजी भूमिका लिखी जिससे तत्त्वज्ञान की वास्तविकता का बोध हो सका।

दशवैकालिक सूत्र पर भारतीय विद्वान अर्ध्यंकर ने अंग्रेजी अनुवाद किया। उन्होंने उपासक-दशांक का भी अंग्रेजी अनुवाद बहुत ही सरल ढंग से प्रस्तुत किया। अन्तकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, विपाक श्रुत और निरयावली का भी अंग्रेजी अनुवाद है। आगमों के अतिरिक्त भी अन्य ग्रन्थों पर अंग्रेजी अनुवाद मिलता है।

### गुजराती अनुवाद—

आगमवेत्ता पण्डित बेचरदास ने गुजराती में आगमों का संपादन एवं संशोधन प्रस्तुत किया है। इस प्रस्तुतिकरण में उन्होंने आगमों की भाषा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है, जो अपने आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आपने भगवती सूत्र, कल्प-सूत्र, राज-प्रश्नीय सूत्र, ज्ञाताधर्म सूत्र और उपासंग-दशा सूत्र का गुजराती अनुवाद प्रस्तुत किया है।

जीवाभाई पटेल नामक विद्वान गुजराती अनुवाद के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने भी आगमों के गुजराती अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। पण्डित दलसुख भाई मालवणिया का स्थानांग और समवायांग का गुजराती अनुवाद दार्शनिक विश्लेषण से युक्त है। जिसमें कई महत्त्वपूर्ण टिप्पण भाषात्मक जगत में विशिष्ट स्थान रखते हैं। पण्डित सौभाग्य मुनि संतबाल के आचारांग, दशवैकालिक और उत्तराध्ययन के गुजराती अनुवाद भी लोकप्रिय हैं। इन अनुवादों में विशेष टिप्पण शब्दों के सौन्दर्य के साथ शब्दों के रहस्य को प्रतिपादित करते हैं। इन ग्रन्थों की प्रारम्भिक भूमिका आगमों के तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करती है।

प्रेमं जिनागम प्रकाशन समिति घाटकोपर, मुम्बई से आगम के मूल एवं गुजराती अनुवाद सहित विवेचन भी महत्त्वपूर्ण हैं। श्रमणी विद्यापीठ की साध्वियों ने भी गुजराती में कुछ अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कई गुजराती अनुवादों का उल्लेख मिलता है।

### हिन्दी भाषान्तर—

आचार्य अमोलक ऋषि ने प्राकृत के ३२ आगम ग्रन्थों का अनुवाद प्रस्तुत करके हिन्दी जगत में महत्त्वपूर्ण एवं गौरवमय स्थान बनाया है।

## आचार्य आत्माराम का हिन्दी अनुवाद—

आचार्य आत्माराम का हिन्दी अनुवाद बृहद् व्याख्यात्मक परिचय के रूप में प्रसिद्ध है। आपके आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, अनुत्तरोपपातिक, उपासक दशांग, अनुयोगद्वार, अन्तकृद्दशांग, स्थानांग आदि आगम हिन्दी जगत में प्रसिद्ध हैं। आपकी यह श्रुत सेवा समाज को आगम सम्बन्धी ज्ञान का परिचय करवा सकी है। इसलिये आप हिन्दी विवेचनकार के रूप में युग-युग तक पहचाने जाते रहेंगे।

जैनाचार्य के रूप में प्रसिद्ध घासीलाल जी महाराज चिर-स्मरणीय रहेंगे। आचारांग, सूत्रकृतांग, समवायांग आदि अङ्ग ग्रन्थों, उत्तराध्ययन आदि मूल ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद तो महत्त्वपूर्ण हैं ही परन्तु २० आगमों के संस्कृत विवेचन के प्रस्तुतीकरण के साथ हिन्दी अनुवाद व्याख्या साहित्य की परम्परा के लिए नयी दिशा ही कही जा सकती है।

१९-२० शताब्दी के इस युग में भी इस तरह का कार्य सराहनीय अवश्य माना जाता है। यह प्रस्तुतीकरण केवल कल्पनात्मक नहीं है अपितु दार्शनिक विश्लेषण के साथ विविध टिप्पणों से अलंकृत अवश्य ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

आचार्य जवाहरलाल ने सूत्रकृतांग पर हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है, जो सूत्रकृतांग की शीलांक-वृत्ति पर आधारित है।

आचार्य हस्तिमल जी महाराज ने दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, प्रश्नव्याकरण और अन्तगड पर अपने हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किए हैं। वृहत्-कल्प सूत्र की एक लघु टीका भी हिन्दी में प्रस्तुत की गई है।

मालवकेसरी सौभाग्यमल जी महाराज ने आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुत स्कन्ध का हिन्दी अनुवाद विस्तृत विवेचन के साथ प्रस्तुत किया है। ज्ञानमुनि ने विपाक सूत्र, मुनि कन्हैयालाल 'कमल' ने ठाणांग और समवायांग, विजयमुनि का अनुत्तरोपपातिक, उपाध्याय अमर मुनि आदि के भी हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होते हैं। अभी कुछ समय से आचार्य तुलसी के नेतृत्व में दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, स्थानांग आदि आगमों का हिन्दी अनुवाद टिप्पणी सहित प्रकाश में आया है। आगमों पर आचार्य तुलसी के नेतृत्व में भी अनुवाद प्रस्तुत किए जा रहे हैं। आगमों का सम्पादन, संकलन आदि भी हो रहा है।

मधुकर मुनि के नेतृत्व में अब तक का आगम साहित्य पर सबसे बड़ा कार्य माना जायेगा। आगमों के अनुपलब्ध हिन्दी अनुवाद टिप्पणी सहित प्रकाशन में आ रहे हैं।

श्री जिनमणिसागरसूरि कृत कई आगमों के हिन्दी अनुवाद एवं महोपाध्याय विनयसागर के कल्पसूत्र एवं ऋषिभाषित के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

पण्डित फूलचन्द जी महाराज का सुत्तागम अनुवाद, महासती चन्दना का उत्तराध्ययन का हिन्दी अनुवाद, महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर का आचार-सुत्त, मुनि ललितप्रभसागर का सूयगड-सुत्त आदि हिन्दी अनुवाद भी हिन्दी जगत में अपना स्थान बनाये हुये हैं। मुनियों के अतिरिक्त श्रावक समाज के द्वारा आगमों पर हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किये गये हैं। डॉ. सुभाष कोठारी और डॉ. सुरेश सिसोदिया के प्रकीर्णकों पर हिन्दी अनुवाद हमारे सामने आ रहे हैं।

आगमों के व्याख्यात्मक परिचय अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं। प्राकृत, संस्कृत हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती आदि के विवेचन आगमों की विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि एवं आगमों पर लिखी गई हैं। इन आगमों के समस्त व्याख्या साहित्य की पृष्ठभूमि में धर्म, दर्शन, संस्कृति, तात्विक दृष्टि, गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल, मंत्र, तंत्र, इतिहास आदि का विवेचन हमारे संस्कृति और सभ्यता के नये आयामों को दृष्टिगोचर कराती है।

आगमों की देशना अर्धमागधी भाषा में हुई, जिसे देववाणी कहा गया है। इसे आर्ष भाषा भी कहा जाता है। आर्ष पुरुष महावीर तीर्थंकर परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर हैं। उनका जो भी अर्थ रूप में प्रतिपादन हुआ उसको गणधरों ने सूत्रबद्ध कर दिया। इसलिये अर्थागम के प्रणेता महावीर हैं और शब्दागम (सूत्रागम) के प्रणेता गणधर माने जाते हैं। यह बात भी विचारणीय है कि जो कुछ भी सूत्रों में था, उस पर निर्युक्तिकारों, भाष्यकारों, चूर्णिकारों, टीकाकारों आदि ने विषय की गंभीरता को प्रकाशित करने का जो प्रयास किया है, वह तीर्थ-परम्परा के अनुरूप माना जाता है। उसमें कोई विरोध नहीं है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से या किसी अन्य दृष्टि से इन पर विचार किया जाए तो आगमों का यह व्याख्या साहित्य संस्कृति की महान् सुरक्षा कर सकेगा।

□ □ □

## सन्दर्भ ग्रन्थ

१. धवला पुस्तक १/१ 'आगमो सिद्धतो पवयणमिदि'
२. (क) अनुयोग द्वार, पृ. ४  
(ख) विशेषावश्यक भाष्य-गाथा ८/९७
३. तत्त्वार्थ भाष्य १/२०
४. अकलंकदेव-राजवर्तिक ९/७
५. विशेषावश्यक भाष्य गा. ५५९
६. वहीं
७. वहीं
८. मुनि जम्बूविजय आचारांग सूत्र, प्रस्तावना—पृ. १  
भद्रबाहु—आवश्यक निर्युक्ति—गाथा ९२
९. आचार्य भद्र-उपदेशपद (देखें)—जैनागम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ३५)
१०. जैन साहित्य बृहद् इतिहास, भाग-१, पृ. ८२
११. आचार्य हेमचन्द्र-योगशास्त्र, पृ. २६०
१२. नन्दीसूत्र मूल सूत्र ३७
१३. आचारांग वृत्ति, पृ. ५
१४. जम्बूविजय—सूयगडंगसुत्त-आमुखम् पृ. ४६
१५. सूयगड अध्ययन ९
१६. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, पृ. ४२७
१७. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृ. १५१
१८. विपाक सूत्र—अभयदेव वृत्ति
१९. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. ११०
२०. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश। भाग ३, पृ. ३१९  
प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १५१  
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास
२१. वहीं, पृ. १५१
२२. वहीं, पृ. १५१
२३. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १५९
२४. वहीं, पृ. १६०
२५. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. ११७
२६. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ३८८
२७. चतुःशरण, गा. ११



२८. भक्त परिज्ञा, गाथा ६६  
 (क) “दंसण भट्टो भट्टो दंसण भट्टस्स नत्थि निव्वाणं । सिज्झंति चरणरहिआ दंसणरहिआ न सिज्झति”  
 (ख) आचार्य, कुन्दकुन्द, दर्शनपाहुड
२९. कोठारी सुभाष—तन्दुल वैचारिक
३०. संस्तरक गाथा ३०
३१. गच्छाचार गाथा १३५
३२. संदर्भ-विषय डॉ. सुभाष कोठारी—देवेन्द्र स्तव
३३. आवश्यक नियुक्ति गाथा ८३  
 (क) ‘णिज्जुता ते अत्था, जंबद्धा तेण होई णिज्जुती’  
 (ख) ‘निर्युक्तानामेव सूत्रार्थानांयुक्ति—परियाट्यायोजनम्”
३४. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ४३५
३५. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १७५
३६. शास्त्री नेमीचन्द—प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २००
३७. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ४३५
३८. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २००
३९. शास्त्री विजय मुनि—व्याख्या साहित्य एक परिशीलन, रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ. ५८
४०. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १७६
४१. (क) प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १७६  
 (ख) प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ. २००
४२. गुरुदेव रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ. ५९
४३. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ४३८
४४. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. २४८
४५. मूलाचार ५/८२
४६. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ४३९
४७. मूलाचार ६/१७३
४८. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १८६
४९. मूलाचार ६/१-६२
५०. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १६६
५१. रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ. ६४
५२. मूलाचार ६/१७३
५३. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २७१
५४. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १६८
५५. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ४६०
५६. मालवणिया दलसुख, पृ. ३२,३३
५७. मालवणिया दलसुख द्वि. सं. १९९०

५८. रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ. ७४
५९. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १७९
६०. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २०१
६१. रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ. ७४
६२. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ४९०
६३. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १७९
६४. आगम युग का जैन दर्शन, पृ. ३३
६५. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २०१
६६. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. २२१
६७. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. २३१
६८. शास्त्री विजय मुनि—व्याख्या साहित्य परिशीलन रत्न मुनि स्मृति मन्त्र, पृ. ८२
६९. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ५१४
७०. आचारांग वृत्ति, पृ. २११
७१. आचारांग वृत्ति, पृ. २१२
७२. आचारांग वृत्ति, पृ. २१२
७३. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १८०
७४. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २०१
७५. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. २०१
७६. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. १८०
७७. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ५१५
७८. स्थानांग वृत्ति प्रशस्ति १-२
७९. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ५२५
८०. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमांसा, पृ. ५३४
८१. रत्न मुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ. ८७



## आचारांग-वृत्ति का प्रतिपाद्य विषय

आगम परम्परा में आचारांग प्राचीन एवं सर्वप्रथम ग्रन्थ है। इसमें श्रमणों के आचार-विचार, विनय, विहार, स्थान, आसन, समिति, उपधि, तप, यम, नियम आदि के विषयों का निर्देश है। यह श्रमणों का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें प्राणीमात्र के जीवन का समग्र चित्रण भी किया गया है। यह श्रमण जीवने का केन्द्रबिन्दु है। इसकी अपनी पहचान है। यह अङ्गों के सार रूप में आचार-विचार की चर्चा करता है। इसका प्रत्येक अध्ययन जीवन के क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। इस कारण से ही ये श्रमणों के आधार का सार है।

आचारांग वृत्ति में वृत्तिकार ने सार को सभी दृष्टियों से सर्वोपरि मानते हुए श्रमण जीवन का चित्रण किया है। वृत्तिकार ने आचारांग के सार को समझने से पूर्व “ॐ नमः सर्वज्ञाय” इस मङ्गलाचरण से सर्वज्ञ के लिये स्मरण किया गया है। आगे स्कन्धक छन्द के माध्यम से वृत्तिकार ने जिनेश्वरों को नमन किया है “जो समस्त वस्तुओं, उनकी पर्यायों, उनके बिचारों और उनके तीर्थों को तथा तीर्थमार्ग के प्रवर्तकों के द्वारा जिस नयवाद का आश्रय लिया गया है जो विविध है—अङ्गों से युक्त है तथा जिनका मार्ग सिद्धान्त को व्यक्त करने वाला है वे तीर्थ अनादि निधन हैं, अनुपम हैं, उनके द्वारा आचार शास्त्र को निश्चित किया गया है तथा जगत में उन्हीं का मार्ग अनुपम है।” तीर्थ, समस्त जिनेश्वरों और वीर<sup>१</sup> प्रभु का वृत्तिकार ने स्मरण किया है।<sup>२</sup>

प्रारम्भिक प्रस्तावना के रूप में मङ्गलाचरण के उपरान्त वृत्तिकार ने पाँच प्रकार के आचारों का कथन किया है—१. ज्ञानाचार, २. दर्शनाचार, ३. चारित्राचार, ४. तपाचार और ५. वीर्याचार।

जो श्रमण इन पाँच प्रकार के आचारों से युक्त होता है वह स्वसमय और परसमय का ज्ञाता होता है। वही, गम्भीर, धीर, शिव और सौम्य गुणों से युक्त होता है। इन गुणों से युक्त श्रमण प्रवचनसार अर्थात् आचार के रहस्य को और वीतरागता के मार्ग को प्राप्त होता है।<sup>३</sup> आचारांग अङ्ग ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें आचार, ब्रह्म, चरण, शस्त्र, परिज्ञा आदि शब्दों का निक्षेप है। जैसे—१. आचार, २. आचाल, ३. आकर, ४. आगाल, ५. आश्वास, ६. आदर्श, ७. अङ्ग, ८. आचीर्ण, ९. आज्ञाति १०. आमोक्ष।<sup>४</sup>

आचाराङ्ग-शीलाङ्कवृत्ति : एक अध्ययन

अर्हत् वचन अनुयोग है वह अनुयोग चार प्रकार का कहा गया है—

१. धर्मकथानुयोग, २. गणितनुयोग, ३. द्रव्यानुयोग और ४. चरण करणानुयोग।

धर्म कथा के अन्तर्गत उत्तराध्ययन सूत्र आदि आते हैं। गणितानुयोग के अन्तर्गत सूर्य प्रज्ञाप्ति, चन्द्र प्रज्ञाप्ति आदि आते हैं। द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत पूर्व ग्रन्थ जिसमें सम्यक्त्व आदि का विवेचन होता है। चरण करणानुयोग में आचार से सम्बन्धित ग्रन्थ आते हैं। इसी पद्धति को आधार बनाते हुए वृत्तिकार ने आचार अनुयोग का प्रारम्भ किया है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—अचारस्यानुयोग—अर्थकथनमाचारानुयोगः अर्थात् आचार का अनुयोग अर्थ कथन-पूर्वक आचार का अनुयोग आचारानुयोग है। सूत्र के अनु अर्थात् पश्चात् अर्थ का योग अनुयोग कहलाता है<sup>६</sup>। सूत्र अध्ययन के पश्चात् अर्थ का कथन होता है, ऐसी भावना भी अनुयोग है। अनु का अर्थ है लघु, सूत्र है, जो महान् अर्थ का सूचक है। अर्थात् जहाँ महान् योग है वह भी अनुयोग है, अर्थात् सूत्र लघु रूप में प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु उसका अर्थ बृहद् अर्थात् विस्तार विवेचन से युक्त होता है।

अनुयोग के चार भेदों के अतिरिक्त वृत्तिकार ने विषय विवेचन की दृष्टि से प्रत्येक अनुयोग के अलग-अलग भेद भी प्रस्तुत किये हैं, जैसे—द्रव्यानुयोग १. आगम और २. नोआगम तथा इस द्रव्यानुयोग को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से भी प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से द्रव्यानुयोग, क्षेत्रानुयोग, कालानुयोग, वचनानुयोग, भावानुयोग आदि अनुयोगों के रूप को प्राप्त होता है।

### “आचर्यते आसेव्यत इत्याचार”<sup>७</sup>

अर्थात् “जिसका आचरण किया जाता है या सेवन किया जाता है वह आचार है।” आचार के मूल दो भेद किये हैं—१. द्रव्याचार और २. भावाचार।

इसके अतिरिक्त ज्ञानाचार के आठ भेद किये हैं—जैसे—१. काल, २. विनय, ३. बहुमान, ४. उपधाम, ५. अनिहाव, ६. व्यञ्जन, ७. अर्थ और ८. व्यञ्जन अर्थ।

दर्शनाचार के आठ भेद किये हैं। सिद्धान्त ग्रन्थों में सम्यक्त्व के आठ अङ्गों के रूप में प्रसिद्ध हैं—

१. निःशंकित, २. निःकांक्षित, ३. निर्विचिकित्सा, ४. अमूढ़ दृष्टि, ५. उपबृंहण, ६. स्थितिकरण, ७. वात्सल्य और ८. प्रभावना।

चारित्राचार तीन गुप्ति और पञ्च समिति के रूप में प्रसिद्ध है, जिन्हें अष्ट प्रवचन माता भी कहते हैं।<sup>८</sup> तपाचार छः भेद के रूप में प्रसिद्ध हैं।

१. अनशन, २. अवमौदर्य, ३. वृत्ति संक्षेपण, ४. रसत्याग, ५. कायक्लेश और ६. संलीनता—ये छः बाह्य तप हैं।

प्रायश्चित्त, विनय, वैयाकृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और उत्सर्ग यह छः आभ्यन्तर तप हैं। इस तरह बाह्य और आभ्यन्तर तप के भेद के कारण से तपाचार बारह प्रकार

का है। वीर्याचार अनेक प्रकार का माना गया है। आचारांग वृत्ति के इसी क्रम में श्रमण धर्म का ज्ञान कराते हुए आचार अर्थात् आचारांग के रूप में प्रसिद्ध प्रथम अङ्ग ग्रन्थ के विषय में यह निर्युक्ति भी है—

“अङ्गणं किं सारो” ? अङ्गों का क्या सार है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए लिखा है कि— “आयारो” अङ्गों का सार आचार है। आचार का सार क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया है—

“अणुओगत्यो सारो तस्सविय परूवणासारो”

अर्थात्—अनुयोग अर्थ चार अनुयोगों के अर्थ का सार रूप आचार है उसकी प्ररूपणा अर्थात् व्याख्या सबसे महत्त्वपूर्ण सार माना गया है, क्योंकि प्ररूपणा सर्वज्ञ कथित है उनकी प्ररूपणा से चारित्र की प्राप्ति होती है। चारित्र की प्राप्ति से निर्वाण प्राप्त होता है और निर्वाण के लिये जिनेन्द्र भगवान् ने अव्यावाद कहा है।<sup>१</sup>

इस विस्तारयुक्त प्रस्तावना में वृत्तिकार ने निक्षेप शैली के माध्यम से वृत्तों, महाव्रतों, ब्रह्मचर्य की दृष्टि आदि का परिचय भी दिया है। प्रस्तावना के रूप में प्रस्तुत प्रारम्भिक कथन आध्यात्मिक, धार्मिक दृष्टि के विधि-विधान का प्रतिपादन तो करता ही है, साथ ही यह सांस्कृतिक सामग्री के महत्त्वपूर्ण अंशों का भी निरूपण करता है। जहाँ देशकाल का वर्णन है वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चार वर्णों का विधान भी है। वृत्तिकार ने आचार को मूल बनाकर आचारांग के विषय विभाजन को इस रूप में किया है—

### विषय-वर्णन—

प्रथम श्रुतस्कन्ध बंभचेर नाम के रूप में प्रसिद्ध है। यह श्रुतस्कन्ध मूल और उत्तरगुणों की स्थापना करने वाला महत्त्वपूर्ण अध्याय है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में ९ अध्ययन हैं। इसके ४४ उद्देशक हैं। इन उद्देशकों में वृत्तिकार ने विषय का खुलासा करते हुए कहीं दार्शनिक शैली, कहीं पारिभाषिक शैली और कहीं विविध व्युत्पत्ति के माध्यम से विषय को सरल एवं बोधगम्य बनाया है।

१. सत्यपरिण्णा	(शस्त्रपरिज्ञा)
२. लोगविजयो	(लोकविजय)
३. सीओसणिज्ज	(शीतोष्णीय)
४. सम्मत्ते	(सम्यक्त्व)
५. लोगसारनाम	(लोकसार नाम)
६. धुर्य	(धुत)
७. महापरिण्णा	(महापरिज्ञा)
८. विमोक्ख	(विमोक्ष)
९. उवहाणसुय	(उपधान श्रुत) <sup>१०</sup>

ये नव अध्ययन प्रथम श्रुतस्कन्ध के हैं।

आचारांग वृत्तिकार ने प्रथम श्रुतस्कन्ध की तरह द्वितीय श्रुतस्कन्ध का भी इसी दृष्टि से विवेचन किया है।

**द्वितीय श्रुतस्कन्ध**—द्वितीय श्रुतस्कन्ध में १६ अध्ययन हैं, जो तीन चूलिकाओं में विभक्त हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध की अपेक्षा यह श्रुतस्कन्ध विषय वर्णन आदि की दृष्टि से बाद का है।<sup>११</sup>

## विषय-परिचय

### प्रथम अध्ययन : शस्त्र-परिज्ञा—

सात उद्देशकों में विभक्त यह अध्ययन जीव संयम, लोक विजय, भावों की परिशुद्धि एवं षट्काय जीवों की अन्तर कथा को प्रस्तुत करता है। शस्त्र परिज्ञा में दो शब्द हैं—शस्त्र और परिज्ञा। शस्त्र का अर्थ है आरम्भ, समारम्भ, हिंसा और परिज्ञा का अर्थ है “ज्ञ” प्रत्याख्यान प्रज्ञा या ज्ञान की क्रिया है अर्थात् इस अध्ययन में जीव संयम हिंसादि परिहार। दूसरे अर्थ में यह कहा जा सकता है कि इसमें हिंसा और अहिंसा का विवेक या परिज्ञा का दर्शन है।

वृत्तिकार ने शस्त्र परिज्ञा के दो पद दिये हैं—

१. द्रव्य शस्त्र—तलवार, अग्नि, विष, स्नेह, आम्ल, छार, लवण आदि।

२. भाव शस्त्र—अन्तःकरण—मन, वचन व काबा की प्रवृत्ति। द्रव्य शस्त्र में साक्षात् हिंसा की जाती है, अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग किया जाता है। भाव शस्त्र में अशुभ प्रवृत्ति के कारण जीवों के घात के लिये मन, वचन और काया से प्रवृत्ति करता है।

डॉ. परमेश्वरि दास ने आचारांग—एक अध्ययन<sup>१२</sup> में वृत्तिकार की वृत्ति पर ही इस प्रकार का विवेचन प्रस्तुत किया है कि शस्त्र परिज्ञा नामक अध्ययन हिंसा के साधनभूत उपकरणों पर विवेक दृष्टि जागृत करने की भावना उत्पन्न करता है। वृत्तिकार ने शस्त्र की व्याख्या करने के बाद परिज्ञा के भी दो भेद किये हैं—<sup>१३</sup>

१. द्रव्य परिज्ञा और २. भाव परिज्ञा।

द्रव्य परिज्ञा के दो भेद किये हैं—१. ज्ञ परिज्ञा और २. प्रत्याख्यान परिज्ञा। ज्ञ परिज्ञा के भी आगम और नोआगम—ये दो भेद किये हैं।

आगम और नोआगम के भी कई भेद दर्शाये गये हैं। ज्ञ परिज्ञा में संसार के कारणभूत राग-द्वेषादि अशुभ भावों का परिज्ञान है। प्रत्याख्यान परिज्ञा में राग-द्वेष आदि अशुभ योगों का परित्याग है। इसमें संसार के कारणों का परित्याग तथा संयम और साधना के उपकरणों पर विशेष बल दिया गया है।

शस्त्र परिज्ञा के इस निरूपण में षट्काय जीवों की हिंसा का विरोध है। जीव के अस्तित्व का प्रारम्भ से अन्त तक विवेचन किया गया है और जगह-जगह यह बोध कराया गया है कि जिस तरह से लोक में मनुष्य अपने जीवन को चाहता है उसी तरह से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति भी अपने जीवन को सुरक्षित रखना चाहते हैं। जहाँ समाज का प्राणी मात्र जीना चाहता है, वहाँ प्रकृति से जुड़े हुए पृथ्वी आदि तत्व अपने जीवन को सुरक्षित चाहते हैं। यदि इनकी सुरक्षा नहीं तो पर्यावरण की समस्या अजगर की तरह विकराल रूप ले लेगी, जिससे हमारा अस्तित्व और प्रकृति का समग्र अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। प्रस्तुत अध्ययन में प्रकृति से जुड़े हुए समग्र चेतना तत्व को समझे बिना जीवों के अस्तित्व को सुरक्षित रख पाना संभव नहीं है। हमारा पर्यावरण सुरक्षित होगा तो समग्र वातावरण सुरक्षित होगा, सभी जीवन्त होंगे, सभी एक दूसरे को समझेंगे।

महावीर की दृष्टि में निश्चित ही वैज्ञानिकता रही होगी। इसीलिये उन्होंने शस्त्र परिज्ञा अध्ययन के माध्यम से सहअस्तित्व को अधिक बल दिया। पृथ्वी से लेकर पेड़-पौधों तक के साथ मैत्री भाव सर्वोपरि माना है। उन्होंने प्रत्येक जीव की संज्ञा को महत्त्व दिया। प्रत्येक जीव के अस्तित्व को बल दिया। चाहे वे खनिज पदार्थ हों, जलीय पदार्थ हों या अग्नि के पदार्थ ही क्यों न हों। उन सभी में जीव है उन्हें मारने का मतलब है अपने को मारना, उन्हें सताने का मतलब है अपने को सताना, इत्यादि समत्व को नियोजित करने वाले साधन हैं। संघर्षमय जीवों की सुरक्षा को सुरक्षित रखना प्रस्तुत अध्ययन का मूल पाठ है।

प्रत्येक उद्देशक का विषय परिचय निम्न प्रकार है—

### प्रथम उद्देशक—

इस उद्देशक के प्रारम्भ में सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी को सम्बोधित करते हुए महावीर की इस उक्ति को प्रतिपादित किया है कि इस संसार में कितने ही ऐसे जीव हैं जिन्हें यह तक नहीं पता होता है कि मैं कहाँ से आया हूँ? और क्या होऊँगा? आगम की यह पंक्ति/वाणी भगवान् के अर्थ रूप आगम का सम्पूर्ण बोध कराती है कि जीव संज्ञावान है परन्तु वे अपनी संज्ञा को अज्ञानता के कारण नहीं जान पाते हैं, क्योंकि अज्ञानता से युक्त प्राणियों को संज्ञा से रहित, दोषों से युक्त तब तक माना जाता रहेगा, जब तक कि वे ज्ञान को प्राप्त नहीं हो जाते हैं। ज्ञान संज्ञा आत्मबोध कराने वाली है। यह स्व और पर का बोध कराती है।

आत्मा का स्वरूप क्या है? जीव कैसे भवान्तर को प्राप्त होता है? इत्यादि कई प्रश्न सामने आते हैं सूत्रकार ने जिस संज्ञा का कथन किया है यह ज्ञान संज्ञा है, वृत्तिकार ने संज्ञा पर वृत्ति लिखते हुए संज्ञा के दस भेद<sup>१४</sup> किये हैं—

१. आहार संज्ञा, २. भय संज्ञा, ३. मैथुन संज्ञा, ४. परिज्ञा संज्ञा, ५. क्रोध संज्ञा, ६. मान संज्ञा, ७. माया संज्ञा, ८. लोभ संज्ञा, ९. ओष संज्ञा और १०. लोक संज्ञा ।

सूत्र में नो शब्द निषेध अर्थ में प्रयोग किया है इससे सर्व निषेध और देश निषेध दोनों ही निषेध हो जाते हैं। संज्ञा का सामान्य अर्थ ज्ञान होता है। इस दृष्टि से भी वृत्तिकार ने दो भेद किये हैं—१. ज्ञान संज्ञा, २. अनुभवा संज्ञा।<sup>१५</sup>

मति, श्रुत, अर्वाधि, मनःपर्यव और केवल ज्ञान— ये पाँच ज्ञान संज्ञा हैं और अपने कर्मोदय से होने वाली आहार आदि की अभिलाषा रूप संज्ञा और अनुभवन संज्ञा है। अनुभवन संज्ञा के १६ भेद गिनाये हैं— आहार, भय, परिग्रह, मैथुन, सुख, दुःख, मोह, विचिकित्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, शोक, लोक, धर्म और घोष।

“इह मेगेसिं णो सण्णा भवहू”<sup>१६</sup>

प्रस्तुत सूत्र में “णो सण्णा” शब्द इस बात का संकेत करता है कि अनुभवन संज्ञा प्रयोजनभूत नहीं है, ज्ञान संज्ञा ही प्रयोजनमूलक है। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि णोर संज्ञा ज्ञान अवबोध का सूचक है। प्राणियों को विशिष्ट ज्ञान न होने के कारण से ही यह ज्ञान नहीं हो पाता है कि वे पूर्व दिशा से आये हैं, पश्चिम दिशा से आये हैं, उत्तर दिशा से आये हैं, दक्षिण दिशा से आये हैं, ऊर्ध्व दिशा से आये हैं या अधो दिशा से आये हैं। सूत्रकार के द्वारा प्रयुक्त दिशा पर वृत्तिकार ने दिशा की व्युत्पत्ति दी और दिशा के भेद भी गिनाये हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, ताप, प्रज्ञापक और भाव—ये सात दिशाएँ दी हैं। किसी भी वस्तु का नाम दिशा हो तो वह नाम दिशा है, जैसे—चित्रलिखित जम्बूद्वीप का नाम इत्यादि रूप में दिशाओं को दृष्टान्तों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। चार दिशाओं के अन्तराल में चार विदिशाएँ हैं।

आठ के अन्तराल में ८ और अन्तर हैं। इस प्रकार १६ दिशाएँ हुईं। इसमें ऊर्ध्व और अधो दिशा मिलाने पर १८ प्रज्ञापक दिशाएँ होती हैं।<sup>१७</sup> आत्मा का अस्तित्व, आत्मा की सिद्धि, आत्मा का अनुमान, आत्मा की नित्यता, आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी<sup>१८</sup> सिद्धान्त का निरूपण भी प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में है।

आत्म-चिन्तन, कर्म-चिन्तन, कर्म की व्यापकता कर्म के निमित्त से होने वाले बन्धन मैंने किये, मैंने करवाये, मैंने करते हुए का अनुमोदन किया। इन कर्म समारम्भों का प्रत्याख्यान कर्म के कारण से उत्पन्न होने वाली विविध योनियों का वृत्तिकार ने सूक्ष्म वर्णन किया है। संक्षिप्त रूप में यहा कहा जा सकता है कि शस्त्र परिज्ञा नामक अध्ययन का प्रथम उद्देशक आत्म-विचार को प्रदर्शित करने वाला है। यह कर्म बन्धन की क्रियाओं और उनके कारणों को समझाने वाला



है क्योंकि इस उद्देशक में ज्ञान क्रिया को उपादेय बताया है और कहा है कि ज्ञान क्रिया मोक्ष को प्रदान करने वाली है<sup>१९</sup>।

### द्वितीय उद्देशक—

यह उद्देशक पृथ्वी काय से सम्बन्धित है तथा अहिंसक साधक को सूक्ष्म जीवों की रक्षा का उपदेश देता है। वृत्तिकार ने लिखा है कि उपयोग, योग, अर्धवसाय, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चक्षु दर्शन, अष्ट प्रकार के कर्मों का उदय और बन्ध, लेश्या, संज्ञा, श्वासोच्छ्वास एवं कषाय यह पृथ्वीकाय जीव में मनुष्य की तरह पाये जाते हैं।<sup>२०</sup> पृथ्वीकाय की सचेतनता सिद्ध करते हुए वृत्तिकार ने यह भी कथन किया है कि पृथ्वी प्राणवान है, जो इसको खोदते हैं, खनन करते हैं, विविध प्रकार के धातुओं का प्रयोग करते हैं, उन्हें निकालते हैं या उन्हें जानबूझकर संतप्त करते हैं, वे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही तरह से दुःखी होते हैं।<sup>२१</sup> पृथ्वी के मूल दो भेद हैं, द्रव्य पृथ्वी और भाव पृथ्वी। बादर और सूक्ष्म की दृष्टि से भी दो प्रकार की पृथ्वी है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी के वृत्तिकार ने ३६ भेद प्रस्तुत किये हैं। अन्य आगम ग्रन्थों में भी ३६ भेद बताये हैं।<sup>२२</sup> पन्नवणा सुत में पृथ्वी के ४० भेद गिनाये हैं। पहली गाथा में १४ भेद, दूसरी में ८ भेद, तीसरी में ९ भेद और चौथी में भी ९ भेद गिनाये हैं। इसके अतिरिक्त बादर पृथ्वी, खर बादर पृथ्वी आदि के भेद प्रस्तुत किये हैं।<sup>२३</sup>

पृथ्वी के उक्त भेदों के अतिरिक्त उनके वर्ण, रस गन्ध, स्पर्श आदि भी प्रतिपादित किये गये हैं।<sup>२४</sup> पृथ्वी के नाना भेद, प्रभेद, वर्ण, आकार, प्रकार आदि की विस्तार चर्चा पर्यावरण की सुरक्षा प्रदान करती है। “पुढविसत्थं समारंभेमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसई”।<sup>२५</sup>

अर्थात् पृथ्वी शस्त्र का समारम्भ करने वाले अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की (जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस जीवों की) हिंसा करते हैं, उनका घात करते हैं एवं उनको सताते हैं। पृथ्वी मनुष्य की तरह सचित है।<sup>२६</sup> जो पृथ्वीकाय का आरम्भ समारम्भ तीन करण (कृत, कारित और अनोमोदित), तीन योग (मन, वचन और काया) और तीन काल की अपेक्षा से नहीं करता तथा जो समारम्भ को “ज्ञ” परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से सर्वथा छोड़ता है, वह विवेकी है, वही, कर्म बन्धनों से मुक्त है।

### तृतीय उद्देशक—

इस उद्देशक में पृथ्वीकाय की तरह अपकाय के समारम्भ को ध्यान में रख कर उसका भी समारम्भ नहीं करने का निर्देश है। अपकाय में भी जीव है, वे पुरुष महाविथी के ज्ञापक अपकाय के लोक को (जलकाय के जीव समूह को) जानकर अभय की कामना करते हैं क्योंकि लोक में अपकाय जलकाय पर भी जीव निर्भर रहते हैं। इसलिये अपकाय

जीवों की विराधना का निषेध किया है। अपकाय जीवों का अपकायक भी न करें। जिस प्रकार मनुष्य में जीव है उसी तरह से जल भी जीव है जल सचित्त है क्योंकि भूमि को खोदने पर स्वाभाविक रूप से यह प्रकट होता है।

“उदयसत्त्वं समारम्भ माणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति”<sup>२७</sup>

सूत्र १/३ सू. २२।

उदक शस्त्र (अपकाय) (जलकाय) का समारम्भ करने वाले अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं।

आगमों में अपकाय के कई भेद किये गये हैं, जैसे—

१. सचित्त<sup>२८</sup>, २. अचित्त और ३. सचित्त-अचित्त।

इसके अतिरिक्त सूक्ष्म बादर आदि की दृष्टि से भी अपकाय का विवेचन वृत्तिकार ने विस्तार से किया है। सबसे महत्वपूर्ण और विचारणीय संदर्भ निम्न है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जल १. शुद्धोदक, २. उष्म, ३. हिम, ४. महिक और ५. हरतनू है—

१. शुद्धोदक—तड़ाग, समुद्र, नदी, तालाब और कूप का जल।

२. उष्म

३. हिम—शिशिर के समय में शीत पुद्गल, सम्पर्क से जो जल प्राप्त होता है।

४. महिक—गर्भमास में सायं और प्रातः धूमिक पात महिक कहलाता है। (कोहरा)

५. हरतनू—वर्षा और शरदकाल में हरित तूणों के अंकुर पर जो जलबिन्दु भूमि के स्नेह के सम्पर्क से उत्पन्न होते हैं वे हरतनू हैं (ओस कण)।

वृत्तिकार ने प्रश्नात्मक शैली में जल का आरम्भ जल की हिंसा से बचने का उपाय दिया है। यद्यपि अन्य मतावलम्बी आजीवक सम्प्रदाय, शाक्य और परिव्राजक आदि अपकाय को संचित नहीं मानते हैं, इसलिये वे स्नान एवं पीने के लिये ग्रहण करते हैं। परन्तु जैन आगमों में श्रमणों का इस प्रकार का समारम्भ का भी निषेध किया है। जल जीव है, जल सचेतन है, जल का अपव्यय, जल का प्रदूषण उचित नहीं है क्योंकि अपकाय का आरम्भ अहितकर है। विवेकवान व्यक्ति आधुनिक पर्यावरण के जल प्रदूषण पर किंचित भी ध्यान करता है तो जल का उपयोग जीवन-निर्वाह के अतिरिक्त जल के समारम्भ को अवश्य रोक सकता है तथा उससे होने वाले समारम्भ की रोक के लिये प्रयत्नशील बन सकता है। काम का त्याग करने वाले जल को सचेतन मान कर संयम विधि से जीवनयापन करते हैं।<sup>२९</sup>

## चतुर्थ उद्देशक—

इस उद्देशक में तेजकाय को भी सचेतन माना है। अग्नि की सचेतनता आत्म सामान्य की तरह है। अग्नि को सचेत सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण दिये हैं, जैसे—जुगनू का शरीर प्रकाश देता है। ज्वर की उष्णता भी जीव संयुक्त शरीर में ही होती है, मृत शरीर में कभी ज्वर की उष्णता नहीं पाई जाती है अतः अग्नि की स्वाभाविक उष्णता उसके सचेतना को प्रकट करती है। अनुमान प्रमाण से भी अग्नि में सजीवता सिद्ध है, जैसे—अङ्गार का प्रकाश आत्मसंयोगपूर्वक है। जुगनू का शरीर विशिष्ट प्रकाशयुक्त है। अग्नि के सूक्ष्म और बादर—ये दो प्रमुख भेद हैं। अग्नि के अन्य पाँच भेद भी हैं,<sup>३०</sup> जैसे—अङ्गार, अग्नि, अर्चि, ज्वाला और मुरमुर। अग्नि के समारम्भ को अत्यन्त भयंकर तथा दिशाओं को जलाने वाला और अत्यन्त पीड़ाकारी माना गया है। परिज्ञाशील व्यक्ति, जाग्रत व्यक्ति ऐसा कार्य नहीं करते हैं, जिससे अग्नि का संहार हो, अग्नि का घात हो और अग्नि की विराधना हो।

“अगणि च खलु पुष्टा एगे संधायमावज्जंति। जे तत्थ संधाय मावज्जंति ते तत्थ परियाविज्जंति जे तत्थ परियाविज्जंति ते तत्थ उद्धायंति १/४/३६”<sup>३१</sup>

अग्नि को जलाने से और जलती हुई अग्नि को बुझाने से भी हिंसा होती है। अग्नि को प्रज्वलित करने वाले को भी हिंसा का पात्र बनना पड़ता है क्योंकि अग्नि शस्त्र अनेक प्राणियों को भस्मीभूत कर देता है। जो अग्नि प्रज्वलित करता है वह महान् कर्म बाँधता है और जो अग्नि बुझाता है वह अल्प कर्म बाँधता है। अग्नि के आरम्भ को एवं उससे होने वाले कर्म बन्धन की क्रियाओं को जानबूझकर विवेकशील बनें,<sup>३२</sup> जिससे अशुभ परिणामों की प्रवृत्ति से पूर्णतः बचा जा सके।

## पञ्चम उद्देशक—

आचारांग सूत्र में वायुकाय जीव का वर्णन न करके इस उद्देशक में वनस्पतिकाय का वर्णन किया है। वनस्पति की व्यापकता इस लोक में है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी वनस्पतियाँ महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं। वनस्पतियाँ किस प्रकार की होती हैं? उनका रङ्ग कैसा होता है? उनका रूप कैसा होता है? और वे कैसे वृद्धि को प्राप्त होती हैं? इनकी सम्पूर्ण जानकारी वृत्तिकार ने दी है।

जो वनस्पति का छेदन-भेदन, कुठाराघात करते हैं या उनको काटते हैं वे अपना ही अहित करते हैं। वनस्पति के समारम्भ के कारण से अन्य जल आदि कारणों का भी विनाश होता है पृथ्वी का संतुलन बिगड़ता है। जलीय स्रोत समाप्त होते हैं। वनस्पति की सचेतनता आगमों में सर्वत्र दी गई है। मनुष्य की तरह वनस्पति सचेतन है। मानव शरीर जिस तरह उत्पन्न होता है वैसे ही वनस्पति भी उत्पन्न होती है उनका शरीर बढ़ता है, उनके काटने-छेदने से मिलानता को प्राप्त होती है। मनुष्य

की तरह वे भी आहार को ग्रहण करती हैं, जैसे—यह शरीर अनित्य है, अशाश्वत है, घटता-बढ़ता है, हानि-वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही वनस्पतियाँ अपने शरीर में विकार को उत्पन्न करती हैं। वनस्पति का शरीर ज्ञान संयुक्त है, वनस्पतियों में भी सोना और जागना पाया जाता है। लाजवन्ती, धात्री जैसी वनस्पतियाँ सोती और जागती हैं। कुछ वनस्पतियाँ नीचे जमीन में गड़े हुए धन की रक्षा करती हैं। कुछ वर्षाकाल के मेघ की गर्जना से अंकुरित होती हैं। कुछ शिशिर ऋतु में पवन के वेग से अंकुरित होती हैं। अशोक वृक्ष के पल्लव और फूल तभी उत्पन्न होते हैं जब कामदेव के संसर्ग से स्वलित गतिवाली, चपल नेत्रवाली १६ शृंगार से सजी हुई युवती अपने नूपुर से शब्दायमान सुकोमल चरण से उसका स्पर्श करती है। बकुल वृक्ष सुगन्धित मद के फूलों से सिंचन करने से विकसित होता है। विकसित लाजवन्ती हाथ के स्पर्श मात्र से संकुचित हो जाती है। ये सभी क्रियाएँ वनस्पति में सजीवता को सिद्ध करने वाली हैं।<sup>३३</sup>

वनस्पति के नाना प्रकार के भेद आगमों में दिये गये हैं। मूल रूप से सूक्ष्म और बादर, प्रत्येक व साधारण, वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग इत्यादि वनस्पतियों का वृत्तिकार ने विस्तार से विवेचन किया है।<sup>३४</sup> वनस्पति के बीज की अपेक्षा से कई भेद किये गये हैं, जैसे—अग्रबीज, मूल बीज, स्कन्ध बीज, पोरबीज, सम्मूर्च्छन और समासत्व आदि।<sup>३५</sup>

#### षष्ठ उद्देशक (त्रसजीव विवेचन)—

“त्रस्यन्तीति त्रसा”<sup>३६</sup> जो स्पंदन को प्राप्त होते हैं वे त्रस हैं। त्रस जीवों के मूल रूप से दो भेद हैं—१. लब्धित्रस और २. गतित्रस। योनि की अपेक्षा से भी कई भेद किये गये हैं, जैसे—अंडज, पोतज, जसयुज, रसज, सस्वेदज, सम्मूर्च्छन, उद्धिज और औपपातिक। आठ प्रकार के जन्म त्रस के कहे गये हैं। वृत्तिकार ने इनको तीन में समावेश कर दिया है—अंडज, पोतज और जरायुज (गर्भजजन्म) या रसज, सस्वेदज उद्धिज (सम्मूर्च्छन जन्म)।

देव और नारकीय उत्पाद जन्म वाले होने से औपपातिक हैं। यह प्राणी संसार ही है अर्थात् आठ जन्म वाले जीवों का समुदाय संसार है। उक्त सभी के भेद-प्रभेदों का वृत्तिकार ने विस्तार से कथन किया है। त्रसकाय के दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और असंज्ञी आदि का विवेचन भी इस उद्देशक में है। शुद्धजल स्वार्थ के वशीभूत होकर कभी-कभी<sup>३७</sup> इन प्राणियों को देवी-देवताओं को भोग देने के लिये मारते हैं। कभी चमड़े के लिम्ब्याग्र आदि के चमड़े को उतारते हैं, मांस के लिये बकरे आदि को सूली पर चढ़ा देते हैं, खून के लिये हृदय को निकालते हैं। पित्त के लिये मोर को मारते हैं, चर्बी के लिये बाघ को मारते हैं, मगर, वराह आदि को सताते हैं, पिच्छी के लिये मयूर को मारते हैं। पूँछ के लिये चर्मा

गाय के बालों को निकालते हैं, सिंह के लिये मृग का घात करते हैं, दाढ़, नख, केशों, हड्डी आदि के लिये भी पशु वध करने में व्यक्ति जरा-सा संकोच नहीं करता है। अपने मनोविनोद के लिये मनुष्य क्या से क्या अनर्थ नहीं कर डालता है।<sup>३८</sup>

जो व्यक्ति अपने इष्ट की प्राप्ति के लिये देवी, देवताओं के सामने सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त देह को समर्पित करता है वह मानवीय तत्व को नष्ट करता है। यही विद्या, मंत्र, तंत्र आदि अन्धविश्वास के सूचक हैं, जो व्यक्ति सम्पूर्ण जगत की भलाई चाहता है, पर्यावरण को बचाना चाहता है वह ऐसा कृतघ्न कार्य कभी भी नहीं करेगा। परिज्ञाशील व्यक्ति वही, है जो प्राणी मात्र के संरक्षण में अपना योग लगाता है।<sup>३९</sup>

### सप्तम उद्देशक—

जो बहती है या जीवन दान देती है वह वायु है।<sup>४०</sup>

वायु चेतना वाली है। वह दूसरे के द्वारा प्रेरित किये बिना ही गति करती है। इसके साथ कई उड़ते हुए प्राणी भी हैं जो एकत्रित होकर अन्दर गिरते हैं और वायु की हिंसा के साथ दुःख पाते हैं, मूर्च्छित होते हैं और मृत्यु को प्राप्त करते हैं। वायुकाय के मूलतः दो भेद हैं—१. सूक्ष्म और २. बादर। यह सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है। इसके अवान्तर पाँच भेद हैं—

१. उत्कलिका, २. मंडलिका, ३. गुन्जा ४. घनवात, ५. शुद्धवात।<sup>४१</sup> इसमें वायु से घात होने वाले प्राणियों का भी अलग-अलग रूप में वर्णन किया है। सामान्य रूप में गृह में प्रयुक्त होने वाला विजना, सूप पत्र, वस्त्र आदि के हिलाने से जीवों का समारम्भ होता है।

गतिमान वायु निश्चित ही विनाश का कारक है। इसलिए वृत्तिकार ने उत्कलिका (बवंडर), मंडलिका (चक्रवात), गुंजा (गूँजने वाली), घनवात (पृथ्वी हिम पटल को हिला देने वाली) और शुद्धवात (सामान्य रूप से चलने वाली वायु) को घातक माना है।

प्रज्ञावान पुरुष आत्महित की इच्छा के कारण सभी प्रकार के वायु संघात को, वायु प्रदूषण को, वायु पर्यावरण को, अच्छी तरह समझता है, उस पर विचार करता है<sup>४२</sup> और वायु समारम्भ के परित्याग को जीवन का अङ्ग बनाता है। जहाँ अहित है वहाँ पर्यावरण का प्रदूषण है, समारम्भ है और जहाँ हित है वहाँ समग्र वातावरण समृद्ध है। स्वच्छ वायु ही स्वच्छ जीवन है निरोगी काया है। इस तरह षट्काय अर्थात् छः काय जीवों की सुरक्षा का विवेचन वृत्तिकार ने किया है। इसमें पृथ्वी, जल की महिमा, अग्नि की गरिमा, वनस्पति की उपयोगिता और वायुमण्डल की सुरक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। पञ्च तत्व के रूप में प्रचलित पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तथा संवेदन स्पन्दन से युक्त समस्त त्रस जीवों के संरक्षण का पर्याप्त

विवेचन किया गया है वह ज्ञान नय और चरण नय पर आधारित है। आचारांग में ज्ञान की प्रधानता है, आचार-विचार की उज्वलता है इसलिये वृत्तिकार ने सूत्र की गुत्थियों को सुलझाने के लिये नय मार्ग का सहारा लिया। उन्होंने दुर्नय को कहीं भी, किसी भी जगह प्रवेश नहीं करने दिया। वे सुनय को भी केन्द्रबिन्दु बनाकर प्रथम अध्ययन के सातों उद्देशकों में सम्यक्त्व को, आत्म तत्त्व को और आत्म विकास को अधिक बल देना चाहते हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि ज्ञान के अभाव में क्रिया कुछ भी कार्य नहीं कर सकती है और क्रिया के अभाव में ज्ञान सम्यक्त्व की ओर अग्रसर नहीं हो सकता है। उन्होंने एक दृष्टान्त भी दिया कि देखता हुआ लँगड़ा अग्नि की ज्वाला में अवश्य जलेगा और दौड़ता हुआ अन्धा देखने के अभाव में अवश्य ही अधोगति एवं अग्नि को प्राप्त होगा। ज्ञान और क्रिया लँगड़े और अन्धे की तरह है। लँगड़ा देखने का कार्य करता है वह ज्ञान से युक्त है परन्तु अन्धा क्रिया के कारण अपने गन्तव्य मार्ग को प्राप्त हो पाता है।<sup>५३</sup> महाव्रती श्रमण प्रज्ञा के आधार पर एवं चारित्र की प्रमुखता के कारण शस्त्र परिज्ञा (हिंसा और अहिंसा) को जान लेता है।

### द्वितीय अध्ययन : लोक-विजय—

लोक-विजय अध्ययन में छः उद्देशक हैं। जिनमें बाह्य और अभ्यन्तर दृष्टियों से लोक का मूल्यांकन किया है। लोक मिथ्यात्व है, उपशम भी है, क्षय भी है और क्षयोपशम भी। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र भी है। परम आनन्द के प्रतीक मोक्ष का कारण भी संसार है। संसार में बन्ध भी है और मोक्ष भी। आसक्ति, राग, द्वेष, मोह आदि भी हैं। अतः पञ्च महाव्रतों में प्रवीण प्रज्ञा पुरुष लोक की विजय प्राप्त करता है।<sup>५४</sup> लोक में स्वजन भी हैं, माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्बीजन भी आते हैं। ये सभी बाह्य संसार के कारण हैं। बाह्य संसार के संसर्ग से आसक्ति, ममता, स्नेह, वैर, अहंकार, मान, माया, लोभ और कषाय आदि के कारण भी बनते हैं। यह बाह्य संसार से उत्पन्न होने वाला संसर्ग आभ्यन्तर संसार है।

‘लोक्यत इतिलोक’<sup>५५</sup> अर्थात् जिसे देखा जाये या जो प्रतीत होता है वह लोक है। लोक संसार या विश्व के विषय में आगमों और सिद्धान्त ग्रन्थों में यह कथन किया गया है कि जिसमें धर्म, अधर्म, अस्तिकाय अर्थात् जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश ये अस्तिकाय और काल द्रव्य जाता है वह लोक है। लोक छः द्रव्यों के समुदाय का नाम है। लोक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से चार प्रकार का है, उसके २४ भेद हैं। कषाय भी लोक है। अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों के कारण से भी लोक उत्पन्न होता है। इस तरह प्रारम्भिक प्रस्तावना में वृत्तिकार ने लोक विजय का नय-निक्षेप आदि की दृष्टि से विवेचन किया है। उन्होंने द्रव्य के स्वरूप का कथन करते हुए सांसारिक और पारमार्थिक लोक के महत्त्व

पर भी प्रकाश डाला है। मूल रूप में जहाँ विषय, सुख, पिपासा, आसक्ति आदि है वहाँ लोक है।<sup>४६</sup> इसी क्रम में वृत्तिकार ने द्रव्य संसार, क्षेत्र संसार, काल संसार, भव संसार और भाव संसार पर प्रकाश डाला है। इन पाँच प्रकार के संसार को जीतने वाला लोक विजयी कहलाता है<sup>४७</sup>। यह छह उद्देशकों में विभाजित है—

### प्रथम उद्देशक—

“जे गुणे से मूलठाणे, जे मूलठाणे से गुणे।”<sup>४८</sup>

मूल सूत्र पर वृत्तिकार ने विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा है कि जो गुण हैं अर्थात् विषय हैं, संसार के कारण हैं, वे मूल स्थान संसार रूप ही हैं, जो मूल स्थान हैं वे गुण हैं। विषय संसार रूपी वृक्ष के मूल हैं उनके कारण से काम-वासना उत्पन्न होती है, काम-वासना से चित्त में विकार उत्पन्न होता है और चित्त के विकार के कारण से व्यक्ति विषय-भोगों में वास्तविक आनन्द नहीं ले पाता; क्योंकि विषय-भोग आसक्ति है, मुग्धता है एवं भ्रान्ति है। इससे ही संसार है। संसार विषय सुख पिपासा है, संसार में कर्म प्रधान है, कषायों को स्थान दिया जाता है। मोह के कारण से मनोज्ञ विषय में राग भाव उत्पन्न होता है और अमनोज्ञ विषयों के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। विषयों के कषाय, प्रमाद, राग, द्वेष आदि भावना उत्पन्न होती है।<sup>४९</sup> इस संसार में मनुष्यों की आयु अतिअल्प है। वृद्धावस्था के कारण कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्शन इन्द्रिय क्षीण हो जाती है आयुष्य बन्ध के समय आयु की स्थिति को देख कर प्राणी दिग्मूढ़ हो जाता है। वृत्तिकार ने आयु के उपक्रमों की सामान्य गणना इस प्रकार की है—दण्ड, चाबुक, शस्त्र, अग्नि, पानी में डूबना, विष, सर्प, शीत, उष्ण, अरति, भय, भूख, प्यास, व्याधि, टट्टी-पेशाब का निरोध, भोजन की विषमता, पीसना, घोटना, पीड़ा देना आदि आयु को मध्य में तोड़ने वाला उपक्रम है।<sup>५०</sup> मनुष्य जन्म बहुमूल्य है चाहे वह किसी भी अवस्था का भी क्यों न हो। यह जन्म जरा और मरण त्राण देने वाली नहीं है। शरणभूत नहीं है एक मात्र शरण ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य प्रधान धर्म है। आत्मा के कारण से हित होता है। हित मोक्ष है,<sup>५१</sup> आत्म-कल्याण के लिये प्रयत्न करना उचित और हितकारी है।<sup>५२</sup>

### द्वितीय उद्देशक—

“अरइं आउट्टे से मेहावी, खणंसि मुक्के।”<sup>५३</sup>

“संयम के प्रति होने वाली अरुचि को दूर करें ताकि शीघ्र ही मुक्त हो सकें” आत्म-कल्याण के लिये सम्यक्त्न आवश्यक है। इसलिये किंचित् भी अरति न करें। चारित्र्य मार्ग को स्वीकार करके पाँच प्रकार के आचार का विधिवत पालन करें।<sup>५४</sup> संयम में अरति होने का कारण इन्द्रियजन्य सुख में रति है। इन्द्रिय सुख संयम के बाधक हैं। पुण्डरीक को इन्द्रिय सुख की अभिलाषा हुई थी, परन्तु संयम

में रति के कारण अरति को दूर न कर सका। संयम अंगीकार करना अत्यन्त कठिन है परन्तु जो इन्द्रिय सुख से विरक्त है वह अनुपम सुख का अधिकारी है।<sup>५४</sup> संयमी के सामने चक्रवर्ती और इन्द्र का सुख भी नगण्य है।<sup>५५</sup> संयमी आत्मा को संयम से अनुपम शान्ति, अतुल सुख उत्पन्न होता है। आचारांग सूत्र में कहा है— “विमुक्ता हुते जणा जेजणा पारगमिणो।”

देही मनुष्य अर्थात् उन्हें ही मनुष्य कहा जाता है जो विमुक्त है और पारगामी है। इस द्वितीय उद्देशक में वृत्तिकार ने संयम की उत्कृष्टता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। इसी तरह वृत्तिकार ने इन्द्र समारम्भ के विषय में लिखा है कि जो बल प्राप्ति के कारण, माता-पिता आदि स्वजनों के कारण अथवा विषय-कषाय आदि के कारण जीव अन्य प्राणियों में दण्ड (हिंसा) समारंभ करता है। वह अहित करने वाला है, अज्ञान को बढ़ाने वाला है इसलिये प्रज्ञावन्त को चाहिए कि वह न तो स्वयं दण्ड समारंभ करे न दूसरों से दण्ड समारंभ करावे और न दण्ड समारंभ करने वाले का समर्थन ही करे। इस प्रकार तीन करण एवं मनसा, वाचा और कर्मणा—इन तीन योगों से पूर्णतः दण्ड समारंभ का परित्याग करे।<sup>५७</sup>

### तृतीय उद्देशक—

संयम की दृढ़ता अज्ञान और आसक्ति के अभाव होने पर ही आती है। लोभ कषाय की तरह मान कषाय भी अरति का कारण है। कषायों के अभाव होने पर आसक्ति घटती है।<sup>५८</sup>

वृत्तिकार ने बन्ध, उदय और सत्ता की अपेक्षा से जीवात्मा की विविध अवस्थाओं का वर्णन किया है। वर्णन करने में वृत्तिकार ने निम्न भङ्ग शैली को अपनाया है<sup>५९</sup>—

- |                       |   |
|-----------------------|---|
| १. नीच गोत्र का बन्ध  | नीच गोत्र का उदय और नीच गोत्र की सत्ता। |
| २. नीच गोत्र का बन्ध  | नीच गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।       |
| ३. नीच गोत्र का बन्ध  | उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।      |
| ४. उच्च गोत्र का बन्ध | नीच गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।       |
| ५. उच्च गोत्र का बन्ध | उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।      |
| ६. बन्ध भाव           | उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।      |
| ७. बन्ध भाव           | उच्च गोत्र का उदय और उच्च की सत्ता।     |

नीच गोत्र, उच्च गोत्र में यह प्राणी अनेक बार उत्पन्न हुआ है और होता है इसलिये उच्च गोत्र का अभिमान नहीं करना चाहिए एवं नीच गोत्र के कारण दीनता नहीं लाना चाहिए। जो ऐसा करता है वह स्वयं दुःखी होता है। उच्च, नीच स्थानों में जन्म कोई नवीन कार्य नहीं है क्योंकि पूर्व में अनेक बार जन्म लिया। अतः



अभिमान आसक्ति और विषाद का कोई कारण नहीं है। अन्धत्व, बधिरत्व, मूकत्व, काणत्व, कुण्टत्व, कुब्जत्व, वडभत्व, श्यामत्व, शबलत्व आदि की विविध यातनाएँ, विविध पदार्थों में प्राप्त की हैं। वृत्तिकार ने अन्धत्व, बहिरत्व आदि शब्दों के विषय एवं कारणों का भी उल्लेख किया है। जन्म और मरण का यह चक्र अनादि काल से चलता हुआ प्राणियों को दुखित कर रहा है। अतः जो व्यक्ति अपने जीवन की तरह दूसरे के जीवन को प्रिय समझता है वह किसी भी प्रकार से आसक्ति न करे। मान और भोगों से विरक्त मुक्ति पथ की ओर अग्रसर हो।<sup>६०</sup>

### चतुर्थ उद्देशक—

“रोग समुप्पाया समुप्पज्जति”<sup>६१</sup> अर्थात्<sup>६२</sup> रोग उत्पत्ति का प्रमुख कारण आसक्ति है। आसक्ति से कर्म बन्धन, कर्म बन्धन से आध्यात्मिक मृत्यु, आध्यात्मिक मृत्यु से दुर्गति और दुर्गति से दुःख उत्पन्न होते हैं। आसक्ति संताप का कारण है। इससे विवेक बुद्धि पर भी आवरण पड़ता है। जिसके कारण नीति-अनीति, हित-अहित आदि का ज्ञान नहीं होता है। इस भव परम्परा से युक्त चतुर्थ उद्देशक में शुभ और अशुभ कर्मों के परिणामों का कथन भी करता है। वृत्तिकार ने सनत कुमार और ब्रह्मदत्त के दृष्टान्त दिये हैं। सनत् कुमार चक्रवर्ती के दृष्टान्त के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि वे ऐसे महापुरुष थे जो वेदना के उपस्थित होने पर शान्त चित्त से उपवेदना को सहन करते हैं। दूसरे ब्रह्मदत्त के दृष्टान्त से यह दर्शाया गया है कि जो भोगों में आसक्ति रहता है वह सप्तम नरक के दुःख को प्राप्त होता है।<sup>६३</sup>

जो राग-द्वेष, कषाय आदि से दुखित आशा और संकल्पों से युक्त बना रहता है वह अपने वास्तविक स्वभाव को भूल जाता है तथा निरन्तर मूढ़ बना हुआ धर्म को नहीं जान पाता है जो आत्मस्वरूप ज्ञान, दर्शन और चरित्र में शिथिल हो जाता है वह प्रमादयुक्त हो जाता है। वृत्तिकार ने प्रमाद के पाँच भेद गिनाये हैं—

१. मद्य, २. विषय, ३. कषाय, ४. निद्रा और ५. विकथा।<sup>६४</sup>

ये पाँचों संसार समुद्र में गिराने वाले हैं<sup>६५</sup> भोग किपांक फल की तरह मनोहर और चित्त को लुभाने वाले हैं इसलिये सम्यक् मार्ग के इच्छुक मुनि/मुमुक्षु आत्मानुशासन की ओर अग्रसर हों।

### पञ्चम उद्देशक—

सुख-दुःख की प्राप्ति और उसके परिहार के उद्देश्य से गृहस्थ अपने निमित्त पुत्र, पुत्री बहु-कुटुम्बी, जाति-जन, धाई, दास-दासी, नौकर-चाकर आदि के लिये विविध प्रकार के शस्त्रों द्वारा (उपार्जन के कारणों द्वारा) आहार आदि बनाते हैं, उनका संग्रह करते हैं।<sup>६६</sup> संयमी जीवन के लिये छः प्रकार के कारणों से आहार को ग्रहण करते हैं—१. क्षुधा वेदनीय की शान्ति के लिये। २. आचार्य आदि की सेवा के लिये।

३. विहार करने के लिये। ४. संयम की रक्षा करने के लिये। ५. प्राणों की रक्षा करने के लिये। ६. स्वाध्याय तथा धर्म साधना के लिये।

इसी क्रम में साधुचर्या के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उन्होंने भिक्षावृत्ति में लगने वाले दोषों को भी दर्शाया है। इससे बचने के निम्न कारण हैं—

कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षेत्रज्ञ, दाणज्ञ, विनयज्ञ, स्व-समय, परसमयज्ञ, भावज्ञ, परिग्रह ममत्वहीन, कालानुज्ञ और अप्रतिज्ञ।<sup>६७</sup>

### षष्ठ उद्देशक—

“साधयति स्व पर कार्याणीति साधुः अर्थात् जो स्व और पर के साधन का कार्य करता है वह साधु है। साधु को चाहिए कि वे ममता का पूर्णता परित्याग करके ही विचरण करे क्योंकि ममत्व परिग्रह है। परिग्रह द्रव्य और भाव रूप है, ब्रह्म और आभ्यन्तर रूप भी है, जिससे पाप कर्म होते हैं।<sup>६८</sup> आगम एवं सिद्धान्त ग्रन्थ में १८ पाप स्थान गिनाये गये हैं उनका तीन करण और तीन योग से त्याग करना साधु का धर्म है।<sup>६९</sup>

इस उद्देशक में ममता और ममत्व बुद्धि के त्याग करने का प्रमुख उपदेश दिया गया है जब व्यक्ति अपने निज स्वभाव को भूल कर परस्वभाव में ममत्व रखता है तब आत्मस्वरूप को भूल जाता है वह आसक्ति से युक्त हो जाता है। शारीरिक और मानसिक दुश्चक्र में फँस जाता है। इसलिये ही प्रज्ञाशील पुरुष ममत्व बुद्धि को त्यागकर मुक्ति-पथ की ओर अग्रसर होता है।

### तृतीय अध्ययन : शीतोष्णीय—

द्वितीय अध्ययन तक षट्काय जीव की रक्षा का विवेचन था। तृतीय अध्ययन में मुमुक्षु के परम तत्व की साधना का उपदेश दिया गया है। मुमुक्षु दो प्रकार के उपक्रम को करता है, वह अपने मार्ग में अनुकूल एवं प्रतिकूल आये हुए संयोगों से लड़ता है। शीतोष्णीय नामक इस अध्ययन में—१. भावशील और २. भाव उष्ण के स्वरूप को स्पष्ट किया है। परीषह, प्रमाद, उपशम, विरति और सातावेदनीयजन्म सुख भाव शीत है। तप में उद्यम, कषाय, शोक, वेद, अरति और दुःख—ये भाव उष्ण परीषह हैं।<sup>७०</sup> मूलतः २२ परीषह सिद्धान्त ग्रन्थों एवं आगमों में प्रतिपादित किये जाते हैं।<sup>७१</sup> स्त्री परीषह और सत्ताकार परीषह भावमन के अनुकूल होने के कारण शीत परीषह हैं और शेष २० परीषह मन के प्रतिकूल होने के कारण उष्ण परीषह हैं।<sup>७२</sup> शीत-परीषह भाव-शीत में गिने जाते हैं और उष्ण-परीषह भाव-उष्ण में गिने जाते हैं। वृत्तिकार ने कहा कि जो राग-द्वेष, पाप आदि से शान्त हैं, वे शीत हैं। शीत, सुख का गृह है, आवास है, संयम का कारण है, अभय को प्रदान करने वाला है।

शील की उत्पत्ति में भी यह सहकारी है।<sup>१३</sup> मुनि, अमुनि, रति, अरति, बाह्य एवं आभ्यन्तर ग्रन्थी संयमशील साधक की साधना में बाधक है। इसलिये प्रज्ञावन्त साधक संयम की रक्षा करने के लिये सभी प्रकार के परिग्रहों से विमुक्त सदैव जाग्रत रहते हैं।

शीतोष्णीय अध्ययन में चार उद्देशक हैं। वृत्तिकार ने संक्षिप्त में प्रत्येक अध्ययन का सार इस प्रकार प्रतिपादित किया है—

१. प्रथम उद्देशक—भाव निद्रा से सुसुप्त है अर्थात् सम्यक् विवेकरहित असंयत है।

२. द्वितीय उद्देशक—इसमें कहा है कि जो भाव निद्रा से युक्त होते हैं वे दुःख का अनुभव करते हैं, कामों में गूढ़ रहते हैं तथा नीच कर्म करते हैं।

३. तृतीय उद्देशक—इसमें कहा है कि संयमशील साधक क्रियाओं से रहित जाग्रत होते हैं।

४. चतुर्थ उद्देशक—इसमें कहा है कि संयमी साधक कषायों का वमन करते हैं और पाप कर्मों से दूर रहते हैं।<sup>१४</sup> इस तरह यह अध्ययन अलग-अलग विषयों को प्रतिपादित करने वाला है।

**प्रथम उद्देशक—**

“सुप्ता अमुणी सया मुण्णिणे जागरंति”<sup>१५</sup>

अर्थात् सुये हुए अमुनि हैं और जो जाग्रत हैं वे मुनि हैं। अमुनि अज्ञानता का द्योतक है। मुनि ज्ञान का समर्थक है। इसलिये वृत्तिकार ने अमुनि को मिथ्यात्व की दृष्टि वाला एवं अज्ञानता से युक्त कहा है। अज्ञान और मिथ्यात्व के कारण महानिद्रा को प्राप्त होता है इसलिये अमुनि सोया हुआ है। हित और अहित का विचार करने वाला, सदैव जाग्रत धर्ममार्ग पर रत सम्यक्त्व की प्राप्ति में लीन, क्षीण कषाय युक्त मुनि हैं।<sup>१६</sup> वह—“समय लोगस्य जाणित्ता”<sup>१७</sup> अर्थात् संसार के समय को (आचार-विचार को) जानकर सदैव जाग्रत रहता है, क्योंकि समय आत्मा है, समय ज्ञान है, समय रत्नमय है, समभाव है, समय समता है, समय आचार है इसलिये समय को जानकर अष्ट कर्मों की समस्त प्रकृतियों और उनके मूल कारणों को क्षय करता है। इस प्रकार इस उद्देशक में वृत्तिकार ने संसार के मूल बीज राग और द्वेष एवं उनसे उत्पन्न होने वाले कारणों से रहित परिश्रमशील, मेधावी एवं संयमी भी जाग्रत बतलाया है।

**आचारङ्ग-शीलाङ्गवृत्ति : एक अध्ययन**

६९

## द्वितीय उद्देशक—

इस उद्देशक में भाव निद्रा का अशान्तिमय विपाक और भाव जागरण के लिये आवश्यक त्याग मार्ग का निरूपण किया है। जाति और वृद्धि संसार के कारण हैं। जाति का नाम प्रसूति है और बाल, कुमार, यौवन, वृद्धावस्था का अवसान वृद्धि है। जाति और वृद्धि दुःख हैं, उससे संतप्त जन्म, जरा और मरण से मुक्त नहीं हो पाता है। जन्म और मरण कर्म के कारण हैं। यह समझकर आधि-व्याधि और उपाधि से मुक्त आत्मस्वरूप में स्थित होवे। वह निष्कर्मदर्शी, सर्वदर्शी और सर्वज्ञानी की शरण में जावे।<sup>७८</sup>

“मेधावी सव्वं पावं कम्मं झोसई।”<sup>७९</sup>

अर्थात् मेधावी/तत्वदर्शी समस्त संसार रूपी अटवी में परिभ्रमण करने के कारणों को नष्ट कर देता है। वह यह जानते हैं कि संसाररूपी वृक्ष कषायों से सिंचित होकर हरा-भरा रहता है। यदि संसार रूपी वृक्ष को सुखाने की भावना है तो इन कषायों का नाश करना पड़ेगा। चार कषायों में क्रोध और मान द्वेषमूलक हैं और माया एवं लोभ रागमूलक हैं। यहाँ क्रोध का कारण मान बतलाया गया है। मान के कारण ही जीव को क्रोध आता है। क्रोध के मूल में अहंकार छिपा है इसलिये द्वेषमूलक कषायों का क्षय करना चाहिए। रागमूलक कषाय में लोभ प्रधान है। लोभ अनिष्ट का सूचक है। लोभ के कारण सातवीं नरक भूमि को प्राप्त होना पड़ता है<sup>८०</sup> कहा है—

“मच्छा मणुआ यं सत्तमि पुढ्वी”<sup>८१</sup>

अर्थात् जीव मनुष्य और मत्स्य लोभ के अभिभूत होकर सातवीं पृथ्वी को प्राप्त होते हैं। जो मोक्षार्थी हैं वे मोक्ष के कारण भूत मार्ग में प्रवृत्त होते हैं।<sup>८२</sup>

## तृतीय उद्देशक—

इस उद्देशक में त्याग के रहस्य को प्रतिपादित किया गया है। निष्क्रियता मात्र त्याग नहीं है त्याग का अर्थ है—सत् क्रियाओं से सदा जागृत रहना। इसलिये ज्ञानी पुरुष त्याग मार्ग अङ्गीकार करके सतत सावधान रहता है। वह सोचता है कि जैसा स्वयं को सुख प्रिय है, वैसा अन्य को भी प्रिय है। इस प्रकार के संभाव से पाप नहीं होता है।<sup>८३</sup>

भूमि में दो प्रकार की संधियों का उल्लेख किया है—

१. द्रव्य सन्धि और २. भाव सन्धि।

द्रव्य सन्धि भित्ति में छिद्र की तरह है और भाव सन्धि दर्शन, मोहनीय के क्षयोपशम और अन्य कर्मों के उपशान्त एवं सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर होती है।<sup>८४</sup> वृत्तिकार ने सन्धि<sup>८५</sup> की विस्तृत व्याख्या की है तथा यह समझाया है कि मुनि धर्म

शुद्ध परिणामों पर आधारित होता है।<sup>६६</sup> जहाँ समभाव है वहाँ त्याग है और वही, मुनिधर्म है।<sup>६७</sup> मुनि समय का (आगमों का, शास्त्रों का) पर्यालोचन करता है। आत्मा की प्रसन्नता के लिये मनोनिग्रह एवं आत्म गुप्त<sup>६८</sup> बनने का प्रयत्न करता है वह गति और अगति को जानकर राग-द्वेष को दूर करता है। उसका समस्त प्रयत्न धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान पर आधारित होता है वह अपनी ही शक्ति को केन्द्रित करके सोचता है—

**“तुममेव तुम मित्ते कि बहियां मित्तमिच्छसि?”**

अर्थात् “तू स्वयं ही तेरा मित्र है, बाहर के मित्र की इच्छा क्यों करता है”? आत्मा ही अपना मित्र है। आत्मा की परिणति जब दुष्प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होती है उस समय वह स्वयं की अमित्र बन जाती है तथा शुभ एवं शुद्ध परिणति के कारण अपना मित्र बन जाती है<sup>६९</sup> इस प्रकार की समभाव की दृष्टि मुनि की होती है। समभाव युक्त मुनि कर्म के विचित्र परिणामों को सहन करता है, उसके फल को भोगता है। उससे दुखित नहीं होता है, वह ज्ञान सहित आत्म हित की ओर अग्रसर होता है। कर्तव्य और अकर्तव्य की सन्धि को जानता है एवं सदैव प्रयत्नशील समदृष्टि बना हुआ मोक्ष साधना में रत रहता है।

### **चतुर्थ उद्देशक—**

चतुर्थ उद्देशक कषाय त्याग की विशेषता को बतलाने वाला है। सूत्रकार ने क्रोध, मान, माया, लोभ—इन चार कषायों से कर्मास्त्र होने की बात कही है<sup>७०</sup> कर्मास्त्र के कारण समभाव पर केन्द्रित नहीं रह पाता है। वृत्तिकार ने कषायों की तीव्रता का उदाहरण इक्षु पुष्प के समान निष्फल बतलाया है।

**“जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ। जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ॥”**

अर्थात् “जो एक को जानता है वह सब को जानता है और जो सब को जानता है वह एक को जानता है।” वृत्तिकार ने इस सूत्र पर दो प्रकार की दृष्टि प्रस्तुत की है। एक सामान्य पदार्थ से सम्बन्धित है और दूसरी सर्वज्ञ से सम्बन्धित है। जो अतीत, अनागत और वर्तमान पर्याय को जानता है वह संसार से परे, जन्म-मृत्यु से रहित समस्त वस्तु का ज्ञायक सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ आत्मज्ञ होते हैं। आत्मा को जानते हैं और लोक-लोक के पदार्थ उस ज्ञान स्वभावी आत्मा में प्रतिबिम्बित होते हैं। वे समस्त पदार्थों और उनकी समस्त पर्यायों के ज्ञाता होते हैं। सर्वज्ञता आत्म-साक्षात्कार करने से होती है। वे ही महायान में बैठते हैं तथा वे ही कोहोदंशी मानदंशी<sup>७१</sup> इत्यादि अनेक प्रवृत्तियों को जानने वाले होते हैं। आत्मशुद्धि की पराकाष्ठा से सर्वज्ञता प्राप्त होती है। इन्हीं भावों से परिपूर्ण यह उद्देशक कषाय शमन, सर्वज्ञता, श्रद्धा और वीतरागता को बतलाता है।<sup>७२</sup>

## चतुर्थ अध्ययन : सम्यक्त्व—

सम्यक्त्व का अर्थ है—सच्चा ज्ञान, सच्ची श्रद्धा और सच्चा आचरण। सम्यक्त्व ज्ञान, दर्शन और चरित्र—इन तीन रत्न स्वरूप है। सम्यक्त्व आत्मा का स्वाभाविक धर्म है। यह आत्मा में विशेष शुद्धि के कारण प्राप्त होता है। इसके तीन भेद कहे गये हैं—१. औपशमिक सम्यक्त्व, २. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ३. क्षायिक सम्यक्त्व।

वृत्तिकार ने नय विवक्षा एवं निक्षेप विवक्षा के आधार पर सम्यक्त्व के निम्न भेद किये हैं—

१. नाम सम्यक्त्व, २. स्थापना सम्यक्त्व, ३. द्रव्य सम्यक्त्व और ४. भाव सम्यक्त्व।

उक्त भेदों के भी भेद-प्रभेद गिनाये हैं।

वृत्तिकार ने सम्यक्त्व निरूपण में सम्यग्दर्शन को मूल आधार बनाया है। इसे मुक्तिपथ का प्रथम सोपान कहा है। जब तक सम्यक्त्व नहीं होता है तब तक समस्त ज्ञान एवं समस्त चारित्र मिथ्या अर्थात् निरर्थक होता है। तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, तत्व सर्वज्ञ प्रणीत है। अहिंसा की मूल प्रवृत्ति सम्यक्त्व की नींव पर आधारित है, इसी दृष्टि को प्रतिपादित करने वाला सम्यक्त्व अध्ययन अहिंसा की सूक्ष्मता पर प्रकाश डालता है। सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता का बोध कराता है। ज्ञान की अनुपम निधि का आस्वाद कराता है तथा आत्मशुद्धि का प्रबल पथ चारित्र का दिग्दर्शन कराता है। यह चार उद्देशकों में विभाजित है।

### प्रथम उद्देशक—

इस उद्देशक में प्राणीमात्र के प्रति समभाव रखने का उपदेश दिया गया है। सूत्रकार ने सभी प्राणों, सभी भूतों, सभी जीवों एवं सभी तत्वों को शारीरिक एवं मानसिक कष्ट उचित नहीं है।<sup>१३</sup>— यह उपदेश जनसमूह, अनुपस्थित जनसमूह, मुनिसंघ, गृहस्थ, रागी त्यागी, भोगी, योगी आदि के लिये समान रूप से दिया गया है। वे धर्म को समझे। सम्यक्त्व को ग्रहण करें। प्रमादी न बनें। एक दूसरे की देखा-सीखी न करें। अंधानुकरण<sup>१४</sup> की प्रवृत्ति लोगों में अहितकारी है।

वृत्तिकार ने भीमसेन, भीम, सत्यभामा और भामा जैसे पुरुषों का उल्लेख भी किया है। लोकैषणा बुद्धि मुमुक्षु में नहीं होती है। उनमें सावद्य आरम्भ की प्रवृत्ति निवास नहीं कर सकती क्योंकि वे सम्यक्त्व के मार्ग पर अग्रसर परीषहों और उपसर्गों को भी धैर्यपूर्वक सहन करते हैं तथा विवेक दृष्टि से साधना मार्ग में उद्यमशील बने रहते हैं।

## द्वितीय उद्देशक—

इस उद्देशक में मिथ्यात्ववाद—मिथ्या मतों का खण्डन है। सम्यक्त्ववाद का प्रतिपादन है। सम्यक्त्व अर्थात् सम्यक-दर्शन का मूल प्रतिपादक अध्ययन सम्यक्वाद के विचार से मोक्ष, मोक्ष तक के कारण, संसार, संसार के कारणों आदि पर विचार को प्रस्तुत करता है।<sup>१५</sup>

सूत्रकार के सूत्र पर अपना मन्तव्य देते हुए वृत्तिकार ने आस्रव आदि की व्याख्या की है।<sup>१६</sup> इस व्याख्या में नय विवक्षा/आस्रव के भङ्गों के आधार पर चार<sup>१७</sup> भेद इस प्रकार किये हैं—

१. जो आस्रव हैं वे परिस्त्रव हैं, २. जो आस्रव हैं वे अपरिस्त्रव हैं, ३. जो अनास्रव हैं वे परिस्त्रव हैं, ४. जो अनास्रव हैं वे अपरिस्त्रव हैं।

चार भङ्ग के पश्चात् कर्म के पाँच कारण भी गिनाये हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।<sup>१८</sup> इनका भंग विवक्षा से निरूपण किया हो।<sup>१९</sup> आस्रव, संवर और निर्जरा का स्वरूप उससे होने वाली कर्म, कर्म की प्रवृत्ति आदि का कथन भी इसमें है। इन्द्रियों के अनुकूल कर्म रूपी मोह में डूबे हुए व्यक्ति ऐसे कर्म करते हैं कि वे संसार से मुक्त न होकर संसार में ही परिभ्रमण करते रहते हैं। आशा से बँधे हुए जन्म-मरण करते हैं। पुनः बन्ध को प्राप्त होते हैं, इस तरह भव परम्परा का कहीं भी अन्त नहीं होता है। साधक साधना मार्ग में रत होकर ज्ञान मार्ग पर चलता है तथा सर्वज्ञ प्राणी धर्म के सार को समझ कर सम्यक्त्व मार्ग पर अग्रसर होता है। समस्त पापानुबन्ध को दुःखकारी मानता हुआ उनसे मुक्त होने के लिये प्रयत्नशील बना रहता है। वृत्तिकार ने दुःख, दुःख के कारण, धर्म भावना आदि की विस्तार से चर्चा की है। श्रमण संसार समुद्र में ऊबते हुए प्राणियों को सहारा देने वाले द्वीप है। प्राणस्वरूप हैं, शरण देने वाले हैं एवं जगत के चराचर प्राणियों के लिये मङ्गलमय कामना करने वाले हैं।

## तृतीय उद्देशक—

इस उद्देशक में तपश्चरण की प्रधानता का वर्णन है, क्योंकि तपश्चरण आत्मशुद्धि का साधन माना जाता है। समत्वदर्शी, सम्यक्त्वदर्शी या समतददर्शी अपनी प्रज्ञा से कर्म बन्ध और उनकी मूल प्रवृत्तियों आदि का क्षय कर देता है। वृत्तिकार ने इन्हीं कर्म प्रवृत्तियों से उत्पन्न होने वाले कारणों पर भी प्रकाश डाला है। उपयोग अर्थात् यत्नपूर्वक क्रियाओं को करने के लिये पाप बन्ध नहीं होता है। जो यत्नपूर्वक चलता है, यत्नपूर्वक बैठता है, यत्नपूर्वक खाता है और यत्नपूर्वक ही बोलता है उसका जितना भी समारंभ होता है वह यत्नपूर्वक होता है।

तप की आचरणीयता के विषय में कहा है, जिस प्रकार जीर्ण बने हुए कष्टों को अग्नि शीघ्र ही जला देती है, उसी तरह जिस तप के द्वारा अपने आप को जीर्ण कर लिया है वह शीघ्र ही सभी कर्मों को जला डालता है<sup>१००</sup> आत्म समाहित आत्मा को कसता है, आत्मा को जीर्ण करता है।<sup>१०१</sup> वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र के उपयोग से राग की और द्वेष की निवृत्ति करता है।<sup>१०२</sup> सम्यक् आचरण में स्थित साधु कर्मों को नष्ट कर देता है।<sup>१०३</sup>

इस तरह तपश्चर्या इच्छाओं का निरोध करती है।<sup>१०४</sup> तत्त्वार्थ-सूत्र में इच्छाओं का रोकना तप कहा गया है। आगम एवं सिद्धान्त ग्रन्थों में सर्वत्र यही कथन किया जाता है। इच्छाएँ वासनाओं को उत्पन्न करती हैं, इसलिये संयम में अप्रमत्ता, अनासक्ति और आत्मनिष्ठा रखते हुए इच्छाओं का निरोध करना चाहिए। राग निवृत्ति और द्वेष निवृत्ति विवेक बुद्धि को जाग्रत करने वाली है। वह क्रोध के मूल में जलने वाले मनुष्य के दुःखों का अन्त करने वाली है। संसार में प्रत्येक पदार्थ विवेक बुद्धि पर आधारित होता है। साधक क्रोध का निरोध करने, पाप कर्मों से निवृत्ति होने एवं कषायों से छूटने के लिये सभी तरह की इच्छाओं का उपशमन करता है। पाप कर्मों से रहित निदान रहित साधक परम सुख को प्राप्त करते हैं।<sup>१०५</sup> इस तरह तत्त्वदर्शी संयम साधना को भी सर्वोपरि मानता है। सम्यक्त्व उसका प्रमुख ध्येय होता है।

### चतुर्थ उद्देशक—

इस उद्देशक में संयम की स्थिरता के लिये तप की प्रधानता को अनिवार्य माना है। इस संसार को पूर्व संयोगों में मुक्त करके शरीर का किंचित् दमन करें। फिर विशेष दमन करें। तदनन्तर पूर्ण रूप से शरीर का दमन करें। कर्मों के दमन करने के लिये शान्त चित्त साधक अपने स्वरूप में विचरण करता है। पाँच समिति से युक्त सद्गुण का आचरण करता है। सूत्रकार ने साधक के इस मार्ग को अत्यन्त कठिन बतलाया है।<sup>१०६</sup> इससे यह ध्वनित होता है कि साधना का पथ सरल नहीं है। अग्नि में जल मरना, पर्वत से कूद पड़ना और समुद्र में डूबना सरल है, परन्तु चित्त वृत्तियों पर पूरा नियंत्रण रखना अत्यन्त कठिन है। परन्तु साधक आत्मस्वरूप में स्थित होकर उन्हें हरा देते हैं। ब्रह्मचर्य आत्मस्वरूप की अभिव्यक्ति के लिये अनिवार्य एवं परम आवश्यक है। “ब्रह्म” का अर्थ ईश्वर या आत्मा भी है। “ब्रह्मणि चर्यते अनेन इति ब्रह्मचर्यम्” इस व्युत्पत्ति के अनुसार आत्मा में—परमात्मा में जिसके द्वारा रमण किया जाता है वह ब्रह्मचर्य है। जैन आगमों में इसकी विस्तृत व्याख्या की गई है। सूत्रकृतांग सूत्र में सभी तपों में ब्रह्मचर्य को परम तप माना है।<sup>१०७</sup> प्रश्न व्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व तथा विनय का मूल बतलाया है।<sup>१०८</sup> ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने से अन्तरकरण प्रशस्त, गंभीर और स्थिर हो जाता है। श्रमण ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, क्योंकि वह



वे ही सच्चे पराक्रमी हैं, जो सम्यक् प्रवृत्ति से चलते हैं, सद्गुणों से युक्त होते हैं, सदैव प्रयत्नशील बने रहते हैं तथा जिनका कल्याण की ओर ही लक्ष्य बना रहता है। तत्वदर्शी की कोई उपाधि नहीं होती है। वे तपश्चरण पूर्व पूर्व-कर्मों के क्षय करने के लिये आत्मशुद्धि पर ही ध्यान देते हैं।

### पञ्चम अध्ययन : लोकसार नाम—

वृत्तिकार की मूल भावना लोक के सार को कथन करना है। लोक का नाम संसार है। लोक और सार अर्थात् इन दो शब्दों के समासीकरण से लोक और लोक के सार का उद्देश्य दिखलाया है। लोक जीव, पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन छः द्रव्यों के समुदाय का नाम है। लोक चतुर्दश रज्जु प्रमाण में है। इसमें नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध गति का अन्तरभाव है।<sup>१०९</sup> सार द्रव्य-सार और भाव-सार रूप है। निक्षेप की दृष्टि से नाम, स्थापना आदि रूप है। लोक का सार आगमों में धर्म कहा है, धर्म का सार ज्ञान बतलाया है, ज्ञान का सार संयम है और संयम का सार विनिर्वाण बतलाया गया है। अतएव विनिर्वाण के लिये सद्धर्म का पालन आवश्यक है।<sup>११०</sup>

वृत्तिकार ने लोकसार नामक पञ्चम अध्ययन की प्रारम्भिक भूमिका में हिंसक को आरम्भी और अहिंसक को अनारम्भी कहा है। हिंसक प्राणी को विषयारम्भक भी कहा है, वह सावद्य आरम्भ की प्रवृत्ति से होता है। अनारम्भी विषयों के आरम्भ से मुक्त लोक के सार को जानने वाला होता है। उनकी दृष्टि में लोक का सार परमार्थ ही रहता है<sup>१११</sup> इसलिये वे आत्माभिमुख होकर प्रवृत्ति करते हैं। जीवन को धर्ममय बनाने के लिये सम्यक्त्व की आराधना करते हैं। सम्यक्त्व में भी चारित्र की उज्ज्वलता को समझते हुए षट्काय जीवों के प्राणों की रक्षा को सर्वोपरि मानते हैं। सूत्रकार ने तत्वदर्शी की भावना को दर्शाते हुए यह कथन किया है कि जो संसार के स्वरूप को जानने वाला है वह निपुण है। वे कभी भी मन, वचन, काया से संसार के कारणों में बद्ध नहीं होते हैं।<sup>११२</sup> वृत्तिकार ने चारित्र की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए निक्षेप दृष्टि से यह कथन किया है कि चर्या, चारित्र है, उसका आचरण वस्तु तत्व का बोधक है। इसलिये साधक प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकार के चारित्र को समझे, फिर मोक्षमार्ग के प्रधान कारण का चिन्तन करें। लोकसार अध्ययन में यह भी कथन किया है कि जो सम्यक् भाव से युक्त है वह धीर बुद्धि वाला है। उसके द्वारा की गई समस्त लोक की व्यवस्था चारित्र को प्रमुखता देने वाली है। चारित्रशील है जो शील<sup>११३</sup> का आकांक्षी होता है, वह आगम के अनुसार प्रवृत्ति करता है। शील के १८ भेद संयम की भूमिका के लिये आवश्यक बतलाए हैं जो शीलवान होता है, वह मूल गुणों की वृद्धि करता है।<sup>११४</sup>

लोकसार के पञ्चम अध्ययन में छः उद्देशक हैं। प्रत्येक उद्देशक आत्म-साधना में रत ज्ञानी साधक की संयमी भावना को व्यक्त करता है। उसका विहार, उसका आचार, उसका ध्यान और उसका कृत कर्म क्या है? इस पर वृत्तिकार ने अलग-अलग दृष्टि से कथन किया है।

### प्रथम उद्देशक—

जब तक जीव असंयत रहते हैं तब तक छः काय के जीवों का समारम्भ करते हैं।<sup>११५</sup> उनमें से कितने ही मनुष्य प्रयोजन के लिये या बिना प्रयोजन के ही अज्ञानतावश उनका वध करते हैं उससे विविध कर्मों के फल को भोगते हैं जो स्वयं पीड़ा पहुँचाता है वह स्वयं पीड़ित होता है। यदि वह पृथ्वी का समारम्भ करता है तो उसे पृथ्वी की पर्याय में जन्म लेना पड़ेगा। कर्म फल के अनुसार ही कर्म की गति अपना कार्य करती है। अविवेकी, अज्ञानी एवं परमार्थ से अनभिज्ञ व्यक्ति का जीवन अस्थिर होता है। वह यदि कूट कर्मों को करता है तो वह मूढ़ है, विपरीत बुद्धि वाला है, मोह से युक्त है, जन्म और मरण के चक्र में फँसा हुआ है।<sup>११६</sup>

जो संयम को जानता है, वह संसारस्वरूप को जानता है। जिसने संशय को नहीं जाना, वह संसार को नहीं जान सकता है।<sup>११७</sup> संशय दो प्रकार का है—अर्थ संशय और अनर्थ संशय।<sup>११८</sup> अर्थ मोक्ष है और मोक्ष का उपाय भी है। मोक्ष में संशय नहीं है। परमपद के प्रतिपादन के कारण से उपाय होने पर संशय में प्रवृत्ति अवश्य होती है। यदि वह संशय से युक्त है तो अर्थ संशय है। अनर्थ संशय संसार का कारण है। यह मिथ्यात्व को उत्पन्न करने वाला है। इस प्रकार वेदना से युक्त संसार भी है।<sup>११९</sup> संशय त्याज्य है, आत्मशान्ति का बाधक है। “संशयात्माविनश्यति” अर्थात् संशय से युक्त आत्मा विनाश को प्राप्त होता है। संसार मार्ग नहीं, संसार घड़ी यंत्र की तरह चलायमान है इसलिये प्रज्ञावन्त विषय कषायों से मुक्त होकर धर्म के मार्ग को जानने में सदैव प्रयत्नशील बने रहते हैं।

### द्वितीय उद्देशक—

साधक पाप प्रवृत्ति से सर्वप्रथम निवृत्त होता है, आरम्भ का त्याग करता है इसलिये उसे अनारम्भजीवी कहते हैं।<sup>१२०</sup> आरम्भ सावद्य अनुष्ठान से होता है, यह प्रमाद का कारण है इसलिये अनारम्भजीवी सभी प्रकार के आरम्भ से रहित होकर अप्रमत्त रूप में क्रियाओं को करता है।<sup>१२१</sup> चारित्र के विकास के लिये, आरम्भ के त्याग का उपदेश दिया है। दीक्षा अङ्गीकार करने पर भी आरम्भ हो सकता है, घर में रहते हुए भी पुत्र, कलत्र शरीर आदि की प्रवृत्ति से निवृत्त होने का भाव हो सकता है। इसका उत्तर वृत्तिकार ने सहज रूप से इस प्रकार दिया है—यदि साधु वस्तु को लेने में, रखने में, स्थान पर स्थित रहने में, गमन करने में और किसी भी क्रिया में

है। इसका उत्तर वृत्तिकार ने सहज रूप से इस प्रकार दिया है—यदि साधु वस्तु को लेने में, रखने में, स्थान पर स्थित रहने में, गमन करने में और किसी भी क्रिया में उपयोग लगाते समय प्रमाद करता है तो वह आरम्भ है, उसे आरम्भ लगता है।<sup>१२२</sup> यदि वह इन क्रियाओं को करते हुए अप्रमत्त है तो उसे आरम्भ नहीं लगता है। आरम्भ उपयोग अथवा अनुपयोग पर निर्भर करता है इसलिये साधु प्रत्येक क्रिया करते समय उपयोग युक्त अनारम्भ क्रियाओं को करता है।<sup>१२३</sup>

यह मार्ग आर्यों द्वारा (तीर्थकरों द्वारा) कहा गया है। संयमी साधक, चरित्रशील मुनि छन्द को एवं दुःख आदि बार-बार सहन करता है। समत्व अर्थात् सम्यक् पर्याय सभी प्रकार के उपसर्गों, परीषहों एवं दुःख निवृत्ति के पश्चात् ही उत्पन्न होती है। साधक किसी भी प्रकार के परिग्रह से जुड़ा नहीं होता है। उसका तो केवल एक मात्र संयम अनुष्ठान ही प्रिय होता है।<sup>१२४</sup> सर्वज्ञ प्रणीत सम्यक् मार्ग उसके जीवन का प्रमुख ध्येय होता है।

### तृतीय उद्देशक—

यह उद्देशक निष्परिग्रह वृत्ति से सम्बन्धित है। सूत्रकार ने “अपरिग्गहावंती”<sup>१२५</sup> शब्द से मेधावी साधक के लिये साधक का धर्म समता धर्म बतलाया है।<sup>१२६</sup> समभाव से युक्त श्रमण सर्वज्ञ द्वारा कथित धर्म का अनुभव करता है, फिर सोचता है कि जो चंदन से भुजाओं पर लेप करता है, जो करवत (करो या कुठार से) उसकी भुजा को छेदता है, जो स्तुति करता है या जो उसकी निन्दा करता है उन सभी पर महर्षि पुरुष समभाव रखते हैं।<sup>१२७</sup> समभाव में न कोई शत्रु होता है और न कोई मित्र ही होता है।<sup>१२८</sup> चक्रवर्ती राजा अथवा तुच्छ से तुच्छ प्राणी समता धर्म को प्राप्त कर सकते हैं। समता आत्मा का स्वभाव है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा की किरणों अभेद रूप से सर्वत्र गिरती हैं वहाँ रंक और राव का भेद नहीं रहता है। ऐसा समभाव का मार्ग उनके जीवन का परम ध्येय होता है।<sup>१२९</sup> वृत्तिकारों ने साधकों की योग्यता और विकास की तरतमता बतलाने के लिये चतुर्भंगी<sup>१३०</sup> दृष्टि का भी प्रयोग किया है—

१. पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती, २. पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती, ३. नो पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती, ४. नो पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती।

इस तरह इस उद्देशक में जहाँ अपरिग्रही बनने की बात कही गई है, वहीं वृत्तिकार ने नयपक्ष को आधार बनाकर स्यादवाद सम्बन्धी व्यवस्था के आधार पर समभाव की सार्थकता का निरूपण किया है। समस्त प्रकार की वृत्तियों का विज्ञेता, आत्मजयी अपरिग्गहावंती, आणाकरवी (आज्ञाकांक्षी) सुपेहा, (प्रेक्षावंत) निव्विण्णचारि (अनारम्भी) वीरा, सम्मतदंसी आदि नामों से युक्त होते हैं।

## चतुर्थ उद्देशक—

परिपक्व ज्ञान से अपूर्ण, वय से वृद्ध साधु एक ग्राम से दूसरे ग्राम अकेला विचरण करता है तो वह निन्दनीय है, अयोग्य है। १३१ अपरिपक्वता दो प्रकार की है—

१. श्रुतकृत अपरिपक्वता, २. वयकृत अपरिपक्वता।

जो साधु ज्ञान और वय में अपरिपक्व हैं उसकी एक चर्या निषेध है जिसने आचार कल्पों का अध्ययन नहीं किया है वह स्थिर कल्पी साधु श्रुत के अभ्यासी हैं। वृत्तिकार द्वारा प्रस्तुत चतुर्भंगी<sup>१३२</sup> दृष्टव्य है—

१. श्रुत तथा वय से अव्यक्त, २. श्रुत से अव्यक्त, वय से व्यक्त, ३. श्रुत से व्यक्त, वय से अव्यक्त, ४. श्रुत से व्यक्त, वय से व्यक्त।

वृत्तिकार ने सर्वज्ञ की वाणी को सर्वोपरि मानकर एकल विहारी का निषेध किया है और उन्हें गच्छ में रहने का संकेत भी किया है। अन्यथा उस एकल विहारी के लिये निम्न दोष लगेगे<sup>१३३</sup>—

१. षट्काय जीवों के वध का भागी होगा, २. स्त्री, श्वान एवं अन्य विरोधियों के दुःख का भागी होगा, ३. एषणा समिति में दोष उत्पन्न करेंगे, ४. महाव्रत भी भङ्ग हो सकते हैं।

इत्यादि कुछ महत्त्वपूर्ण साधक की क्रियाओं के अतिरिक्त गुरु की दृष्टि, गुरु की आज्ञा, गुरु का उपदेश आदि का अभाव भी एकल विहारी की अवस्था में रहेगा। स्वच्छंद व्यक्ति के कारण लालसा और वासना जैसी विकार वृत्तियाँ भी उत्पन्न होंगी। भोगों में लिप्सा आदि भी उत्पन्न होगी।

## पञ्चम उद्देशक—

इस उद्देशक के प्रारम्भ में ही कहा था कि आचार्य गम्भीर, पवित्र, उदार एवं निज स्वरूप की दृष्टि से भरे हुए तालाब की तरह, समतल भूमि की तरह एवं स्वच्छ स्रोत की तरह हैं।<sup>१३४</sup> सूत्रकार ने “सोयमज्जसगए” विशेषण से आचार्य के ज्ञान भण्डार की विपुलता का परिचय कराया है, जो अपने जीवन के विकास में लगे हुए हैं एवं जो श्रुत की आराधना कर विशेष बल देते हैं, वे श्रद्धा, विवेक, बुद्धि और आगम दृष्टि वाले हैं।<sup>१३५</sup> नय व्यवस्था में भी श्रुत की प्रधानता को दर्शाया है क्योंकि आचार्य श्रुत के आराधक होते हैं, वे सम्यक्त्व की आराधना करते हैं। वे सच्चे हैं, निःशंका हैं,<sup>१३६</sup> तत्त्वों की यथार्थता का बोध कराने वाले हैं एवं शंका, विचिकित्सा आदि से रहित हैं।<sup>१३७</sup> श्रद्धा अन्तःकरण का विषय है, श्रद्धा का स्थान समनुज्ञ है अर्थात् प्रिय, उच्च है। श्रद्धा से सम्बन्धित चार भाग इस प्रकार हैं<sup>१३८</sup>—

१. प्रथम श्रद्धालु और पीछे भी श्रद्धालु, २. प्रथम श्रद्धालु और पीछे अश्रद्धालु, ३. प्रथम अश्रद्धालु और पीछे श्रद्धालु, ४. प्रथम अश्रद्धालु और पीछे भी अश्रद्धालु ।

शंका, कांक्षा, विचिकित्सा आदि के परित्याग से सम्यक् दर्शन उत्पन्न होता है। सूत्रकार ने कहा है—जो आत्मा है वही, विज्ञाता है जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जिसके द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना जाता है वही, ज्ञान आत्मा का गुण है उस ज्ञान के आश्रित ही आत्मा की प्रतीति होती है।<sup>१३९</sup> इसलिये आत्मा ज्ञान है और ज्ञान आत्मा है।<sup>१४०</sup> आत्मा को छोड़ कर ज्ञान अन्यत्र नहीं रह सकता है।

### षष्ठ उद्देशक—

सूत्रकार ने आचार्य को आज्ञानुवर्ती कहा है।<sup>१४१</sup> वे तीर्थकर, गणधर और आचार्यों के उपदेश को दृष्टि में रखकर साधना में लीन रहते हैं। वे धर्म आचरण पूर्वक समन्त पर गमन करते हैं।<sup>१४२</sup> इसलिये उनकी आज्ञा एवं आराधना उचित है। यदि ऐसा नहीं है तो वे गुरुकुल में निवास करते हुए भी जिन आज्ञा का अनुसरण नहीं कर पाते हैं। जगत में अनेक प्रवाद हैं<sup>१४३</sup> इसलिये प्रवाद को प्रवाद से जानना चाहिए। कहा है कि मेरा न तो वीर जिनेश्वर में राग है न कपिल आदि अन्य दार्शनिकों से द्वेष है; किन्तु जिनके युक्तिसंगत वचन हैं, उनको ग्रहण करना चाहिए।<sup>१४४</sup> इसमें विविध प्रवाद/मतों का विवेचन है।

### षष्ठ अध्ययन : धुत—

यह धुत/धूत अध्ययन के नाम से प्रसिद्ध है। धुत का अर्थ धुन डालना<sup>१४५</sup> या धो डालना है। जिस प्रकार वस्त्र की मलिनता को दूर करने के लिए उसे धोया जाता है उसी तरह आत्मा की मलिन वृत्ति का परिशोधन करने के लिये समस्त कर्मों को धो दिया जाता है<sup>१४६</sup>। धुत के वृत्तिकार ने दो भेद किये हैं—

१. द्रव्य धुत और २. भाव धुत।<sup>१४७</sup>

द्रव्य धुत के भी दो भेद किये हैं—

१. आगम धुत और २. नोआगम धुत।

भाव धुत के आठ भेद किये हैं। उनके नामों का संकेत नहीं किया है परन्तु चार घातिकर्म और चार अघातिकर्म अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय (घातिकर्म) तथा आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय—(अघातिकर्म) के रूप में हैं। इस प्रकार कुल आठ कर्म समस्त आगमों और सिद्धान्त ग्रन्थों में प्रतिपादित किये गये हैं।<sup>१४८</sup>

## प्रथम उद्देशक—

“ओबुद्धामाणे इह माणवेसु, आधार से णरे”।<sup>१४९</sup>

अर्थात् इस संसार में वही, नर है, जो मनुष्यों के बीच बोधिपूर्वक आख्यान करता है। समुपस्थित, निक्षिप्त दण्ड, समाधियुक्त, प्रज्ञावन्त पुरुष के लिए ही इस संसार में मुक्ति मार्ग है। वे ही पुरुष मुक्ति-मार्ग का उपदेश देते हैं जो महापराक्रमी होते हैं। पात्र को उपदेश देना हितकर होता है, अपात्र को उपदेश देना अहितकर होता है। इसलिए समाधियुक्त श्रमण मुक्तिमार्ग का कथन करते हैं, दुःख से छूटने का उपाय बतलाते हैं। जैसे कछुआ<sup>१५०</sup> अपनी इन्द्रियों को गोपन करके प्राणों की रक्षा करता है, उसी तरह साधना मार्ग में प्रवृत्त साधक दुष्कर्मों का परित्याग करके साधना मार्ग में रत रहते हैं। वृत्तिकार ने कहा है कि जीव के दुष्कर्मों के कारण ही जीव के शरीर में निम्न महारोग उत्पन्न होते हैं<sup>१५१</sup>—

१. गण्डमाता (कंठी रोग, कैसर जैसा महारोग), २. कोड़ी, ३. राजंसी (दमा), ४. अपस्मार (मूर्च्छा, मृगी रोग), ५. नेत्ररोग, ६. शरीर की जड़ता, ७. लूला-लंगड़ा, ८. कुब्ज, ९. उदर रोग, १०. मूकपन, ११. सोजन शोथ, १२. भस्मक रोग, १३. कम्पन, १४. पीठ झुक जाना, १५. श्लीपद (हाथीपाँव) और १६. मधुमेह (प्रमेह)।

उपर्युक्त सोलह रोगों के अतिरिक्त अनन्त रोग, अनन्त व्याधियाँ, शूल आदि पीड़ा शस्त्र आदि के घाव, गिर पड़ने से उत्पन्न होने वाले घाव आदि से ग्रसित जीव विभिन्न कष्टों और यातनाओं का अनुभव करते हैं।<sup>१५२</sup> कर्म की विचित्रता कहीं भी किसी भी जगह व्यक्ति को नहीं छोड़ती है। जीव चार गति एवं चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण करता है और विविध दुःखों को भोगता है। संसार में चारों गतियों के परिभ्रमण के कारण से जीव कहाँ-कहाँ नहीं जाता है। नरक की असहनीय पीड़ा को भी उसे भोगना पड़ता है। तिर्यच गति में भूख, प्यास, शीत, ताप, परतंत्रता, भय आदि की पीड़ा को भोगना पड़ता है।

इस तरह की अनन्त पीड़ाओं को भोगता हुआ यह जीव, प्राणी मात्र का भक्षक हो जाता है। संसार के समस्त पर्यावरण को दूषित वातावरण में बदल देता है। इसलिये महाप्रज्ञावन्त इस तरह की प्रवृत्ति करते हैं। वे जीवन शुद्धि से पर्यावरण की रक्षा करते हैं एवं प्राणी मात्र के लिये अभय प्रदान करते हैं वे अहिंसक मार्ग को अपनाते हैं।

## द्वितीय उद्देशक—

ब्रह्मचर्य में प्रवृत्ति, कुशील मार्ग से विरक्ति, परिषहों को सहन करने की क्षमता, स्नेहीजनों के पूर्व संयोगों को छोड़ने की प्रवृत्ति आदि से साधक का साधना मार्ग प्रबल होता है।<sup>१५३</sup> जिन्होंने संन्यास मार्ग को धारण कर लिया है

सभी प्रकार से मुण्डित होकर विचरण करता है। वह अचेलक संयमित तथा सभी तरह की इच्छाओं से विरत हित-अहित का विचार भी करता है।<sup>१५५</sup> मुण्डित का अर्थ केवल मुण्डन नहीं है, अपितु प्रयत्नशील होना भी है। वह चार प्रकार की भावना को भाता है—

१. एकान्त भावना, २. उपयोगमय जीवन की भावना, ३. वैराग्य भावना और ४. अचेलकता।

ये चार रचनात्मक उपाय साधक को साधना में स्थिर करने वाले हैं। साधक की सहिष्णुता इसी से है।<sup>१५६</sup> जिस मार्ग में शुद्ध एषणा है, संयम की दृढ़ता है तथा मन, वचन और व्यवहार वीतराग धर्म की ओर प्रमुख है वह श्रेष्ठतम मार्ग है। उसने जिस मार्ग को अङ्गीकार किया है, वह मार्ग संकल्प-विकल्पों से रहित है। इसमें किसी भी तरह से छल नहीं है।

### तृतीय उद्देशक—

साधक शारीरिक तपश्चर्या आध्यत्मिक उन्नति के लिए करता है। जो अचेलक हैं वे सभी तरह के चेलकता से दूर रहते हैं, वे वस्तु के विषय में किसी भी तरह का विचार नहीं करते हैं।<sup>१५७</sup> अचेलकता की अवस्था में किसी भी तरह की बाह्य उपाधि नहीं रहती है। केवल समभाव या सम्यक्त्व भाव या समत्व भाव ही रहता है। समत्वदर्शी भिक्षण के समय में या किसी भी समय में आत्म विशुद्धि को नहीं छोड़ते हैं, वे अन्य जीवों की निन्दा भी नहीं करते हैं। चाहे वे एक वस्त्र वाले हो या दो वस्त्र वाले अथवा तीन या तीन से अधिक वाले हों, वे सदैव एक दूसरे की निन्दा से रहित तीर्थंकर के उपदेशपूर्वक ही विचरण करते हैं।<sup>१५८</sup> परीषहों और संकटों के कारण कई साधकों को संयम में अरति (ग्लानि) उत्पन्न हो जाती है। कर्म प्रणति की भी यह विचित्रता ही कही जाएगी; क्योंकि कर्म निश्चित ही अधिक घने, चिकने एवं वज्र के समान भारी हैं जो ज्ञानी पुरुष को भी सन्मार्ग से हटाकर उन्मार्ग पर ले जाते हैं। कर्म परिणति अति विचित्र है।<sup>१५९</sup> लेकिन जो साधक पाप से विरत हैं, चिरकाल से संयम में रत हैं और जो निरन्तर शुद्ध अध्यवसाय करते हैं, उन्हें अरति उत्पन्न नहीं होती है एवं संयम में ग्लानि भी नहीं होती है।

साधक दीप की तरह है, प्रकाशयुक्त है। दीप का अर्थ द्वीप भी है। उसके दो भेद गिनाये हैं—१. द्रव्य द्वीप और २. भाव द्वीप।

ज्ञान द्वीप, भाव द्वीप है और संयम के साधन में बाह्य तत्व, द्रव्य द्वीप है। इसी क्रम में सूत्रकार के द्वारा प्रतिपादित “दीव” शब्द की व्याख्या करते हुए यह कथन किया है कि तीर्थंकर कथित धर्म द्वीप तुल्य है। जिस प्रकार द्वीप समुद्र में

नौका आदि के टूट जाने पर प्राणियों को शरण देता है, उसी तरह साधक को त्राण और शरण रूप है।

### चतुर्थ उद्देशक—

धीर एवं मेधावी ऐसी क्रिया कदापि नहीं करेगा, जो विपरीत हो। वे धर्म को जानकर, धर्म मार्ग पर चलते हैं।<sup>१६०</sup> वे आत्मा की ओर अग्रसर होते हैं।

परन्तु इन्द्रिय और कषायों के वशीभूत साधक दुष्ट संकल्प को नहीं छोड़ते हैं, वे सदैव अनर्थ करते हैं। दुष्ट संकल्पों से घिरे हुए आत्मशक्ति को नष्ट करते हैं। वे प्रव्रज्जा लेकर हित और अहित को भूल जाते हैं जो अब तक सिंह के समान थे, वे गीदड़ के समान बन जाते हैं। उनका संपूर्ण वीतरागता का मार्ग आत्मसिद्धि से अलग, आत्मप्रशंसा की ओर हो जाता है, वे हिंसा का उपदेश देने से धर्म मानते हैं, हिंसक की अनुमोदना करते हैं। उनका धर्म शरीर की रक्षा करना है। वे शरीर की रक्षा करने में ही अपना समय व्यतीत कर देते हैं।<sup>१६१</sup> वे साधक निन्दनीय हैं। अतः इस रहस्य को समझकर ज्ञानी पुरुष, मर्यादाशील साधक और मोक्षमार्ग में रत पुरुषार्थी एवं पराक्रमी बने सर्वज्ञ प्रणीत उपदेश का अनुकरण करें।

### पंचम उद्देशक—

प्रस्तुत उद्देशक में श्रमण चर्या से सम्बन्धित जानकारियाँ दी गई हैं। सूत्रकार ने प्रारम्भिक सूत्र में कहा है कि श्रमण घरों के समीप, गाँवों में या ग्राम के समीप, नगर में या नगर के समीप जनपदों में या जनपदों के समीप किसी भी प्राणी को दुःख देते हैं, उनसे स्पर्श करवाते हैं<sup>१६२</sup> या क्षुब्ध करते हैं तो वह साधक की साधना मार्ग का कार्य नहीं है। वे तो केवल दृढ़तापूर्वक मार्ग में आने वाले उपसर्गों को सहन करते हैं। समत्व दर्शन से युक्त शुद्धता के गुणों को धारण करता है। उनके ऊपर कभी-कभी हास्य, प्रद्वेष, विमर्श और कुशील के कारणों से उपसर्ग आते हैं। कभी देव सम्बन्धी, कभी मनुष्य सम्बन्धी एवं कभी तिर्यच सम्बन्धी उपसर्ग आते हैं।<sup>१६३</sup> वे धीर, वीर साधक समभावपूर्वक उन उपसर्गों को सहन करते हैं। साधक किसी का अहित नहीं करते हैं, वे विवेकपूर्वक चलते हैं, विवेकपूर्वक आहार आदि की प्रवृत्ति करते हैं। वे वीर गुणों से युक्त, अशुभ क्रियाओं से निवृत्त और सत् क्रियाओं में प्रवृत्त होते हैं। वे आलस्य और जड़ता से दूर रहते हैं। वे कषाय के उपशमन में प्रयत्नशील रहते हैं। उसके सामने विश्व का समस्त वातावरण भयानक रूप को लिये हुए उपस्थित रहता है। फिर भी वे उससे विचलित नहीं होते हैं। वे जीवनपर्यन्त विविध प्रकार के परीषहों को सहन करते हैं। वे बाह्य एवं आभ्यन्तर तप में प्रवृत्त होते हैं।<sup>१६४</sup> इस प्रकार षष्ठ अध्ययन के पञ्चम उद्देशक में साधक की आत्मिक वीरता का परिचय दिया गया है।



में प्रवृत्त होते हैं।<sup>१६४</sup> इस प्रकार षष्ठ अध्ययन के पञ्चम उद्देशक में साधक की आत्मिक वीरता का परिचय दिया गया है।

### सप्तम अध्ययन : महापरिज्ञा—

महापरिज्ञा नामक अध्ययन उपलब्ध नहीं है। इसके विषय में यह कहा जाता है कि यह महापरिज्ञा का बोधक था। इसमें अनेक चमत्कारी विद्याओं का उल्लेख था।<sup>१६५</sup> इसलिए इस अध्ययन से संबंधित विषय-वस्तु नहीं दी जा रही है।

महापरिज्ञा का अर्थ है—विशिष्ट ज्ञान।<sup>१६६</sup> सम्यक् ज्ञान एवं महाप्रज्ञों का अनुपम सार निश्चत रूप में प्रशंसनीय रहा होगा। हमारा यह दुर्भाग्य है कि ऐसा अमूल्य अध्ययन काल के कराल गाल में चला गया है।

### अष्टम अध्ययन : विमोक्ष—

विमोक्ष का अर्थ परित्याग है। निर्युक्तिकार ने विमोक्ष का प्रतिपादन करते हुए कथन किया है कि “जीव का कर्म द्रव्यों के साथ जो सहयोग होता है वह बन्ध है, इस बन्ध से छूट जाना मोक्ष है। अर्थात् बन्धन से छूटने का नाम मोक्ष है। इसलिए कहा गया है कि मोक्ष बन्धपूर्वक होता है। जिसका बन्धन नहीं होता है उसको मोक्ष कैसे हो सकता है? जो बन्धता है वही छूटता है। अतएव मोक्ष का स्वरूप बतलाने से पहले बन्ध का कथन किया है। बन्ध के क्षय को विमोक्ष कहते हैं।<sup>१६७</sup> विमोक्ष मृत्यु नहीं, मृत्यु विजय का महोत्सव है परन्तु कर्म-विमुक्ता का नाम विमोक्ष है। जो अन्तरात्मा की विशुद्धता का परिचायक है।<sup>१६८</sup>

वृत्तिकार ने पृथक्-पृथक् उद्देशकों की अपेक्षा से विमोक्ष को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है। इसके प्रथम उद्देशक में परित्याग का विवेचन है। द्वितीय उद्देशक में कर्म नियन्त्रण, विधि और निषेध है। तृतीय उद्देशक में उपकरण एवं शरीर आदि का परित्याग, चतुर्थ में आत्मशक्ति, पञ्चम उद्देशक में भक्त परिज्ञा, षष्ठ उद्देशक में एकत्व भावना तथा इंगित मरण का बोध कराया गया है। सप्तक उद्देशक में भिक्षु प्रतिमा एवं अष्टम उद्देशक में संल्लेखना समाधि मरण आदि का विधान है।<sup>१६९</sup>

वृत्तिकार ने नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—इन छः निक्षेपों के आधार पर विमोक्ष का प्रतिपादन किया है। इसी के अंतर्गत द्रव्य-विमोक्ष और भाव-विमोक्ष, इन दो विमोक्ष के भेदों के साथ अन्य भेद भी दिये गये हैं।<sup>१७०</sup>

### प्रथम उद्देशक—

समनोज्ञ और अमनोज्ञ अर्थात् सदाचारी एवं शिथिलाचारी दो प्रकार के साधु होते हैं। श्रमण धर्म की विचारधारा में सदाचारी-अणगार साधक पूर्ण त्यागी कहा जाता है। उसकी सभी प्रकार की वृत्तियाँ श्रमणाचार पर आधारित होती हैं, परन्तु यदि किसी तरह से साधक की साधना में शिथिलता आ जाती है या किसी तरह का दोष

लगता है तो उन दोषों के निवारणार्थ प्रायश्चित्त आदि क्रियाओं को करता है। विधिपूर्वक यह भी बोध कराया जाता है कि जीवन में जिस मार्ग को ग्रहण किया है, वह मार्ग आचार गोचर नहीं है तो वह मार्ग सम्यक् मार्ग नहीं कहा जा सकता है।

श्रमण का संपूर्ण पराक्रम ध्यान, अध्ययन, अध्यापन, श्रुत-अध्ययन, परिशीलन आदि के आधार पर ही होता है।<sup>१७१</sup> वे व्रत विषय से युक्त विवेकशील प्राणातिपात, मृषावाद और परिग्रहण<sup>१७२</sup> इन तीन यामों से रहित ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य<sup>१७३</sup> रूप यामों में सदैव युक्त रहते हैं। जो क्रोधादि कषायों और पाप कर्मों से निदान रहित विचरण करते हैं तथा जो सदैव सभी दिशाओं और विदिशाओं के समारंभ को जानकर दण्डों से रहित होते हैं।<sup>१७४</sup> वे विमोक्ष मार्ग के पथिक हैं।

इस तरह यह उद्देशक साधक के लिये यह बोध कराता है कि साधना के मार्ग में चलते हुए किसी भी तरह से पतित न हो, सभारंभ से युक्त न हो। प्राणातिपात मृषावाद और बाह्य एवं आभ्यंतर परिग्रह से रहित साधक ज्ञान की उत्कृष्ट भूमिका पर बढ़ता हुआ आत्मशुद्धि की ओर अग्रसर होता है। मूलतः यह उद्देशक तीन यामों की जीवनचर्या का प्रतिपादक है।

### द्वितीय उद्देशक—

साधक आधाकर्म आदि के<sup>१७५</sup> सामान्य एवं उद्गम दोषों से रहित क्रियाओं को करता है। वह सभी प्रकार की औद्देशिक क्रियाओं से रहित मूल गुण पर दृष्टि केन्द्रित करके समिति पूर्ण विचरण करता है।<sup>१७६</sup> वह काल, देश, पात्र और कल्प को ध्यान में रखकर श्रद्धा से युक्त मन की शुद्धतापूर्वक दिये गये सात्विक आहार आदि को ग्रहण करता है।<sup>१७७</sup> गृहस्थ कल्प के अनुसार ही साधक की संयम की भूमिका में सहभागी होता है। इस तरह श्रमण के श्रमणाचार के अनुकूल प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए उन्हें यह संकेत दिया गया है कि साधक प्रत्येक वस्तु के ग्रहण करने में सावधानी रखे। ध्यान को बढ़ाने के लिए सम्यक् शुद्धिपूर्वक विचरण करें। यही आत्म गुप्त के लिए समनोज्ञ कर्तव्य है।

### तृतीय उद्देशक—

इस उद्देशक के प्रारम्भ में समता धर्म<sup>१७८</sup> की विवेचना करते हुए त्याग की उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला गया है। समता योग के साधन प्रतिपादित किये गये हैं—

(१) दया, (२) संयम और (३) तप।

समता योग से साधक क्षेत्रज्ञ, कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ और अपरिग्रहज्ञ की व्याख्या करते हुए त्याग, संयम, परिश्रम और तप की विशेषताओं पर

प्रकाश डाला है। संयमशील साधक इन्हें जानकर साधना में रत होता है। वे नाना प्रकार के परिषहों को सहन करते हैं। विषयों से परे किंचित् भी शीत के समय में अग्नि की आकांक्षा नहीं करते हैं। शरीर को तप्त करने के लिए किसी भी तरह के साधनों की ओर अग्रसर नहीं होते हैं। वे अग्नि आदि के साधनों को उपस्थित प्रकार के परिषहों को सहन करते हैं। विषयों से परे किंचित् भी शीत के समय में अग्नि की आकांक्षा नहीं करते हैं। वे अग्नि आदि के साधनों को उपस्थित किये जाने पर तो उन साधनों के प्रति उदासीन रहते हैं तथा सदैव ही परिषहों को सहन करते हुए आत्मा को जाग्रत करते हैं।

### चतुर्थ उद्देशक—

वृत्ति संयम से सम्बन्धित यह उद्देशक दृढ़ संकल्पों की ओर अग्रसर होने की शिक्षा देता है। साधक साधना में लीन वस्त्र, पात्र आदि की याचना नहीं करता है। साधक अपने कल्प को ही आधार बनाता है। साधक के लिए कौन से पात्र इष्ट हैं और कौन से पात्र इष्ट नहीं हैं? उनका विवेचन वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—

१. पात्र, २. पात्र बंधन, ३. पात्र स्थापन, ४. पात्र की शरीका (पुजनी), ५. पटल, ६. रजस्ताण और ७. गोच्छक।

ये सात पात्र नियोग हैं। साधक के लिये सप्त पात्र नियोग, तीन वस्त्र, रजोहरण और मुख वस्त्रिका इस प्रकार के बारह औघउपाधि अनिवार्य हैं।<sup>१७९</sup> शीत आदि उपद्रव में काग्र-क्लेश तप क्री आराधना होती है।

१. अल्पप्रतिलेख, २. वेश्वसिक रूप, ३. तप की प्राप्ति, ४. लाघवप्राशस्त और ५. विपुल इन्द्रिय निग्रह<sup>१८०</sup> साधक की वृत्ति संयम में ये श्रेयस्कर हैं।

इस प्रकार साधक अपनी साधना के मार्ग से किंचित् भी विचलित नहीं होता है। वह उपसर्ग आदि को सहन करता हुआ आत्मा के परम कल्याणकारी तत्व की ओर अग्रसर होता है। संयम जीवन के कारणों में यदि किसी तरह का भी पतन दिखाई देता है तो वह दृढ़ संकल्प मरण की शरण को (समाधिमरण को) ग्रहण कर लेता है।

### पञ्चम उद्देशक—

प्रतिज्ञा पालन साधक के लिये संयम साधना में उपयोगी है। स्थविर कल्प या जिन कल्प से युक्त साधक परिहार विशुद्धि चारित्र वाले होते हैं। वृत्तिकार ने इसी प्रसंग में श्रमण की बारह प्रतिमाओं का (प्रतिज्ञाओं का) विवेचन किया है।<sup>१८१</sup> श्रमण की बारह प्रतिमाएँ साधक को उच्च भूमिका पर पहुँचा देती हैं। जिससे साधक प्रतिज्ञापूर्वक साधना के मार्ग पर चलता है। प्रतिज्ञा का अखंड रूप से पालन करता है। प्रतिज्ञा पालन करने में पीछे नहीं हटता है वह क्रमशः आगे बढ़ता है। वह भक्त

परिज्ञा मरण द्वारा समाधिमरण का आलिंगन कर लेता है। उसे यही हितकारी है, शुभकारी है, विमोक्ष का कारण है, जन्म-जन्मांतर से पार ले जाने वाला है।

### षष्ठ उद्देशक—

इसमें साधक की मृत्युंजयी पर प्रकाश डाला गया है। साधक अर्हत् निरूपित मार्ग को समझकर समभाव का आचरण करता है।<sup>१८२</sup> लघुभाव को प्राप्त होकर यह चिंतन करता है कि मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ। इस प्रकार के एकत्व चिंतन को अपनाता है। वह द्रव्य और भाव, बाह्य एवं आभ्यन्तर लघुता को विकसित करता है। वह उपाधि से रहित सदैव ही समितिपूर्वक विचरण करता है, वह उद्गम, उत्पादन आदि दोषों का निषेध करता है। आहार शुद्धि के पाँच दोषों से दूर रहता है। संयोजना, अप्रमाण, इंगाल, धूम और अकारण से<sup>१८३</sup> रहित वह आत्मा को सर्वोपरि मानकर समस्त क्रियाओं को करता है। गुरु के समीप नियमपूर्वक चारों प्रकार के आहार का परित्याग करता है। मर्यादित स्थान की चेष्टा को नियमित करता है। करवट बदलना, उठना या अन्य शारीरिक क्रियाओं को धैर्यपूर्वक करता है। इस प्रकार विमोक्ष की ओर अग्रसर होने वाला साधक एकत्व भावना से लघुता को जन्म देता है।

### सप्तम उद्देशक—

उपाधि की लघुता निराशक्ति को जन्म देती है। जैसे ही साधक को यह ज्ञान हो जाता है कि मेरा शरीर धर्म क्रिया में सहायक नहीं हो रहा है तो उस समय शरीरजन्य क्रियाओं को एवं सांसारिक बन्धनों के कारणों को लघु बनाने के लिये आत्मा में लीन हो जाता है। वह शरीर की प्रत्येक अवस्था को छोड़कर पादपोषगमन<sup>१८४</sup> मरण की ओर अग्रसर हो जाता है।<sup>१८५</sup> इससे वह वीरों की तरह आगे बढ़ता है, देह के आकुंचन और प्रसारण करने का अवकाश जब तक बना रहता है तब तक पादपोषगमन मरण का सम्यक् रीति से पालन करता है तथा आत्मा को पूर्ण रूप से समाधि की ओर ले जाता है। इससे वह आत्मा के विशुद्ध परिणामों को प्राप्त करता है।

इस तरह सम्यक् आराधना का मार्ग साधक के लिये आचार कल्प की ओर ले जाता है।

### अष्टम उद्देशक—

भक्त-परिज्ञा, इंगित-मरण और पादपोषगमन साधक की अन्तिम परिणति का कारण है। साधक प्रव्रज्या अङ्गीकार कर क्रमशः शिक्षा धारण करता है। सूत्र के अर्थ का अध्ययन करता है। उसमें परिपक्वता प्राप्त करता है। सूत्रकार ने २४ गाथाओं के माध्यम से साधु जीवन के श्रेष्ठतम साधनों की ओर इंगित किया है। इसमें साधक

की क्रिया क्या है? उसे कैसे चलना चाहिए? उसे किस तरह की ग्रन्थियों को काटना चाहिए? और किस तरह से समाधि में स्थित होना चाहिए? इत्यादि साधु की समस्त क्रियाओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। धर्म के स्वरूप को जानने वाले साधक बाह्य और आभ्यन्तर आदि उपकरण तथा हेय पदार्थों से ममत्व छोड़कर प्रयत्नशील बना रहता है। सच्चा साधक संयम साधना को सर्वोपरि मानकर पाँच प्रकार के त्यागने योग्य कारणों को छोड़ देता है। आगम में कथन किया गया है कि सच्चा आराधक इस संसार में महिमा एवं पूजा की इच्छा नहीं करता है, वह परलोक की अभिलाषा नहीं करता है, जीवित रहने की इच्छा नहीं करता है मरने से नहीं घबराता है और काम-भोगों को नहीं चाहता है।<sup>१८६</sup> इस तरह की इच्छाओं से रहित साधक जीवनपर्यन्त समभाव की ओर अग्रसर रहता है।<sup>१८७</sup>

### नवम अध्ययन : उपधान श्रुत—

उपधान श्रुत—आचरणगम्य एवं आदर्श स्वरूप जिनका मार्ग है उन वीर प्रभु की चर्या साधना, आहार-विहार, शयन, आसन आदि के स्वरूप को प्रतिपादित करने वाला यह अध्ययन है। इस अध्ययन में महावीर के तपोमय जीवन का समग्र चित्रण है, इसमें उनके सफलतम ज्ञान, दर्शन और चारित्र के उपधानों का सम्यक् विवेचन है। यद्यपि यह समग्र विवेचन महावीर की चर्या के नाम से प्रसिद्ध है। निर्युक्तिकार ने इसके समग्र चित्रण को निक्षेप नय के आधार पर इसका जो स्वरूप उपस्थित किया है वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण एवं साधक का उच्च आदर्श प्रस्तुत करने वाला है। वृत्तिकार ने तपोकर्म की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए कथन किया है कि समस्त तपो कर्म उपसर्गों से रहित जहाँ होता है वहाँ केवल ज्ञान की देशना होती है।

“उप सामीप्येन धीयते व्यवस्थाप्यते इत्युपधानम्”<sup>१८८</sup> अर्थात् जो समीप में रखा जाये वह उपधान है। उपधान के दो प्रकार हैं—१. द्रव्य उपधान और २. भाव उपधान। द्रव्य उपधान शय्या आदि है और भाव उपधान, ज्ञान दर्शन एवं तपश्चरण।<sup>१८९</sup> भाव उपधान के विषय में कहा गया है कि जिस प्रकार मलिन वस्त्र जल आदि द्रव्यों से शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार भाव उपधान से अष्ट कर्म नष्ट हो जाते हैं और आत्मा निर्मल हो जाता है।<sup>१९०</sup>

आचारांग के वृत्तिकार ने प्रत्येक अध्ययन को निम्न चार भागों में विभक्त किया है—१. चर्या, २. शय्या (वसति), ३. परीषह सहन और ४. आंतकित।<sup>१९१</sup> इस अध्ययन को चार उद्देशकों में विभक्त किया गया है जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

### प्रथम उद्देशक—

महावीर ने गृह परित्याग कर जिस तरह से तपश्चरण को अङ्गीकार किया उसका विवेचन इस उद्देशक में है। दीक्षा अङ्गीकार करके प्रभु ने गुरुतर कर्मों के

क्षय करने हेतु जिस अचेतकता को धारण किया, वह निश्चित ही साधक के लिये आज भी पथ-प्रदर्शन करने वाली है। साधना में ईर्या समितिपूर्वक गमन, भाषा समिति का सम्यक् प्रयोग, उपकरण आदि उठाने-रखने में सावधानी श्रेयस्कर मानी है। ज्ञात पुत्र ने संयम के मार्ग को अपनाकर कठिन से कठिन परीषहों को सहन किया। वे अनार्य देश में अनार्य लोगों के द्वारा पीटे जाने या किसी तरह से सताये जाने पर भी विचलित नहीं हुए अपितु वे समय का स्मरण करते हुए समय में लीन रहे।<sup>१९२</sup>

यह सत्य है कि साधक की सहिष्णुता समभाव को जन्म देने वाली होती है जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय इन सजीवों के अस्तित्व को जान कर उनके समारंभ का किंचित् भी विचार नहीं करता है वह साधना में विचलित नहीं होता है।<sup>१९३</sup> स्थावर-जीव और त्रस-जीव संसार में आते हैं, जन्म लेते हैं, मरते हैं, नाना प्रकार की योनियों को धारण करते हैं। यह प्राणियों का स्वभाव है, वे अपने कर्मों के अनुसार विविध योनियों को प्राप्त करते हैं। संसार में ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जहाँ जीव ने जन्म नहीं लिया है। इस संसार की नृत्यशाला की रंगभूमि कहीं भी खाली नहीं है, जहाँ इस जीव ने नृत्य नहीं किया हो।<sup>१९४</sup>

परमार्थदर्शी ने सभी के प्रति समभाव को अनिवार्य बतलाया है। पारदर्शी, परमार्थदर्शी, पंथपेही एवं माहन किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं रखते हैं। यही इस उद्देशक का प्रथम उपधान है, आश्रय है, आधार है और यही साधक की उत्कृष्ट क्रिया है।

## द्वितीय उद्देशक—

गमानागमन के साथ कई प्रकार की शय्याएँ भी साधक के सामने आती हैं। साधक उन शयन और आसनों, एकान्त स्थानों, समाधि के लिये उपर्युक्त साधनों तथा धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान के लिये पवित्र स्थानों आदि को ग्रहण करता है। इहलौकिक और पारलौकिक आदि सभी तरह के उपसर्ग शयन और आसन आदि के समय में आते हैं। वे भिन्न-भिन्न स्थानों में, रात्रि में या दिन में चिंतन या मनन में मौन वृत्ति, संयमी दृष्टिपूर्वक ही विचरण करते हैं।<sup>१९५</sup>

शयन और आसन साधक के उपकरण भी माने गये हैं। मनुष्य साधनाशील व्यक्ति को देख कर कभी उग्र रूप धारण कर लेता है, कभी कठोर बन जाता है और कभी इतना निर्दयी बन जाता है कि साधक को तुच्छ मान बैठता है। दण्ड, मुष्टि आदि से उस पर प्रहार कर देता है। एकाकी विचरण करने वाले या जंगलों में घूमने वाले व्यक्तियों पर कुत्ते छोड़ देते हैं या कभी स्वयं उन्हें सताते हैं। परन्तु प्रेक्षाशील साधक चिंतन-मनन में इतने मग्न होते हैं कि वे उस समय में या अन्य समय में भी चुपचाप धर्म को ही अपने जीवन का परम कर्तव्य मानते रहते हैं।<sup>१९६</sup>

इस प्रकार सभी प्रकार के परीषहों को सहन करते हुए वे समता में ध्यानस्थ रहते हैं।

### तृतीय उद्देशक—

अनुपम सहिष्णुता का परिचायक यह उद्देशक विविध परिषहों को समभावपूर्वक सहन करने वाले साधक की दृढ़ता का परिचय देता है। साधक लाढ़ देश की वज्रमयी और शुभ्रमयी भूमि या अनार्य क्षेत्रों में विचरण करते हैं पर कभी अस्थिर नहीं होते हैं।<sup>१९७</sup>

वृत्तिकार ने लाढ़ देश को जनपद विशेष के रूप में प्रस्तुत किया है। यह जनपद अनार्य आचरण हीन व्यक्तियों से भरा था। इसका समग्र भाग रूक्ष था।<sup>१९८</sup> अनार्य देश के जितने भी जनपद थे, वहाँ सभी आचरणहीन एवं हिंसा से युक्त थे। महावीर ने ऐसे उस प्रान्त में विचरण करते हुए नाना प्रकार के उपसर्गों को सहन किया। नियत निवास-स्थान आदि की प्रतिज्ञा से रहित वे कष्ट सहिष्णु बने रहे तथा ममत्वहीन होकर युद्ध में अग्रणी योद्धा की तरह कष्टों को सहन करते रहे, धैर्यता साधक की साधना का परम परिचायक है।

### चतुर्थ उद्देशक—

तप आत्मा की शुद्धि है। सुसुप्त शक्तियों को जाग्रत करने वाला धर्म है तथा आत्म-संशोधन है केवल बाह्य-तप नहीं है, आभ्यन्तर तप है। साधक बाह्य-तपों को और साधना के मार्ग को अपनाते हुए इन्द्रियों के धर्म से विरक्त सदैव ही धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान की साधना करते हैं। शरीर संशोधन, विरेचन, गात्र समर्दन स्नान, संवाहन, दन्त प्रक्षालन आदि जितने भी बाह्य कर्म थे वे उन्हें कल्प नहीं थे।<sup>१९९</sup> अर्थात् वे ऐसे कर्म नहीं करते थे, जिससे किसी भी तरह से जीवों का प्रतिघात हो। वे तो सदैव सभी क्रियाओं को समभावपूर्वक करते थे।

महावीर की इस चर्या में तपश्चरण के कई रूप सामने आये हैं, जैसे—नीरस आहार, पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक का आहार, मास-मास तक का आहार आदि कई प्रकार के आहारों का एवं निराहार आदि का भी विवेचन इस उद्देशक में है, ज्ञान मार्ग के प्रतीक तथा चारित्र मार्ग के साधन इस उद्देशक की यही विशेषता है। आगमों में उपलब्ध भगवान् की तपश्चर्या का विवरण इस प्रकार है—

अनुक्रम	तप का नाम	संख्या	दिवस संख्या	पारणा दिवस
१.	पूर्ण छहमासी	१	१८०	१
२.	पाँच दिन कम छः मास	२	१७५	१
३.	चार मासिक	९	१०८०	९
४.	त्रैमासिक	२	१८०	२

आचाराङ्ग-शीलाङ्कवृत्ति : एक अध्ययन

५.	अढ़ाई मासिक	२	१५०	२
६.	द्विमासिक	६	३६०	६
७.	मासखमण	१२	३६०	१२
८.	अर्ध मासिक	७२	१०८०	७२
९.	अष्टम भक्त	१२	३६	१२
१०.	षष्ठ भक्त	२२९	४५८	२२९
११.	भद्रतप	१	२	०
१२.	महाभद्रतप	१	४	०
१३.	सर्वतोभद्र तप	१	१०	१

कुल योग	३५१	४१६५	३४९
---------	-----	------	-----

इस तरह इन चार उद्देशकों में तपश्चर्या की उत्कृष्ट भूमिका प्रस्तुत की गई है।

प्रथम श्रुतस्कन्ध की आचार-विचार एवं साधना दृष्टि का समग्र प्रस्तुतीकरण अनासक भाव का सांगोपांग विवेचन करता है। भाषा, भाव एवं सूत्रात्मक संरचना इस प्रथम अङ्गग्रन्थ की प्रथम एवं प्राचीनतम प्रस्तुति है।

### द्वितीय श्रुतस्कन्ध

द्वितीय श्रुतस्कन्ध में विविध चूलिकाओं के माध्यम से श्रमण चर्या का प्रमुख केन्द्रबिन्दु समभाव है, जिसमें समितियों को आधार बनाया गया है। प्रत्येक चूलिका साधु की समभाव दृष्टि को प्रकट करने वाली तथा अलग-अलग मार्ग का निर्देश करने वाली है। वृत्तिकार ने वृत्ति के आरम्भ में नव ब्रह्मचर्य को प्रस्तुत किया है। उन्होंने द्रव्य और भाव की दृष्टि से अलग-अलग रूपों में विवेचन करते हुए यह भी कथन किया है कि जीव, पुद्गल, समय, द्रव्य, पर्याय आदि की दृष्टि से आचार सम्बन्धी विवेचन आवश्यक है<sup>२००</sup> क्योंकि आचार उपकार करने वाला है, शिष्य को नया पथ दिखलाने वाला है।

आचारांग सूत्र का द्वितीय श्रुतस्कन्ध पाँच चूलिकाओं से युक्त है, इसकी चार चूलिकाएँ आचारांग में हैं और पाँचवीं चूलिका निशीथ सूत्र एवं नंदी सूत्र में मिलती है। आचार कल्प, आचार प्रकल्प, स्थानांग, समवायांग आदि की नियुक्ति में भी इस चूलिका के कुछ अंश हैं।<sup>२०१</sup>

यह श्रुतस्कन्ध उपक्रम के रूप में भी प्रसिद्ध है। वृत्तिकार ने उपक्रम में द्रव्य और भाव की दृष्टि से सचित्त-अचित्त और सचिताचित्त इन त्रिविध कारणों को प्रस्तुत करने के उपरान्त संख्या, धर्म, गुण आदि का भी विवेचन किया है। इसी के अन्तर्गत अग्र शब्द का निरूपण भी किया है। आगमों में अग्र को मुख कहा गया है अर्थात्



अग्र का मुख है, सहारा, अवलम्बन, प्रधान है, उसका सम्मुख अर्थ भी है।<sup>१०२</sup> जघन्य निवृत्ति के अन्तिम निषेध का नाम भी अग्र है।<sup>१०३</sup> अन्यत्र भी अग्र के विषय में कहा गया है कि जहाँ चारित्र है वहाँ अग्र संख्या होती है; क्योंकि श्रुत ज्ञान के बिना चारित्र की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिये चारित्र की अपेक्षा श्रुत की इसमें प्रधानता है। अग्र शब्द का अर्थ मोक्ष भी है। वृत्तिकार ने अग्र के दो भेद किये हैं—१. द्रव्य अग्र और २. भाव अग्र। द्रव्य अग्र के आगम और नो आगम भेद किये हैं तथा भाव अग्र के प्रधान, प्रभूत और उपकार इस तरह तीन भेद किये हैं। इन भेदों के उपरान्त वृत्तिकार ने आचार को मोक्ष का कारण कहा है। अग्र चारित्र युक्त है। इसलिये आचार से जो अर्थ प्रतिपादित किया जाता है वही, आचारांग अर्थात् चारित्र अग्र है, मोक्ष है और इसी की साधना साधक करता है।

उपक्रम के बाद वृत्तिकार ने उपोद्घात का प्रारम्भ किया है। इसके अन्तर्गत वृत्तिकार ने संयम का एक भेद किया है। आध्यात्मिक दृष्टि से उसके दो भेद किये हैं। मन, वचन, काया की दृष्टि से तीन भेद किये हैं और चातुर्याम की दृष्टि से चार भेद किये हैं।<sup>१०४</sup> वृत्ति में पाँच महाव्रतों का भी कथन किया है। तदनन्तर प्रत्येक चूलिका के विषय को प्रतिपादित किया है। पृथक्-पृथक् रूप में वृत्तिकार ने चूलिकाओं की विशेषताओं पर नय-निक्षेप आदि की दृष्टि से विवेचन किया है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध में चार चूलिकायें हैं। प्रथम चूलिका में सात अध्ययन हैं, द्वितीय चूलिका में सात अध्ययन हैं, तृतीय चूलिका में एक अध्ययन है और चतुर्थ चूलिका में एक अध्ययन है। वृत्तिकार ने चूलिका के स्थान पर चूड़ा शब्द का प्रयोग किया है।<sup>१०५</sup> चूड़ा के भी कई भेद किये हैं, जैसे—द्रव्य चूड़ा, क्षेत्र चूड़ा, काल चूड़ा और भाव चूड़ा,<sup>१०६</sup> जिस तरह मणियों में मुकुट की चूड़ामणी<sup>१०७</sup> शोभा को प्राप्त होती है, उसी तरह आचार कल्प के रूप में प्रस्तुत चूला या चूड़ा या चूलिका सर्वोपरि है। प्रत्येक चूड़ा की विषय-वस्तु का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

### प्रथम चूलिका : प्रथम अध्ययन : पिण्डैषणा—

भिक्षण शील भाव भिक्षु मूलोत्तर गुणों का धारी विविध प्रकार के अभिग्रहों से युक्त होकर आहार ग्रहण करता है। वे आहार के छः कारणों को धारण करते हैं, जैसे—१. वेदन, २. वैयावृत्य, ३. ईर्यास्थान, ४. संयम स्थान, ५. प्राण वर्तिका, ६. धर्म चिन्ता।

इन छः विधियों के आधार पर भिक्षु समस्त एषणीय पदार्थों की एषणा करते हैं। औषधि, भूमि, स्थान आदि का भी विचार करते हैं।

वे आहार एषणा, शयैषणा, ईयेषणा, भाषैषणा, वस्त्रैषणा, पात्रेषणा, अवग्रहैषणा आदि के मार्ग पर चलते हुए महाव्रतों की सुरक्षा करते हैं। वे आचार से पवित्र सदैव

ही स्वाध्याय आदि की क्रियाओं में लीन रहते हैं। प्रथम चूलिका के रूप में प्रस्तुत आचारांग का आचार कल्प भिक्षु के समग्र जीवन को प्रस्तुत करता है। वृत्तिकार ने जो वृत्ति लिखी है उसमें विषय को प्रतिपादित करने के लिए पारिभाषिक शब्दों को आधार बनाया है। शब्द व्युत्पत्ति, निर्युक्ति एवं विवेचन के कारण विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया। प्रथम चूलिका के अध्ययन का निरूपण विविध उद्देशकों में हुआ है।

### प्रथम उद्देशक (आहार की शुद्धता)—

भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के समय गृहस्थ के घर में अभिगृहपूर्वक प्रवेश करती है। वे गृहस्थ के साथ प्रवेश नहीं करते हैं। अनैषणीय, अप्रासक, सचित्त आदि का ध्यान रखते हैं तथा आधःकर्म आदि सोलह दोषों का परिहार कर भिक्षा प्राप्त करते हैं। अशुद्ध आहार का किंचित् भी प्रयोग नहीं करते हैं। पिण्डैषणा के समय विकल्पों से रहित विचरण करते हैं।<sup>१०८</sup> समस्त एषणीय पिंडों की एषणा विधिवत् करते हैं। आगमों में आहार का नाम पिण्ड है।<sup>१०९</sup> श्रमण आहार चर्या के समय राग-द्वेष से रहित आहार करते हैं वे निर्जरा प्रेक्षी बनते हैं।<sup>११०</sup> आहार आदि की प्राप्ति होने पर या नहीं होने पर भी अशुद्ध एषणा को नहीं प्राप्त होते हैं क्योंकि अशुद्ध आहार श्रमणों के लिये वर्जित है।<sup>१११</sup>

सप्त भंग के रूप में भी इस विवेचन को देखा जा सकता है—

१. अप्रत्युपेक्षितम् अप्रमार्जितम् (प्रतिलेखन किया प्रमार्जन नहीं।)
२. अप्रत्युपेक्षितम् प्रमार्जितम् (प्रमार्जन हो, प्रतिलेखन नहीं।)
३. प्रत्युपेक्षितम् अप्रमार्जितम् (प्रतिलेखन, प्रमार्जन दोनों न हों।)
४. दृष्यत्युपेक्षितं दुष्प्रमार्जितम् (दुष्प्रतिलेखन और दुष्प्रमार्जन हो।)
५. दुष्प्रत्युपेक्षितं सुप्रमार्जितम् (दुष्प्रतिलेखन और सुप्रमार्जन हो।)
६. सुप्रत्युपेक्षितं दुष्प्रमार्जितम् (सुप्रतिलेखन और दुष्प्रमार्जन हो।)
७. सुप्रत्युपेक्षितं सुप्रमार्जितम् (सुप्रतिलेखन और सुप्रमार्जन हो।)

भिक्षु अप्रासुक और अनैषणीय अन्न आदि को नहीं ग्रहण करते हैं।<sup>११२</sup> साधु इसी तरह एषणीय औषधी को भी ग्रहण करते हैं।<sup>११३</sup>

इसी तरह पिण्डैषणा नामक यह प्रथम उद्देशक ज्ञान, दर्शन और चारित्र मार्ग पर चलते हुए श्रमण के लिये आहार की एषणा समितिपूर्वक ही करने का विचार प्रस्तुत करता है तथा सदैव भिक्षावृत्ति के नियमों को प्रयत्नशील बनाये रखता है।

### द्वितीय उद्देशक—

आहार ग्रहण की विधि एवं निषेध सम्बन्धी यह उद्देशक श्रमण को चेतावनी देता है कि ऐसे आहार को ग्रहण करे जो गृहस्थ के द्वारा या परिभुक्त या असेवित हो। पर्व आदि के समय में विशेष पूर्वक आहार ग्रहण करना चाहिए, ऐसा उल्लेख

वृत्तिकार ने कुल का अर्थ घर किया है, वंश या जाति नहीं; क्योंकि आहार षो में मिलता है जाति या वंश में नहीं।<sup>२१४</sup> इसके अतिरिक्त इस उद्देशक में संखड़ी गमन निषेध, उत्सव निषेध आदि भी किया है।<sup>२१५</sup> इस तरह से यह समग्र विवेचन अनाहार से सम्बन्धित है तथा आहार में दोषों से विमुक्त होने का उपाय भी बतलाया है।

### तृतीय उद्देशक—

साधु के गमनागमन से सम्बन्धित यह उद्देशक उन स्थानों का निषेध करता है जहाँ हिंसक जनों का निवास हो, पशु-पक्षी आदि का स्थान हो या जहाँ चोर आदि रहते हों। इसी में यह भी कथन किया गया है कि साधु एकाकी विचरण न करे, संखड़ी (बृहद्भोज)<sup>२१६</sup> में प्रवेश न करे। यह आध्यात्मिक बल को प्रस्तुत करने वाला है तथा श्रमण के लिये ध्यान की क्रिया को भी बतलाने वाला उद्देशक है।

### चतुर्थ उद्देशक—

इस उद्देशक में आहार में लगने वाले विविध दोषों की विवेचना की है। शीलाकाचार्य ने अपनी वृत्ति में श्रमण की आहारचर्या पर विचार करते हुए आहार में लगने वाले निम्न दोषों को निषेध किया है, जैसे—

१. जिस स्थान पर गृहस्थ के यहाँ गाय दुही जा रही है ऐसे स्थान पर प्रवेश नहीं करना।

२. जहाँ आहार तैयार न हुआ हो ऐसे घर में प्रवेश नहीं करना।

३. जिस घर से कोई अन्य साधु ग्रहण कर चुका हो ऐसे स्थान पर प्रवेश नहीं करना।<sup>२१७</sup> इन तीन कारणों को ध्यान में रख कर श्रमण भिक्षा विधि का पालन करे। इस तरह श्रमण संखड़ी गमन निषेध, मांस आदि प्रधान स्थानों पर निषेध, गो दोहन वेला में भिक्षार्थ प्रवेश करने का निषेध, अतिथि श्रमण आने पर भिक्षा का निषेध एवं इस लोलुपता आदि का निषेध संयमी भी इस उद्देशक में है।

### पञ्चम उद्देशक—

यह उद्देशक भी आहार में लगने वाले दोषों का निषेध करता है। इसमें वचन शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है। अग्र पिण्ड ग्रहण निषेध, विषम मार्ग आदि का निषेध, बन्द द्वार वाले घर में प्रवेश निषेध आदि का विवेचन इसमें है। यह उद्देशक निर्गन्थ श्रमण के लिये समभाव की ओर ले जाने वाला है। वृत्तिकार ने कथन किया है कि किसी भी प्रकार से आहार में लगने वाले दोषों को निषिद्ध करता हुआ आहार ग्रहण करे। आहार उत्सर्ग रूप में ग्रहण न करे। दुर्भिक्ष, मार्ग की थकान या रुग्णता आदि के कारण अपवाद रूप में आहार को ग्रहण करे।<sup>२१८</sup> प्रस्तुत उद्देशक आहार की समभावी विधियों का निर्देश करता है। आहार सामग्री को देते समय यदि गृहस्थ

परस्पर बाँटने को कहे तो भी ग्रहण न करे। उस समय समभावपूर्वक विचरण करे। आध.कर्म आदि दोषों को टालते हुए आहार याचना करे। इस तरह यह समग्र विवेचन समभावपूर्वक आहार करने की वृत्ति पर प्रकाश डालता है।

### षष्ठ उद्देशक—

मार्ग की गवैषणा से सम्बन्धित यह उद्देशक आहार में लगने वाले दोषों का विवेचन करता है। संसृष्ट और असंसृष्ट आहार ग्रहण करने का निषेध करता है।<sup>२१९</sup>

संसृष्ट और असंसृष्ट वस्तु लेने का विधान निशीथ भाष्य की चूर्णि में किया गया है। वृत्तिकार ने भी अपनी वृत्ति में इसका उल्लेख किया है। मूलतः संसृष्ट के निम्न भेद बतलाये गये हैं<sup>२२०</sup>—

१. पूर्व कर्म, २. पश्चात् कर्म, ३. उदकाद्र, ४. सस्निग्ध, ५. सचित्त मिट्टी, ६. सचित्त क्षार, ७. हड़ताल, ८. हींगल, ९. मेनसिल, १०. अंजन, ११. नमक, १२. गेरू, १३. पीली मिट्टी, १४. खड़िया मिट्टी, १५. सौराष्ट्रिका, १६. तत्काल पीसा हुआ बिना छना आटा, १७. चावलों के छिलके, १८. गीली वनस्पति का चूर्ण या फलों के बारीक टुकड़े।

सचित्त मिश्रण आहार सर्वथा वर्जित है। इसलिये आहार के लिये प्रविष्ट साधु या साध्वी उक्त कारणों का भी निषेध करते हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धि एवं विवेकपूर्वक आहार ग्रहण करे।

### सप्तम उद्देशक—

यह उद्देशक भी पिण्डैषणा से सम्बन्धित है। इसमें मालाहत<sup>२२१</sup> दोष से युक्त आहार ग्रहण करने का निषेध किया गया है। इसमें उद्गम के १३ दोष बतलाये गये हैं।

१. ऊर्ध्व, २. अधो और ३. तिर्यक। मालाहत आहार तथा उदिभन्न दोष युक्त आहार श्रमण के लिये ग्राह्य नहीं है। षट्काय इसमें ग्राह्य और अग्राह्य जल, पानक-जल, आदि के ग्रहण करने में जो दोष लगता है उसका भी निषेध किया गया है। वृत्तिकार ने निक्षिप्त दोष के दस भेद गिनाये हैं,<sup>२२२</sup> जैसे—

१. शंकित, २. प्रक्षित, ३. निक्षिप्त, ४. पिहित, ५. संहत, ६. दायक, ७. उन्मिश्र, ८. अपरिणत, ९. लिप्त और १०. छर्दित।

इन दस एषणा दोषों से रहित श्रमण ज्ञान-दर्शन और चारित्र की वृद्धि के लिये आहार को ग्रहण करता है।

### अष्टम उद्देशक—

अग्राह्यपानक का निषेध करने वाला यह उद्देशक आहार भी आसक्ति से श्रमण को रोकता है। वृत्तिकार ने कहा है कि पानक उद्गम दोषों से दूषित होने के कारण ग्रहण करने योग्य नहीं है। साधक को चाहिए कि वह द्राक्षा, आँवला, इमली

अग्राह्यपानक का निषेध करने वाला यह उद्देशक आहार भी आसक्ति से श्रमण को रोकता है। वृत्तिकार ने कहा है कि पानक उद्गम दोषों से दूषित होने के कारण ग्रहण करने योग्य नहीं है। साधक को चाहिए कि वह द्राक्षा, आँवला, इमली या बेर आदि पदार्थों को निचोड़ कर बनाये जाने वाले पेय योग्य पदार्थ को भी ग्रहण न करे।<sup>२२३</sup> अपक्व शस्त्र अपरिणत वनस्पति आहार ग्रहण का निषेध भी किया गया है। वृत्तिकार ने विकृत होने वाले सोलह प्रकार के आहार का निषेध किया है।<sup>२२४</sup>

इस तरह ये उद्देशक अग्राह्य पानक से सम्बन्धित आहार का विवेचना करता है; क्योंकि पानक मधु, मद्य, घृत आदि में विविध जीवों की उत्पत्ति होती रहती है इसलिये ऐसे पदार्थों से युक्त वस्तु को नहीं ग्रहण करना चाहिए। श्रमण का मूल कर्तव्य ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि करना है इसलिये सभी तरह से आहार की गवेषणा में समभाव की प्रवृत्ति को धारण करे।

### नवम उद्देशक—

ग्रासैषणा दोष का परिहार साधु-साध्वी के लिये अवश्य करना चाहिए। उन्हें स्वाद लोलुपता आहार ग्रहण करने में अविवेक आदि की प्रवृत्ति को नहीं करना चाहिए। साधु आहार की क्रिया में बयालीस दोषों का परिहार कर ग्रासैषणा करता है। साधर्मिक, मनोज्ञ, साम्भोगिक और अपारिहारिक<sup>२२५</sup> कारणों से युक्त आहार मिलने पर ही आहार को ग्रहण करते हैं। वृत्तिकार ने आहार की लोलुपता का मूल रूप से निषेध किया है और यह कथन किया है कि वे साधर्मिक, साम्भोगिक, समनोज्ञ और अपारिहारिक वृत्तिपूर्वक ही ग्रासैषणा करें। इस तरह से यह उद्देशक आहार ग्रहण में विवेक धारण करने की शिक्षा देता है।

### दशम उद्देशक—

इस उद्देशक में स्वाद की लोलुपता और मायाचार से बचने का स्पष्ट निर्देश किया है; क्योंकि मायाचार से—१. आहार वितरण के समय पक्षपात, २. सरस आहार को नीरस आहार से दबाना और, ३. भिक्षा प्राप्त सरस आहार को उपाश्रय में लाये बिना ही बीच में खा लेना, जैसी प्रवृत्ति होती है। अग्राह्य आहार खाने योग्य कर्म और फेंकने योग्य अधिक होता है इसलिये ऐसे आहार को ग्रहण न करें। वृत्तिकार ने ऐसे चार प्रकार के पदार्थ बतलाए हैं, जैसे—

१. ईख के टुकड़े एवं उसके विविध अवयव, २. मूँग, मोठ, चँवले आदि की हरी फलियाँ, ३. गुठली वाले फल या बीज वाले फल, जैसे—तरबूज, ककड़ी, अनार, नींबू पपीता आदि और, ५. जिसमें काँटे आदि अधिक हों ऐसे फल ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।<sup>२२६</sup>

## एकादश उद्देशक—

इस उद्देशक में मायाचार से रहित आहार ग्रहण करने का निर्देश दिया है। लोलुपता के वशीभूत होकर श्रमण मायाचार दंभ, अहंकार आदि की वृत्ति को धारण कर लेता है। पहले वह मन में कपट करता है तदन्तर आहार को अग्राह्य बतला कर स्वयं खा लेता है।<sup>२२७</sup> इस उद्देशक में संक्षिप्त रूप में पिण्डैषणा के सात कारण दिये हैं। वृत्तिकार ने पिण्डैषणा पानक एषणा आदि का निषेध करते हुए श्रमण के लिये मूलोत्तर गुणों की ओर अग्रसर होने का निर्देश किया है।

## द्वितीय अध्ययन: शय्यैषणा—

“शय्यैषणा नामक द्वितीय अध्ययन श्रमण के शयन आसन, स्थान, स्वाध्याय भूमि आदि का कथन करने वाला है। शय्या का अर्थ आगमिक दृष्टि से चारित्र शुद्धि का उपाय है,<sup>२२८</sup> जिसे स्थिति भी कहा जाता है। साधक अपनी साधना के समय जिन स्थानों को, आसनों को, संस्तारक को, या उपकरण आदि को चारित्र की शुद्धि के लिये समावेश करता है, वह शय्या है। वृत्तिकार ने द्रव्य शय्या, क्षेत्र शय्या, काल शय्या और भाव शय्या—इन चार शय्याओं को संयमी के लिये उपयोगी बतलाया है।<sup>२२९</sup> द्रव्य शय्या के अन्तर्गत सचित्त, अचित्त और सचित्ताचित्त का समावेश किया है।<sup>२३०</sup> भाव शय्या के अन्तर्गत स्थितिकरण का अन्तर्भाव किया है। इस तरह शय्या विशुद्धि का कारक है। विवेक और त्याग का परिचायक है।<sup>२३१</sup> संयत् के लिये द्रव्य-शय्या का अन्वेषण, ग्रहण और परिभोग विवेकपूर्वक करना शय्यैषणा है, जिसमें शय्या विशुद्धि का कथन किया गया है। इस शय्यैषणा नामक अध्ययन में तीन उद्देशक हैं जिनमें संयमी साधु के स्थान आदि का निरूपण किया गया है

## प्रथम उद्देशक—

सर्वप्रथम साधु उपाश्रय की खोज करता है, जो निर्दोष जीव-जन्तु से रहित, एकान्त होता था। उसमें विवेकपूर्वक साधु या साध्वी निवास करते हैं। उपाश्रय में तीन प्रमुख कार्य साधक के द्वारा किये जाते हैं—१. कायोत्सर्ग, २. शयन आसन और स्वाध्याय।<sup>२३२</sup> इन स्थानों में प्रवेश से पूर्व गृहस्थ से उसकी अनुमति प्राप्त करता है फिर उसमें प्रवेश करता है।

उपाश्रय का अर्थ है—आत्मा की समीपता को प्राप्त करना। साधक आत्मशुद्धि के निमित्त जिन स्थानों को ग्रहण करता है वे उसकी शय्या स्थान कहलाने लगते हैं जहाँ अपने करने योग्य कार्यों को विधिपूर्वक साधक करता है।

इस तरह उपाश्रय की एषणा साधक विधिपूर्वक एवं विवेकपूर्वक करता है। गृहस्थ के स्थानों को नहीं ग्रहण करता है, क्योंकि वे स्थान कभी भी पवित्र नहीं माने जा सकते हैं, उन स्थानों पर साधु के लिये पूर्ण रूप से निवास करने का निषेध किया

## द्वितीय उद्देशक—

इस उद्देशक में साधक के शयन आसन आदि के ग्रहण करने का ही विधान है। गृहस्थ संसक्त उपाश्रय का निषेध, उन्हें पूर्ण रूप से किया गया है। गृहस्थ संस्कृत, गृह में स्थान या आसन इसलिये वर्जित बतलाये गये हैं कि वहाँ गृहस्थ के द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ अवश्य होती रहेंगी। इसलिये ऐसे स्थानों में प्रवेश करने से पूर्व विवेक को जाग्रत करना आवश्यक हो जाता है। सभी प्रकार के दोषों से रहित जो स्थान होता है, वही, साधु के लिये उचित बताया गया है। आगमों में निम्न नौ प्रकार की शय्याओं का वर्णन है—

१. कालाति-क्रान्ता, २. उपस्थाना, ३. वर्ज्या, ४. अनभिक्रान्ता, ५. अभिक्रान्ता, ६. महावर्ज्या, ७. सावद्या, ८. महासावद्या और ९. अल्प क्रिया।<sup>२३३</sup>

साधु की उपर्युक्त नौ प्रकार की शय्याओं में वृत्तिकार ने महासावद्य शय्या को उचित बतलाया है। निर्गन्थ, शाक्य (बौद्ध), तापस, गैरिक और आजीवक<sup>२३४</sup>—ये श्रमण के पाँच रूप तत्कालिक समाज में प्रचलित थे। वृत्तिकार ने अल्प क्रिया शय्या को निर्दोष बतलाया। उपाश्रय में निर्वध क्रियाएँ श्रमण के द्वारा की जाती हैं। इसलिये शास्त्रकार ने इसके मूल में अल्प क्रिया न रख कर अल्प सावद्य क्रिया को रखा है। इस तरह ये शय्यैषणा से सम्बन्धित उद्देशक के चारित्र वृद्धि की उत्कृष्टता को प्रतिपादित करता है।

## तृतीय उद्देशक—

यह उद्देशक उपाश्रय गवेषणा से सम्बन्धित है, जिसमें साधक को गृहस्थ से उपाश्रय की अनुमति लेने का निर्देश है। उपाश्रय में रहने वाला यह साधक आधाकर्म आदि रहित क्रियाओं को करता है, वह चारित्रिक गुणों की वृद्धि हेतु एषणीय स्थान की याचना करता है। वृत्तिकार ने एषणीय स्थान तीन बतलाये हैं—

१. मूल गुण विशुद्ध स्थान, २. उत्तर गुण विशुद्ध स्थान और ३. मूलोत्तर गुण विशुद्ध स्थान।<sup>२३५</sup> श्रमण सदैव मूल और उत्तर गुणों की वृद्धि हेतु यत्न करता है, वह ऐसे स्थानों को ग्रहण करता है जो स्त्रियों से शून्य, पशुओं से मुक्त और नपुंसकों से सर्वथा रहित होते हैं। इन तीनों के अतिरिक्त साधक सदैव साधना में रत निष्कपट भाव से उपाश्रय की गवेषणा करता है, जिसमें रहकर वह सम्यक् प्रकार से चारित्र की वृद्धि कर सके। वृत्तिकार ने शय्यैषणा के इस तृतीय उद्देशक में यतनाचार उपाश्रय याचना, उपाश्रय में निषिद्ध कर्म, संस्तारक का विवेक आदि का प्रतिपादन किया है। शय्यैषणा तप के आचार से युक्त होती है, इसलिये साधक को ऐसे स्थान का ग्रहण करना चाहिए, जो सभी तरह से एषणीय हो।

## तृतीय अध्ययन : ईर्या—

ईर्या नामक इस अध्ययन में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव<sup>३३</sup> इस प्रकार की ईर्याओं का विवेचन किया गया है। ईर्या गमन का नाम है। साधु का गमन प्राणियों के हित के निमित्त होता है, इसलिये उनका ईर्या-गमन संयम के भाव को दर्शाता है। ईर्या के भेद-प्रभेद में भाव-ईर्या और द्रव्य-ईर्या प्रमुख हैं। भाव-ईर्या में चरण-ईर्या और संयम-ईर्या को रखा है, द्रव्य-ईर्या में सचित, अचित, सचिताचित—इन तीन ईर्याओं का विवेचन किया है।<sup>३३</sup>

ईर्या में स्थान, गमन निषेध्या और शयन का समावेश है। साधु किस प्रकार से गमन करता है, किस क्षेत्र को प्राप्त होता है और किस तरह से धर्म और संयम की सुरक्षा करते हुए अपनी क्रियाओं को करता है। ईर्या अध्ययन के इस विवेचन में साधु के चार साधनों पर अर्थात् ईर्या के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। आलम्बन काल, मार्ग और यातना पर ही केन्द्रित इसके तीन उद्देशक हैं।

### प्रथम उद्देशक—

वर्षावास विहार चर्या से सम्बन्धित यह उद्देशक साधु-साध्वियों के वर्षाकाल में प्राप्त स्थान आदि का विवेचन करता है। वर्षावास में साधु का निवास कहाँ हो? किस क्षेत्र में विचरण करे? और कब तक उन स्थानों पर रहे? जिन स्थानों को उसने यतनापूर्वक ग्रहण किया था। विहार के समय जीवों की यतना पर ध्यान देना साधु का परम कर्तव्य होता है। इसलिये वे चार हाथ भूमि को देखकर संशोधन कर उस पर गमन करते हैं, यतनापूर्वक चलते हैं, अनार्य देश में भी संयम और साधना के भाव से गमन करते हैं। कारणवश नौकारोहण की विधि का विधान भी इस उद्देशक में किया गया है<sup>३४</sup> परन्तु यह भी ध्यान रखने को कहा गया है कि ईर्या पथ पर प्रवर्तित साधु एवं साध्वी समितिपूर्वक गमन करे।

### द्वितीय उद्देशक—

नौकारोहण में उपसर्गों का आना भी होता है, इसलिये साधक उस पर भली प्रकार से बैठे, ईर्या समिति का पालन करे। संकट के समय में नौका में बैठे हुए गृहस्थ आदि के द्वारा यह कहा जाये कि आप मेरे छत्र, भाजन, दण्ड आदि को पकड़े रखो। इन शस्त्रों को ग्रहण करो या अन्य कोई कार्य करने के लिये कहे तो उसमें मौन धारण करके बैठा रहे; क्योंकि ईर्या समिति पर चलता हुआ श्रमण संयम को सर्वोपरि मानता है। वह विषम मार्गों, ऊँचे-नीचे मार्गों, ऊबड़-खाबड़ मार्गों आदि का आश्रय पाकर ईर्या गमन नहीं करता है। संयम की साधना में रत श्रमण ज्ञान आदि से युक्त आचार की पवित्रता हेतु प्रयत्न करता रहता है।



आश्रय पाकर ईर्या गमन नहीं करता है। संयम की साधना में रत श्रमण ज्ञान आदि से युक्त आचार की पवित्रता हेतु प्रयत्न करता रहता है।

### तृतीय उद्देशक—

साधु-साध्वी उन स्थानों का अवलोकन न करें जिन स्थानों पर नहरें हों, उद्यान हों, नदी-नाले हों या अन्य कोई खाली भू-भाग हो।<sup>३३</sup> इन स्थानों पर इन्द्रिय संयम को सर्वोपरि मानकर आचार्य या उपाध्याय द्वारा निर्दिष्ट वचन का पालन करें। ग्रामानुगमन विचरण करते हुए साधु हिंसक पशुओं, निर्दयी लोगों आदि से विचलित न होते हुए निर्भयतापूर्वक आत्म-साधना में लीन रहे। इस तरह यह अध्ययन भी साधु के ईर्या-एषणा से सम्बन्धित गमन की विधि को प्रस्तुत करने वाला है।

### चतुर्थ अध्ययन : भाषाजात—

आचारांग सूत्र के इस अध्ययन में वाक्य-शुद्धि, वाक्य-निक्षेप एवं भाषा के भावों पर विचार किया गया है। भाषा-जात का अर्थ है—भाषा की उत्पत्ति, भाषा का जन्म, भाषा का समूह, भाषा का संघात, भाषा के प्रकार, भाषा की प्रवृत्तियाँ, भाषा के प्रयोग और भाषा की प्राप्ति। अर्थात् जिससे नाम, स्थापना, द्रव्य क्षेत्र, काल भाव और रूप<sup>३४</sup> इन उत्पत्ति रूप द्रव्य-भाषा-जात का विवेचन जिसमें हो, वह अध्ययन साधुओं की भाषा-समिति पर बल देता है। वृत्तिकार ने जात के चार भेद किये हैं—

१. उत्पत्ति-जात, २. पर्यव-जात, ३. अन्तर-जात और ४. ग्रहण-जात।<sup>३५</sup> इन चार द्रव्य भाषा वर्गणा के आधार पर भाषा वचन पर प्रकाश डाला गया है।

भाषा, वचन शुद्धि के लिये वृत्तिकार ने विधि और निषेध रूप में वचन विभक्ति नाम से सोलह भेद प्रस्तुत किये हैं। इसी के अन्तर्गत पुलिग आदि पर विचार किया गया है। भाषा द्रव्य-वर्गणा भाषा की उत्पत्ति आदि से सम्बन्धित यह अध्ययन साधु के द्वारा एषणीय भाषा वर्गणा का विवेचन करता है।

### प्रथम उद्देशक—

भाषागत आचार-अनाचार के विवेक पर आधारित यह उद्देशक वाणी संयम पर प्रकाश डालता है। आगमों में साधुओं के लिये निषेध करने योग्य भाषा के छः कारणों का कथन निम्न प्रकार किया है—क्रोध से, अभिमान से, माया से, लोभ से, जानते, अजानते, कठारेतापूर्वक एवं सर्वकाल सम्बन्धी निश्चित भाषा का प्रयोग नहीं करता है। भाषा प्रयोग के समय संयमी साधक सोलह प्रकार के वचनों का विवेकपूर्वक प्रयोग करता है। एक वचन बोलने पर एक ही वचन<sup>३६</sup> का प्रयोग स्त्री, पुरुष या नपुंसक में से किसी भी शब्द का प्रयोग साधक करता है। साधक प्राकृतिक तत्वों

को देखकर मिथ्यावाद से बचने के लिये सदैव ही विवेकपूर्वक भाषा का प्रयोग करता है<sup>२४३</sup> संयत भाषा का प्रयोग साधु जीवन की भाषा समिति का अनिवार्य अङ्ग है।

### द्वितीय उद्देशक—

व्यक्ति जिस रोग से पीड़ित हो उसे साधक व्यक्ति का वचन व्यवहार करने को काना, लँगड़े को लँगड़ा आदि कहना भी भाषा विवेक के अन्तर्गत नहीं आता है। इसलिये संयमी के लिये सावद्य भाषा बोलने का निषेध किया गया है।<sup>२४४</sup> किसी शब्द आदि के विषय में उस रूप का कथन संयमी के लिये उचित नहीं है। स्थानांग-सूत्र के पाँचों इन्द्रियों के २३ विषय और २४० विकार बताये गये हैं। उन विषयों को जैसा है वैसा भावपूर्वक कहना ठीक नहीं है। इस तरह यह उद्देशक भाषा में संयत परिमित शब्दों के बोलने पर अधिक बल देता है; क्योंकि इससे ज्ञानी के ज्ञान का विकास होता है तथा आचार की पवित्रता बढ़ती है।

### पञ्चम अध्ययन : वस्त्रैषणा—

वस्त्रैषणा से सम्बन्धित यह अध्ययन ममत्व का निषेध करने वाला है। वृत्तिकार ने वस्त्र के दो भेद किये हैं—

१. द्रव्य-वस्त्र, २. भाव-वस्त्र। भाव-वस्त्र संयम का रक्षक है और द्रव्य-वस्त्र शीत आदि निवारण करने का कारण है। इसी अध्ययन में वस्त्रों के प्रकार, वस्त्रों का प्रमाण आदि का भी कथन किया गया है। साधु अपनी निर्गन्धता भी उद्देशक की पूर्ति के लिये संयम एवं एषणा समितिपूर्वक वस्त्रैषणा करता है।

यह अध्ययन दो उद्देशकों में विभक्त है—

### प्रथम उद्देशक—

इस उद्देशक में साधु-साध्वी के द्वारा ग्रहण किये गये वस्त्रों के प्रकार एवं परिमाण का उल्लेख है। श्रमण मूलतः छः प्रकार के वस्त्रों को ग्रहण कर सकता है, जैसे—१. जोंगमिक, २. भांगिक, ३. सानिक, ४. पौत्रक, ५. लोमिक, ६. तूलकृत।<sup>२४५</sup> प्रस्तुत वस्त्रों के प्रकार स्थानांग, बृहदकल्प आदि सूत्रों में भी हैं। वस्त्रैषणा विवेक ही साधु-साध्वी की आचार संहिता का मूल उद्देश्य है।

### द्वितीय उद्देशक—

साधना विधि सम्बन्धित निर्देश<sup>२४६</sup>—

१. सादे एवं साधारण अल्प मूल्य वाले एषणीय वस्त्र की याचना करें, २. जैसे भी सादे एवं साधारण वस्त्र मिलें या ग्रहण करें, वैसे ही उन स्वाभाविक वस्त्रों को सहज भाव से पहने-ओढ़ें, ३. उन्हें रङ्ग-धोकर या उज्ज्वल एवं चमकीले-भड़कीले

साज, सज्जा, विभूषा, श्रृंगार आदि का निषेध पूर्ण रूप से किया गया है। वृत्तिकार ने जिन कल्पित उद्देशकों को ही सर्वोपरि माना है।<sup>२४७</sup> इस तरह से प्रयत्नशील साधक वस्त्रेषणा में विवेक को धारण करता है।

### षष्ठ अध्ययन : पात्रैषणा—

पात्रैषणा से सम्बन्धित यह अध्ययन साधक की क्रिया का एक अङ्ग है। पात्र के बिना पिण्ड (आहार) नहीं ग्रहण कर सकता है। इसलिये वस्त्रैषणा की तरह पात्रैषणा का विवेचन आचारांग सूत्र में किया गया है।<sup>२४८</sup> वृत्तिकार ने पात्र के दो भेद किये हैं—१. द्रव्य-पात्र, २. भाव-पात्र। भाव-पात्र साधु है, व्रती, संयमी है। उनकी आत्मरक्षा या उनकी संयम परिपालना के लिये द्रव्य-पात्र का विधान है। द्रव्य-पात्र काष्ठ आदि से निर्मित होते हैं।<sup>२४९</sup> इस तरह यह अध्ययन दो उद्देशकों में विभक्त है।

### प्रथम उद्देशक—

पात्र के प्रकार मर्यादा का विचार इस उद्देशक में है।<sup>२५०</sup> एषणा दोष युक्त पात्र ग्रहण का निषेध, बहुमूल्य पात्र ग्रहण करने का निषेध, अनेषणीय पात्र ग्रहण करने का निषेध, पात्र प्रतिलेखन आदि से सम्बन्धित यह उद्देशक साधु-साध्वी के लिये पात्रैषणा की विविध मर्यादाओं का उल्लेख है; क्योंकि संयमी भूमि प्रमार्जित कर, प्रतिलेखन कर या उसका शोधन करके ही पात्र को उठाता है, पात्र को रखता है और विवेकपूर्वक ज्ञान, दर्शन, चरित्र की आराधना में प्रत्यनशील होता है।

### द्वितीय उद्देशक—

आहार आदि के लिये पात्रों का प्रतिलेखन या प्रमार्जन करके यतनापूर्वक संयमी आहार आदि के लिये निकलता है। पात्रों को कैसे सुखाना चाहिए और उन्हें विहार करते समय किस तरह ले जाना चाहिए। इन सभी का कथन इस उद्देशक में है।

### सप्तम अध्ययन : अवग्रह प्रतिमा—

साधक का साधना क्षेत्र अवग्रह प्रतिमा पर ही आधारित है। अवग्रह का अर्थ ग्रहण करना है। अवग्रह को अवधान, सान, अवलम्बना और मेधावी कहा जाता है।<sup>२५१</sup> अवग्रह ग्रहण करने योग्य वस्तु का आश्रय भी है, आवास, स्वामित्व, स्वाधीनता भी है—अवग्रह के चार भेद हैं—१. द्रव्य-अवग्रह, २. क्षेत्रावग्रह, ३. कालावग्रह, ४. भावावग्रह।<sup>२५२</sup> अवग्रह प्रतिमा में विविध प्रतिज्ञाओं का समावेश है। अवग्रह प्रतिमा अध्ययन के दो उद्देशक हैं जिनमें विविध अवग्रहों का कथन किया गया है—

## प्रथम उद्देशक—

अवग्रह ग्रहण की अनिवार्यता को प्रस्तुत करने वाला अध्ययन संयमी के संयमपूर्वक विचरण करने की विशेषताओं का उल्लेख करता है। सर्वत्र अवग्रह का गुरु की आज्ञानुसार ग्रहण करना आवश्यक है। प्रतिक्रमण, शयन, प्रवचन, स्वाध्याय, तप वैयावृत्य आदि प्रवृत्ति की आज्ञा भी आवश्यक है।<sup>२५३</sup> अवग्रह याचना के विविध रूप इस उद्देशक में गिनाये गये हैं। इसमें अवग्रह में आने वाले दोषों को भी दर्शाया गया है। संयमी साधक अवग्रहपूर्वक ही समितियों का पालन करता है, क्योंकि आचार-विचार के साथ अवग्रह भी संयमी का मूल धर्म है।

## द्वितीय उद्देशक—

अवग्रह की विधि-निषेध को प्रतिपादित करने वाला यह उद्देशक निम्न चार बातों का निर्देश करता है<sup>२५४</sup>—

१. किसी स्थान, रूप अवग्रह की अनुज्ञा लेने की विधि, २. अवग्रह ग्रहण करने के बाद वहाँ निवास करते समय साधु कर्तव्य, ३. आम्र, इक्षु एवं लहसुन के वन में अवग्रह ग्रहण करके, ठहरने पर अप्रासुक अनैषणीय निषेध करें, ४. यदि वस्तुएँ प्रासुक या एषणीय हों तो उस क्षेत्र के स्वामी से या अधिकारी से विधिपूर्वक ग्रहण करें।

आचारांग की आचार संहिता की विधि को भी साधु जीवन का अनिवार्य अङ्ग मानते हैं। अवग्रह सम्बन्धी सप्त प्रतिमाएँ<sup>२५५</sup> साधु के जीवन को सहिष्णु, समभावी एवं नम्र बनाती हैं। इसलिये समग्र आचार-विचार के लिये अवग्रह शुचिता का कार्य करने वाली है।

## द्वितीय चूलिका :

### प्रथम अध्ययन : स्थान सप्तिका—

स्थान-सप्तिका अध्ययन में धार्मिक क्रियाओं के साथ साधु के स्थान का भी विवेचन है। श्रमण अवग्रह शील व्रतों से युक्त रात्रि-भोजन से रहित, पञ्च महाव्रत धारी गुणवन्त, शीलवन्त, संयम-युक्त, ब्रह्मचर्य के नौ प्रकार के ब्रह्म की गुप्ति से युक्त विवेकपूर्वक स्थान आदि को ग्रहण करते हैं।<sup>२५६</sup> वे यथासमय शयन, प्रतिलेखन, प्रवचन, कार्योत्सर्ग आदि क्रियाओं से युक्त विचरण करते हैं। यह अध्ययन द्रव्य-स्थान और भाव-स्थान की भी विवेचना करता है। मूलतः साधना प्रवीण साधक स्वभाव स्थित रहने के लिये औपशमिक आदि भावों की ओर सतत प्रयत्नशील रहता है। अतः यह स्थान सप्तिका नामक अध्ययन संक्षिप्त रूप में साधु के शयन स्थान आदि का विवेचन करने वाला अध्ययन है। इस अध्ययन में उद्देशक नहीं यह चूलिका के

स्थित रहने के लिये औपशमिक आदि भावों की ओर सतत प्रयत्नशील रहता है। अतः यह स्थान सप्तिका नामक अध्ययन संक्षिप्त रूप में साधु के शयन स्थान आदि का विवेचन करने वाला अध्ययन है। इस अध्ययन में उद्देशक नहीं यह चूलिका के रूप में प्रसिद्ध है। सूत्रकार ने साधु एवं साध्वी के स्थानों का निर्देश करते हुए अप्रासुक स्थानों का निषेध भी किया है, वृत्तिकार ने सूत्रकार के विवेचन को ध्यान में रखकर साधु-साध्वियों के स्थान, एषणा और शय्या एषणा के सम्बन्ध में जिन स्थानों का निषेध किया वे इस प्रकार हैं—

१. अण्डों युक्त या मकड़ी के जालों से युक्त स्थान पर न ठहरें, २. जहाँ पर आधा कर्म आदि दोष लगते हैं उन स्थानों पर न ठहरें, ३. अनासेवित स्थान में न ठहरें, ४. जिस स्थान पर भारी वस्तुओं को हटाया गया हो या आहर निकाला गया हो, उन स्थानों पर न ठहरें, ५. जिस स्थान से हरी वनस्पति आदि को उखाड़ा गया हो ऐसे स्थान पर न ठहरें।

इत्यादि ग्यारह आलापकों में राग स्थानों का विवेचन किया है।<sup>२५७</sup> वृत्तिकार ने यह भी निर्दिष्ट किया है कि जिस स्थान में दो, तीन, चार या पाँच साधु समूह रूप में ठहरें वहाँ पर एक दूसरे के शरीर आलिंगन दुष्क्रियाओं से दूर रहें। शयन स्थान में दो हाथ का अन्तर आवश्यक है।<sup>२५८</sup> श्रमण के चार स्थान प्रतिमा के रूप में प्रतिपादित किये गये हैं। साधु के लिये इन्हें ग्राह्य बतलाया गया है।

१. अचित्त स्थानोपाश्रया, २. अचित्तावलम्बना, ३. हस्तपादादि परिक्रमणा, ४. स्तोत्रपाद विहरणा।

इन चारों का परिचय वृत्तिकार ने इस रूप में दिया है—

१. अचित्त स्थानोपाश्रया—अचित्त का आश्रय लेकर रहना, दीवार-खम्बे आदि उचित वस्तुओं का पीठ या छाती से सहारा लेना, थक जाने पर आगल का सहारा लेना आदि साधु के लिये वजित हैं। अपने स्थान की मर्यादित भूमि में ही काय परिक्रमण करना ठीक है।<sup>२५९</sup>

२. अचित्तावलम्बना—कार्योत्सर्ग की स्थिति के अतिरिक्त आलम्बन अचित्तावलम्बन है।

३. हस्तपादादि परिक्रमणा—कार्योत्सर्ग की स्थिति में केवल आलम्बन ही लेना, परिक्रमण नहीं करना।

४. स्तोत्रपाद विहरणा—कार्योत्सर्ग की स्थिति में विचलित नहीं होना। इस तरह से यह अष्टम अध्ययन भिक्षु और भिक्षुणी के आचार का सर्वस्व विवेचन करता है।

**द्वितीय अध्ययन : निषेधिका—**

**आचाराङ्ग-शीलाङ्कवृत्ति : एक अध्ययन**

१०३

निषीधिका नामक अध्ययन में श्रमण के बैठने के स्थान का विवेचन किया गया है। निषीधि का अर्थ है—बैठने का स्थान। प्राकृत शब्दकोष में निषीधिका के निशीधिका, नैषेधिकी आदि रूपान्तर की जगह, पाप क्रिया के त्याग प्रवृत्ति स्वाध्याय, भूमि अध्ययन स्थान आदि अर्थ मिलते हैं।<sup>२६०</sup>

वृत्तिकार ने निक्षेप के आधार पर निशीथ का विवेचन भी किया है। निषीधिका की अन्वेषणा तभी की जा सकती है जबकि आवास-स्थान संकीर्ण, छोटा, खराब या स्वाध्याय योग्य न हो। स्वाध्याय भूमि या स्वाध्याय स्थान को ग्रहण करते समय श्रमण विवेकपूर्वक प्रवृत्ति करता है। वह कलह, कोलाहल आदि सावद्य क्रियाओं से रहित स्थान को ग्रहण करता है एवं प्रयत्नपूर्वक आचार-विचार की समीक्षा करता है।

### तृतीय अध्ययन : उच्चार-प्रस्रवण सप्तक—

उच्चार शब्द का अर्थ है—शरीर से जो प्रबल वेग के साथ च्युत होता निकलता है उस मल या विष्टा का नाम उच्चार है। प्रस्रवण का शब्दार्थ है—प्रकर्ष रूप से जो शरीर से बहता है, सरकता है। प्रस्रवण (पेशाब) मूत्र या लघुशंका को कहते हैं।<sup>२६१</sup> उच्चार और प्रस्रवण दोनों ही शारीरिक क्रियाएँ हैं। उनका विसर्जन आवश्यक है, परन्तु विसर्जन करते समय विविध प्रकार की क्रियाओं को ध्यान में रखना साधु का कर्तव्य होता है, इसलिये महाव्रती श्रमण के लिये यतनापूर्वक षड्जीवनिकाय की रक्षापूर्वक शुद्ध-विधि और निषेधपूर्वक मल-मूत्र आदि के विसर्जन का निर्देश है। २२ सूत्रों में विधि और निषेध की क्रियाओं का वर्णन है। निशीथ चूर्णि<sup>२६२</sup> में भी इसका विस्तार से परिचय दिया गया है।

इस तरह का परिचय वृत्तिकार ने भी दिया है।<sup>२६३</sup> साधु को किस तरह मल-मूत्र का विसर्जन करना चाहिए, किस तरह से उसका परिस्थापन करना चाहिए? इत्यादि का विस्तृत विवेचन इस अध्ययन में है।

### चतुर्थ अध्ययन : शब्द सप्तिका—

शब्द सप्तक नामक यह अध्ययन कर्णेन्द्रिय के विषय को प्रतिपादित करता है। कर्णेन्द्रिय का कार्य शब्द श्रवण करना है, साधक संयम साधना को निमित्त बनाकर ज्ञान-दर्शन और चारित्र की वृद्धि करने वाले शब्दों को श्रवण करता है। वीतराग के वचनों का चिन्तन करता है। गुरु के चिंतनशील विचारों से सम्यक् मार्ग की ओर प्रवृत्ति करता है।<sup>२६४</sup> लोक में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही प्रकार के शब्द होते हैं। साधक उनमें से अनुकूल शब्दों को ही ग्रहण करता है। जहाँ कर्णप्रिय और कर्ण-कटु शब्द हों, वहाँ पर श्रवण की आसक्ति नहीं होती है। दशवैकालिक सूत्र में भी प्रेरणा उत्कंठा से युक्त शब्दों के सुनने का निषेध किया है।<sup>२६५</sup> १. इच्छा, २. लालसा, ३. आसक्ति, ४. राग, ५. गृद्धि, ६. मोह और ७. मूर्च्छा—इन सातों से दूर रहने का निर्देश होने से (शब्द सप्तक) नाम सार्थक है। वृत्तिकार ने द्रव्य शब्द और

भाव शब्द, गुण और कीर्ति शब्द का निर्देश किया है। वीतराग प्रभु के एवं मुनिजनों के स्तुतिपरक शब्द, स्तोत्र और भक्तिमय काव्य अभीष्ट हैं तथा जिनमें अहिंसा की प्रधानता हो ऐसे गुण प्रशंसनीय होते हैं।<sup>२६६</sup>

आचारांग के अतिरिक्त स्थानांग,<sup>२६७</sup> भगवती सूत्र,<sup>२६८</sup> उत्तराध्ययन<sup>२६९</sup> आदि ग्रन्थों में भी वाद्य आदि शब्दों का निषेध किया गया है। इस तरह से लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के शब्दों में आसक्ति, राग-भाव, गृह्यता, मोह और मूर्च्छा आदि का निषेध किया गया है।

### पञ्चम अध्ययन : रूप सप्तिक—

इस अध्ययन में राग-द्वेष को उत्पन्न करने वाले जितने भी प्रकार के चक्षुइन्द्रिय आश्रित रूप हैं, उन सभी का निषेध किया गया है।<sup>२७०</sup> वृत्तिकार ने रूप सप्तक नामक इस अध्ययन में रूप के निक्षेप की दृष्टि से चार भेद किये हैं—१. नाम निक्षेप, २. स्थापना निक्षेप, ३. द्रव्य-निक्षेप, ४. भाव-निक्षेप। इनमें से नाम और स्थापना निक्षेप का विवेचन नहीं किया गया है। द्रव्यरूप और भावरूप उन्हें केन्द्रबिन्दु बना कर १. वर्णगत और २. स्वभावगत रूपों का कथन किया है। वर्णगत में पाँचों वर्ण लिये गये हैं और स्वभावगत रूप में क्रोध से भौंहों का चढ़ना, आँखें लाल-पीली होना, शरीर काँपना आदि होता है।<sup>२७१</sup> इस तरह इस रूप सप्तक में दृश्यमान रूपों का कथन करके सात प्रकार के रूपों का निषेध किया है।

### षष्ठ अध्ययन : परक्रिया सप्तिक—

षड्विध निक्षेप के आधार पर परक्रिया अध्ययन में निम्न छः क्रियाओं के करने का निषेध किया गया है<sup>२७२</sup>—

१. पर, २. अन्य पर, ३. आदेश पर, ४. क्रम पर, ५. बहु पर, ६. प्रधान पर, ६ निक्षेप वृत्तिकार ने दिये हैं। उनमें से आदेश पर को ही ग्रहण किया जा सकता है जिसका अर्थ नियुक्त करता होता है। परक्रिया से सम्बन्धित इस अध्ययन में परक्रिया का स्वरूप, परक्रिया का निषेध, काय-परिकर्म परक्रिया का निषेध, वर्ण परिक्रम का निषेध, ग्रन्थों, आर्श-भगंदर आदि परक्रिया का निषेध, परिचर्या परक्रिया का निषेध आदि इस अध्ययन की विशेषता है। साधु-साध्वी दोनों ही संयम की आराधना में इन क्रियाओं को अहितकारी मानते हुए इनसे दूर रहते हैं तथा वे सदैव ही ज्ञान साधना में रत समितिपूर्वक विचरण करते हैं।

### सप्तम अध्ययन : अन्योन्यक्रिया सप्तिक—

परस्पर की क्रियाओं को निषेध करने वाला यह अन्योन्यक्रिया सप्तक श्रमण के सर्वोत्कृष्ट, तेजस्विता के गुणों को प्रकट करने वाला है, क्योंकि श्रमण परस्पर एक दूसरे की परिचर्या, मनसा, वयसा, कायसा नहीं कर सकते हैं। इससे उनकी भावना दीन-हीन बनती है। वृत्तिकार ने यह कथन किया है कि साधु यत्नपूर्वक चलता है, यत्नपूर्वक बैठता है और यत्नपूर्वक ही सभी क्रियाएँ करता है,<sup>२७३</sup> इसलिये अन्योन्य-क्रिया

की वृत्ति साधक में जितनी अधिक होगी, वह उतना ही परावलम्बी, पराश्रित, परमुखापेक्षी और दीन-हीन बनता जायेगा।<sup>२७४</sup> अध्ययन में परस्पर में की जाने वाली क्रियाओं का निषेध किया है। आचार चूला<sup>२७५</sup> में निशीथ चूर्णि<sup>२७६</sup> एवं उत्तराध्ययन<sup>२७७</sup> आदि ग्रन्थों में इन क्रियाओं का विस्तार से विवेचन है।

### तृतीय चूलिका : प्रथम अध्ययन : भावना—

भावना नामक इस अध्ययन में महावीर के पञ्च कल्याणक का विवेचन है। गर्भ-अवतरण, देवानन्दा का गर्भ साहरण, महावीर का जन्म, महावीर का नाम, महावीर का यौवन, पाणिग्रहण-संस्कार, महावीर के प्रचलित नाम, महावीर के परिजनों के नाम, माता-पिता की धर्म साधना, महावीर का अभिनिष्क्रमण, साँवत्सरिक, दौत्रकर्म, लौकान्तिक देवों का आगमन, शिविका निर्माण, शिविकारोहण, प्रवज्या, चारित्र ग्रहण, अभि-ग्रहण, उपसर्ग, केवलज्ञान की प्राप्ति, धर्म-देशना, पञ्च महाव्रतों का कथन, षट्काय जीवों की प्ररूपणा आदि से सम्बन्धित यह अध्ययन महावीर के जीवन को उद्घाटित करने वाला है।

जैन दर्शन एवं जैन सिद्धान्त में भावना रूप में बारह भावनाएँ प्रसिद्ध हैं। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि-दुर्लभ और धर्म स्वाख्यातत्व—इन बारह भावनाओं का विवेचन वृत्तिकार ने भी किया है। इन्हें विशुद्ध भावना भी कहा है<sup>२७८</sup>। पञ्च महाव्रतों सम्बन्धी भावनाएँ भी इस अध्ययन में हैं। ज्ञान-भावना, वैराग्य-भावना, एकाग्र-भावना, तप-भावना आदि पञ्च महाव्रत की प्रतिज्ञा और उसकी पाँच भावनाओं को प्रस्तुत करने के बाद मुख्य तीन बातों का स्पष्टीकरण किया है—

१. महावीर की प्रतिज्ञा रूप भावना, २. पञ्च महाव्रत की पाँच भावनाएँ, ३. पञ्च महाव्रत के सम्यक् आराधक का उपाय।

मनोज्ञ और अमनोज्ञ भावनाओं का विवेचन भी प्रस्तुत अध्ययन में है। अन्य समवायांग सूत्र,<sup>२७९</sup> आवश्यक चूर्णि,<sup>२८०</sup> तत्त्वार्थ सूत्र,<sup>२८१</sup> सर्वार्थ-सिद्धि<sup>२८२</sup> आदि ग्रन्थों में भावना का विवेचन है। २५ भावनाओं का वर्णन भी आगमों में है। वृत्तिकार शीलाङ्काचार्य ने जिन बारह भावनाओं का निर्देश किया है वे आज भी प्रचलित हैं। श्रमण पञ्च महाव्रतों सम्बन्धी उत्कृष्ट भावनाओं का विवेकपूर्वक आचरण करते हैं, क्योंकि सम्यक् आराधिक, सम्यक्-भावनाओं का विवेकपूर्वक आचरण करते हैं, आगमानुसार चलते हैं। आगमानुसार आचार-विचार का पालन करते हैं। मोक्षमार्ग का सम्यक् सिद्धान्त ही उनकी उत्कृष्ट धारणा होती है, इसलिये यह सम्यक्-साधना का प्रतीक भावना नामक अध्ययन श्रमण धर्म पर आधारित है।

### चतुर्थ चूला : अध्ययन : विमुक्ति—



विमुक्ति का अर्थ है बन्धनों से छुटकारा। सामान्य अर्थ में विमुक्ति का अर्थ है व्यक्ति जिस द्रव्य से बँधा हुआ है उससे छूट जाना। जैसे—बेड़ियों से जकड़ा हुआ व्यक्ति विमुक्त होता है तब वह बेड़ियों के बन्धन से मुक्त कहलाता है। यह बन्धन द्रव्य बन्धन कहलाता है, भाव बन्धन नहीं। भाव बन्धन कर्मों के क्षय से होता है। वृत्तिकार ने द्रव्य-मुक्ति और भाव-मुक्ति की विवेचना करते हुए यह कथन किया है कि जो भावों से विमुक्त है उस विमुक्त व्यक्ति को विमुक्ति होती है। देश विमुक्त साधु होता है और सर्व विमुक्त (आठ प्रकार के कर्मों से रहित) सिद्ध होते हैं।<sup>२८३</sup>

भावमुक्ति यहाँ अष्टविध कर्मों के बन्धनों को तोड़ने के अर्थ में है और वह अनित्यत्व आदि भावना से युक्त होने पर ही संभव होती है।<sup>२८४</sup> भाव-मुक्ति साधुओं की भूमिका है। वह दो प्रकार की कही गई है—१. देशतः और २. सर्वतः।

विमुक्ति अध्ययन में पाँच अधिकार पाँच भावनाओं के रूप में प्रतिपादित हैं—१. अनित्यत्व, २. पर्वत, ३. रूप्य, ४. भुजंग और ५. समुद्र।

अनित्य भावना बोध महाव्रतों का सूचक है। पर्वत की उपमा परिषह सहन की प्रेरणा देने वाला है। रूप्य का दृष्टान्त कर्म मल शुद्धि का कथन करने वाला है। भुजंग दृष्टान्त द्वारा बन्धन मुक्ति की प्रेरणा दी गई और समुद्र के माध्यम से संसार-सागर को पार होने की शिक्षा दी गई है।

इस तरह इस अध्ययन में मूलोत्तर गुणों के घाती को विमुक्त, परिज्ञाशील, सत-असत का विचारक, परिज्ञाचारी, ज्ञानज्ञ, तपस्वी आदि कहा गया है।<sup>२८५</sup> इस तरह विमुक्ति नामक अध्ययन ज्ञान, दर्शन और चारित्र की प्रधानता को दर्शाने वाला है।

इस तरह आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुत-स्कन्ध में नौ अध्ययन हैं और उनके ५१ उद्देशकों में जहाँ आध्यात्मिक आचार-विचार की समीक्षा की गई है वहाँ उसी प्रथम श्रुत-स्कन्ध में मानव मात्र से लेकर संपूर्ण जगत के प्राणी मात्र के जीवन संरक्षण की जानकारी दी गई है। महाबोधि तत्व एवं परिज्ञा का बोधक प्रथम श्रुत-स्कन्ध निश्चित ही सम्यक् चारित्र की उज्वलता को बनाये रखने वाला महत्त्वपूर्ण अंश कहा जा सकता है। आधुनिक पर्यावरण के संरक्षण के लिये इस श्रुत-स्कन्ध की बोधगम्य सामग्री समग्र संरक्षण में सहायक ही नहीं अपितु कार्यकारी सिद्ध होगी। यह भी कहा जा सकता है कि आचारांग का यह प्रथम श्रुत-स्कन्ध पृथ्वी के पर्यावरण को बचा सकता है जल की उपादेयता को सुरक्षित रख सकता है। अग्नि और अग्नि के तत्वों के संरक्षण में इसकी शिक्षा निश्चित ही उपकारी होगी। वायु को प्रदूषण से बचाया जा सकता है तथा मानव को जीवन दान देने वाले वनस्पति विज्ञान से

सम्बन्धित तृण-वृक्षों आदि को बचाया जा सकता है, जो हमें आज भी जीवनदान दे रहे हैं।

प्राणीजगत का समग्र वातावरण मानवीय आकांक्षाओं ने जितना प्रदर्शित किया है उतना किसी ने नहीं, इसलिये आचारांग के मानवीय मूल्यों को निर्धारित करने वाली दृष्टि आज भी उपयोगी है।

आचारांग के द्वितीय श्रुत-स्कन्ध की आचार चूला, आचार पद्धति आदि श्रमण चर्या से सम्बन्धित है। साधु एवं साध्वी का जीवन प्रव्रज्या लेने के बाद जिन स्थानों को, जिन-जिन उपकरणों को, जिन-जिन शयनों को, जिन-जिन आसनों को एवं जिन-जिन एषणीय क्रियाओं को करता है वे प्राणी मात्र के प्रति जीवनदान देने के लिये हैं तथा इनसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम आदि की वृद्धि पर भी बल दिया जा सकता है। साधु जीवन की कठिन से कठिन क्रिया सभी तरह से उपयोगी मानी गई है जबकि उसमें यथेष्ट आचार-विचार हो तथा उनका समग्र जीवन, उनका समग्र चिन्तन और उनका समग्र आचरण महाव्रतों की भावनाओं से परिपूर्ण हो

□ □ □

## सन्दर्भ ग्रन्थ

१. आचारांग सूत्र अध्ययन १ उ. १, पृ. १ (१/१/१)
२. वही, पृ. १/१/१
३. आचारांग, पृ. २
४. वही, पृ. ३
५. आचारांग वृत्ति, पृ. १
६. वही, पृ. १
७. आचारांग, पृ. २
८. आचारांग, पृ. ५
९. आचारांग, पृ. ५
१०. आचारांग वृत्ति, पृ. २
११. जैन जगदीशचन्द्र-प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ. ५७
१२. जैन परमेश्वरदास—आचारांग : एक अध्ययन
१३. आचारांग, पृ. ७
१४. आचारांग, पृ. ८
१५. पन्नावणा सूत्र ?? १, पृ. ४०
१६. आचारांग, पृ. ८
१७. आचारांग वृत्ति, पृ. ९
१८. आचारांग वृत्ति, पृ. १५
१९. आचारांग वृत्ति, पृ. १८ “ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष”
२०. आचारांग वृत्ति, पृ. १९
२१. वही, पृ. १९
२२. उत्तराध्ययन अ. ३६, गा. ७४, ७५, ७६, ७७
२३. पन्नावणा सूत्र, पृ. २१६, २१७ - घासीलाल
२४. आचारांग वृत्ति, पृ. १९
२५. वही, आचारांग १/२/१३
२६. आचारांग वृत्ति, पृ. २१
२७. आचारांग वृत्ति, १/३/२२
२८. आचारांग वृत्ति, पृ. २७
२९. आचारांग वृत्ति, पृ. ३२
३०. आचारांग वृत्ति, पृ. ३३
३१. आचारांग वृत्ति १/४/३६

३२. भगवती सूत्र
३३. आचारांग वृत्ति, पृ. ३८, ३९, ४०
३४. (क) वही, पृ. ३८  
(ख) उत्तराध्ययन ३६/१३/९४  
(ग) वही, ३६/९५, ९६
३५. आचारांग वृत्ति, पृ. ३८
३६. आचारांग वृत्ति, पृ. ४५
३७. (क) वही, पृ. ४५—विस्तृत विवेचन  
(ख) पणवणा वृत्ति, पृ. ३४६
३८. आचारांग, पृ.
३९. आचारांग वृत्ति, पृ. ४७, ४८, ४९
४०. आचारांग वृत्ति, पृ. ४९
४१. आचारांग वृत्ति, पृ. ४९
४२. आचारांग वृत्ति, पृ. ५०, ५१
४३. आचारांग वृत्ति, पृ. ५३,
४४. आचारांग वृत्ति, पृ. ५५
४५. आचारांग वृत्ति, पृ. ५५
४६. आचारांग वृत्ति, पृ. ५७, ५८, ५९
४७. वही, पृ. ५९
४८. आचारांग, २/१/१
४९. आचारांग, २/१/१
५०. आचारांग वृत्ति, पृ. ६९
५१. आचारांग वृत्ति, पृ. ७४
५२. आचारांग सूत्र २/१, पृ. १०१
५३. आचारांग, २/२/७२
५४. आचारांग वृत्ति, पृ. ७४
५५. वही, पृ. ७४, ७५
५६. वही, पृ. ७४, ७५
५७. आचारांग वृत्ति, पृ. ७७
५८. आचारांग वृत्ति, पृ. ८८
५९. आचारांग वृत्ति, पृ. ७८
६०. आचारांग वृत्ति, पृ. ८३
६१. आचारांग, २/४/१
६२. आचारांग वृत्ति, पृ. ८४
६३. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. ८४  
(ख) आचारांग सूत्र मुनि सौभाग्य मल विस्तार से देखें पृ. १३४

६४. आचारांग सूत्र, पृ. १३९ “सययं मूढे धम्मं नाभिजाणइ एए पंच माया जीवं पाडेति संसारे ॥”
६५. वही
६६. आचारांग वृत्ति, पृ. ८६, सूत्र ८६
६७. वही, पृ. ८७, ८८, ८९, ९०, ९१
६८. आचारांग वृत्ति, पृ. ९५
६९. आचारांग वृत्ति, पृ. १७७
७०. आचारांग वृत्ति, पृ. ९९
७१. (क) उत्तराध्ययन सूत्र १९/३१, ३२  
(ख) तत्वार्थ सूत्र
७२. आचारांग वृत्ति, पृ. १००
७३. आचारांग वृत्ति, पृ. १००  
“अभयकरणशीलः केषां—जीवानां, शीतं सुखं तद्गृह—तदावास :  
कोऽसौ—संयमः सप्तदशभेद : अतोऽसौ शीतो”
७४. वही, पृ. ९९, १००
७५. आचारांग सूत्र ३/१/१
७६. आचारांग वृत्ति, पृ. १०१, १०२
७७. आचारांग सूत्र, पृ. ३/१/२
७८. आचारांग वृत्ति, पृ. १६०
७९. आचारांग, पृ.
८०. आचारांग वृत्ति, पृ. १०९
८१. वही, पृ. १०९
८२. वही, पृ. ११०
८३. आचारांग वृत्ति, पृ. ११०
८४. वही, पृ. ११०
८५. आचारांग वृत्ति, पृ. ११०
८६. वही, पृ. ११०
८७. वही, पृ. १११
८८. वही, पृ. १११
८९. वही, पृ. ११२, ११३
९०. वही, पृ. ११२, ११३
९१. आचारांग सूत्र ३/४, पृ. २७६
९२. आचारांग वृत्ति, पृ. ११७
९३. आचारांग सूत्र ४/१/१
९४. आचारांग सूत्र ४/१/२
९५. आचारांग वृत्ति, पृ. १२१
९६. वही, पृ. १२१

१७. वही, पृ. १२१
१८. आचारांग वृत्ति, पृ. १२१  
“मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोग”  
“ये एवं कर्मणामास्रवा”
१९. वही, पृ. १२१, १२२
१००. आचारांग वृत्ति, पृ. १२७
१०१. वही, पृ. १२७ “कसोहि अप्पाणं जरोहि अप्पाणं”
१०२. वही, पृ. १२८
१०३. वही, पृ. १२८ “तह खलु खवंतिकम्मं सम्मच्चरणे ठिया साहू।”
१०४. तत्त्वार्थ सूत्र “इच्छानिरोधस्तपः”
१०५. आचारांग वृत्ति, पृ. १२८
१०६. आचारांग सूत्र ४/४/१
१०७. सूत्रकृतांग सूत्र
१०८. प्रश्न व्याकरण सूत्र—आचारांग मुनि सौभाग्यमल, पृ. ३२९
१०९. आचारांग वृत्ति, पृ. १३१
११०. आचारांग वृत्ति, पृ. १३१
१११. आचारांग वृत्ति, पृ. १३१
११२. आचारांग सूत्र ५/१/४
११३. आचारांग वृत्ति, पृ. १४०
११४. आचारांग वृत्ति, पृ. १४०
११५. आचारांग वृत्ति, पृ. १३२
११६. आचारांग वृत्ति, पृ. १३३
११७. आचारांग पृ.
११८. आचारांग वृत्ति, पृ. १३३. “संशयोऽनर्थसंशयश्च”
११९. आचारांग वृत्ति, पृ. १३३, १३४
१२०. आचारांग वृत्ति, पृ. १३६
१२१. (क) वही, पृ. १३६  
(ख) आचारांग सूत्र, पृ. ३६६, ३६७
१२२. आचारांग वृत्ति, पृ. १३६
१२३. वही, पृ. १३६
१२४. आचारांग वृत्ति, पृ. १३९
१२५. आचारांग सूत्र ५/३/१
१२६. वही, ५/३/१
१२७. आचारांग वृत्ति, पृ. १३९
१२८. आचारांग वृत्ति, पृ. १३९ “समता” समशत्रुमित्रता
१२९. वही, पृ. १३९ “जहा पुण्णस्सकत्थइतहा तुच्छस्सकत्थई”

१३०. आचारांग वृत्ति, पृ. १४०
१३१. आचारांग सूत्र ५/४/१
१३२. आचारांग वृत्ति, पृ. १४३
१३३. आचारांग वृत्ति, पृ. १४३
१३४. आचारांग सूत्र ५/५/१
१३५. आचारांग वृत्ति, पृ. १४७
१३६. आचारांग सूत्र ५/५, पृ. ४०८
१३७. आचारांग वृत्ति, पृ. १४९
१३८. आचारांग वृत्ति, पृ. १४९
१३९. आचारांग सूत्र ५/५, पृ. ४१९
१४०. आचार्य कुन्दकुन्द—प्रवचनसार, ज्ञानाधिकार गाथा
१४१. आचारांग सूत्र ५/६/१
१४२. आचारांग वृत्ति, पृ. १५१
१४३. वही, पृ. १५२
१४४. आचारांग सूत्र, पृ. ४२५
१४५. आचारांग सूत्र, पृ.
१४६. आचारांग वृत्ति, पृ. १५५
१४७. वही, पृ. १५५
१४८. (क) उत्तराध्ययन सूत्र ३३/२, ३  
(ख) तत्त्वार्थ सूत्र अ. ६
१४९. आचारांग सूत्र ६/१/१
१५०. आचारांग वृत्ति, पृ. १५६
१५१. आचारांग सूत्र ६/१, पृ. ४३९
१५२. आचारांग सूत्र १५७
१५३. आचारांग वृत्ति, पृ. १६०, १६१
१५४. वही, पृ. १६१
१५५. आचारांग सूत्र, पृ. ४५९
१५६. आचारांग वृत्ति, पृ. १६२
१५७. आचारांग वृत्ति, पृ. १६३
१५८. आचारांग वृत्ति, पृ. १६४
१५९. आचारांग वृत्ति, पृ. १६५
१६०. आचारांग सूत्र ६/४, पृ. ४८३ “तं मेहावी जाणिज्जा धम्मं”
१६१. आचारांग वृत्ति, पृ. १६८  
“शरीरं धर्मसंयुक्तं, रक्षणीयं प्रयन्नतः ।  
शरीराज्जायते धम्मो, यथा बीजात्सदङ्कुर ॥”
१६२. आचारांग सूत्र, ६/५/१

१६३. आचारांग वृत्ति, पृ. १७०  
 १६४. आचारांग वृत्ति, पृ. १७३  
 १६५. आचारांग सूत्र, पृ. ४९१  
 १६६. जैन, डॉ. परमेष्ठी दास- आचारांग सूत्र: एक अध्ययन, पृ. ५५  
 १६७. आचारांग वृत्ति, पृ. १७४  
 १६८. चन्द्रप्रभ सागर-आचार सूत्र, पृ. १७६  
 १६९. आचारांग वृत्ति, पृ. १७३  
 १७०. आचारांग वृत्ति, पृ. १७४  
 १७१. आचारांग वृत्ति, पृ. १८०  
 १७२. वही, पृ. १७९  
 १७३. वही, पृ. १७९  
 १७४. आचारांग सूत्र ८/१, पृ. ५१०  
 १७५. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. १८१  
 १७६. वही,  
 १७७. वही,  
 १७८. वही,  
 १७९. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. १८७  
 (ख) आचारांग सूत्र, पृ. ५४१  
 १८०. आचारांग वृत्ति, पृ. १९७  
 १८१. आचारांग वृत्ति, पृ. १८९  
 १८२. आचारांग वृत्ति, पृ. १८९  
 १८३. आचारांग वृत्ति, पृ. १८५  
 १८४. आचारांग वृत्ति, पृ. १८६  
 १८५. वही, पृ. १९१  
 १८६. आचारांग वृत्ति, पृ. १९३  
 १८७. वही, पृ. १९३  
 १८८. आचारांग वृत्ति, पृ. १९८  
 १८९. आचारांग वृत्ति, पृ. १९८  
 १९०. वही, पृ. १९८  
 १९१. वही, पृ. १९८  
 १९२. (क) आचारांग सूत्र ९/१ गा. १-१०  
 (ख) आचारांग वृत्ति, पृ. २०१, २०२  
 १९३. आचारांग वृत्ति, पृ. २०३  
 १९४. वही, पृ. २०३  
 १९५. आचारांग सूत्र ९/२/ गा. ९, १०  
 १९६. आचारांग वृत्ति, पृ. २०६



११७. आचारांग सूत्र ९/३ गा. २
११८. आचारांग वृत्ति, पृ. २०७
११९. आचारांग सूत्र, ९/४, गा. १-४
२००. आचारांग वृत्ति, पृ. २१३
२०१. शास्त्री, देवेन्द्र मुनि—जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ. ७४
२०२. सर्वार्थ सिद्धि ९/२७
२०३. धवला १४/५, ६, ३२३; देखें— जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग १, पृ. ३९
२०४. आचारांग वृत्ति, पृ. २१२
२०५. वही, पृ. २१३
२०६. वही, पृ. २१४
२०७. आचारांग वृत्ति, पृ. २१४
२०८. आचारांग वृत्ति, पृ. २१५
२०९. (क) वही, पृ. २१५  
(ख) मूलाचार ४२१
२१०. आचारांग वृत्ति, पृ. २१५
२११. आचारांग वृत्ति, पृ. २१५
२१२. आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. १२,
२१३. आचारांग वृत्ति, पृ. २१५
२१४. आचारांग सूत्र, सम्पादक मधुकर मुनि, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. २४
२१५. आचारांग वृत्ति, पृ. २१९
२१६. आचारांग वृत्ति, पृ. २२०
२१७. आचारांग वृत्ति, पृ. २२३
२१८. आचारांग वृत्ति, पृ. २२६
२१९. आचारांग वृत्ति, पृ. २२८
२२०. (क) वही, पृ. २२३,  
(ख) निशीथ भाष्य (मधुकर मुनि: आचारांग सूत्र), द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. ६४, ६५
२२१. आचारांग वृत्ति, पृ. २२९
२२२. वही, पृ. २३०
२२३. आचारांग वृत्ति, पृ. २३१
२२४. वही, पृ. २३२
२२५. आचारांग वृत्ति, पृ. २३६
२२६. आचारांग वृत्ति, पृ. २३६
२२७. वही, पृ.
२२८. आचारांग वृत्ति, पृ. २४०
२२९. वही, पृ. २३९
२३०. वही, पृ. २३९

२३१. वही, पृ. २४०
२३२. आचारांग वृत्ति, पृ. २४०, २४१
२३३. (क) आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. १४२, (ख) आचारांग वृत्ति, पृ. २४५
२३४. आचारांग वृत्ति, पृ. २४५
२३५. आचारांग वृत्ति, पृ. २४६
२३६. आचारांग वृत्ति, पृ. २५०
२३७. आचारांग वृत्ति, पृ. २५०
२३८. आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध, ३/१, पृ. १८०
२३९. आचारांग वृत्ति, पृ. २५१
२४०. आचारांग वृत्ति, पृ. २५७
२४१. आचारांग वृत्ति, पृ. २५७
२४२. आचारांग वृत्ति, पृ. २५८
२४३. वही, पृ. २५९
२४४. आचारांग वृत्ति, पृ. २६१
२४५. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. २६२  
(ख) आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. २३५  
(ग) वृहत कल्प भाष्य गा. ३६०- ६१,  
(घ) ठणांगः मुनि नथमल, पृ. ६४२
२४६. आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. २५५
२४७. आचारांग वृत्ति, पृ. २६२
२४८. आचारांग वृत्ति, पृ. २६६
२४९. वही, पृ. २६७
२५०. आचारांग वृत्ति, पृ. २६६
२५१. जैनेन्द सिद्धान्त कोष, भाग १, पृ. १८१
२५२. आचारांग वृत्ति, पृ. २६८
२५३. आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुत स्कन्ध, पृ. २८०
२५४. आचारांग वृत्ति, पृ. २७०
२५५. वही, पृ. २७०
२५६. आचारांग वृत्ति, पृ. २३३
२५७. आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुत स्कन्ध, पृ. ३०१, ३०२
२५८. आचारांग वृत्ति, पृ. २३२
२५९. आचारांग वृत्ति, पृ. २७२, २७२
२६०. पाइअ-सद्महण्णवो, पृ. ४१४
२६१. आचारांग वृत्ति, पृ. २७३
२६२. (क) निशीथ चूर्णि, पृ. २३४  
(ख) आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. ३१३-३२५

२६३. आचारांग वृत्ति, पृ. २७३, २७४  
 २६४. आचारांग वृत्ति, पृ. २७४  
 २६५. दशवैकालिक सूत्र ८ गा. २६  
 २६६. आचारांग वृत्ति, पृ. २७५  
 २६७. स्थानांग सूत्र सूत्र २११-२१९  
 २६८. भगवती सूत्र  
 २६९. उत्तराध्ययन अ. ३२  
 २७०. आचारांग वृत्ति, पृ. २७६  
 २७१. वही, पृ. २७६  
 २७२. आचारांग वृत्ति, पृ. २७७  
 २७३. आचारांग वृत्ति, पृ. २७८  
 २७४. उत्तराध्ययन अ. २९  
 २७५. आचार चूला—मुनि नथमल, पृ. २२४, २३०  
 २७६. निशीथ चूर्णि, पृ. २५२, २९७  
 २७७. उत्तराध्ययन अ. २९  
 २७८. आचारांग वृत्ति, पृ. २८०  
 २७९. समवायांग सूत्र—समवायांग—२५  
 २८०. आवश्यक चूर्णि, पृ. १४७  
 २८१. तत्त्वार्थ सूत्र अ. ७/८  
 २८२. सर्वार्थ सिद्धि—अ. ७/८  
 २८३. आचारांग वृत्ति, पृ. २८६  
 २८४. आचारांग वृत्ति, पृ. २८६  
 २८५. आचारांग वृत्ति, पृ. २८७



## आचारांग वृत्ति का दार्शनिक अध्ययन

आगम श्रमण संस्कृति के महानतम ग्रन्थ हैं, जिनको अर्थ रूप में आप्त द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसलिए आप्त के वचनादि से होने वाले पदार्थों के ज्ञान को आगम कहते हैं।<sup>१</sup> आप्त के मुख से निसृत वचन पूर्वापर विरोध से रहित होते हैं। उनका वचन वादी, प्रतिवादी के द्वारा खंडित नहीं किया जा सकता है। उनके वचनों का विरोध आगम प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण या अनुमान आदि प्रमाण के द्वारा भी खंडित नहीं किया जा सकता है; क्योंकि आगम सत्यार्थ के स्वरूप को प्रतिपादित करने वाले होते हैं। आप्त के वचन न्यूनता बिना, अधिकता बिना, विपरीतता बिना यथातत्त्व वस्तुस्वरूप को निःसंदेह रूप से प्रतिपादित किया गया है।

आगम सिद्धान्त एवं प्रवचन आप्त के वाक्य के अनुरूप हैं। उसमें रागादि द्वेष नहीं, उनके वचनों में कोई ऐसा कारण नहीं पाया जाता है कि जिससे यह कहा जाए कि आगम तत्त्वार्थ दृष्टि से परे हैं।

आगम का अर्थ आप्त प्रतिपादित है। सूत्ररूप में गणधरों द्वारा उसे निरूपित किया गया और विचारकों द्वारा उसकी उपयोगिता बनाये रखने के लिए विस्तृत विवेचन के साथ, वक्ता-श्रोता की दृष्टि को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया गया है। आगम अनादि हैं, केवली द्वारा कथित हैं, अतिशय बुद्धि के धारक गणधरों द्वारा प्रतिपादित हैं। ये वस्तु तत्त्व के अभिप्राय को व्यक्त करने वाले हैं। आगम मूलतः दो रूपों में हैं—(१) अर्थ आगम और (२) सूत्र आगम। उन्हीं आगमों में अङ्ग आगम, अङ्ग बाह्य आगम, उपांग, छेद सूत्र, मूल सूत्र आदि आगम हैं, जिनका पूर्व में विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है।

आगमों के संरक्षण के लिए महावीर निर्वाण के बाद विविध वाचनाएँ की गईं। उनसे आगम का संरक्षण प्रारम्भ हुआ। परिणामस्वरूप अङ्ग, उपांग, छेद सूत्र, मूल सूत्र आदि लिखित रूप में प्रस्तुत किये गये। आगमों की मूल विशेषता आचार संहिता को प्रस्तुत करना रहा है। परन्तु आगम भूगोल-खगोल, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, प्राचीन वास्तुकला आदि की विशेषताओं के विश्लेषण करने वाले भी ग्रन्थ हैं। आचारांग, दशवैकालिक जैसे मुनि की आचार-विचार की प्ररूपणा करने

वाले ग्रन्थ हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति जैसे ग्रन्थ भूगोल और खगोल के विषयों की जानकारी देने वाले आगम हैं। उपासकों की उपासना उपासक दशांग में है। दृष्टान्त एवं कथात्मक शैली का केन्द्रबिन्दु णायाधम्मकहा है। शुभ और अशुभ विपाक की परिणति विपाक सूत्र में है। व्याख्या-प्रज्ञप्ति में महावीर के संवादों का संग्रह है।

जहाँ उक्त सभी आगम विविध विषयों के विवेचन को प्रस्तुत करने वाले हैं, वहाँ उनमें दर्शनिक तत्त्वों की भी भरमार है। आचारांग, सूत्रकृतांग, व्याख्या प्रज्ञप्ति, स्थानांग, समवायांग, प्रज्ञापना, नन्दी सूत्र, अनुयोग द्वार एवं राज प्रश्नीय आदि आगम मुख्य रूप से दर्शनिक सिद्धान्तों से परिपूर्ण हैं, जिनमें क्रियावादी, अक्रियावादी, आत्मवादी, अनात्मवादी, विज्ञानवादी आदि कई मत-मतान्तरों की दृष्टि है। भूतवादी, ब्रह्मवादी, विनयवादी एवं नास्तिक दृष्टि आदि का भी विवेचन आगमों में है। आचारांग सूत्र के प्रारम्भिक अध्ययन के प्रारम्भिक सूत्र न. (५) में आयावादी, लोयावादी, कम्मावादी, क्रियावादी; इन चार विचारधाराओं का उल्लेख दर्शन की प्राचीनता सिद्ध करता है।

सूत्रकृतांग का स्वमत और परमत विवेचन पूर्णतः दर्शनिक शैली पर आधारित है, जिसमें चार्वाक के पञ्चभूत तत्त्वों का निराकरण किया गया है। इसी में नानात्मकवाद, जीव और शरीर की पृथक्ता एवं जगत की उत्पत्ति आदि पर प्रकाश डाला गया है। व्याख्या प्रज्ञप्ति में नय-प्रमाण आदि के अमुक दार्शनिक पक्ष सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। स्थानांग और समवायांग सूत्र की शैली बौद्धों के अंगुत्तर निकाय में भी मिलती है, जिसमें आत्मा, पुद्गल, ज्ञान, नय और प्रमाण आदि की चर्चा दार्शनिक दृष्टि से की गई है। अनुयोगद्वार में शब्दार्थ विश्लेषण के साथ प्रमाण और नय के पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। नन्दी-सूत्र ज्ञान के दार्शनिक पक्ष को सूक्ष्म दृष्टि से प्रस्तुत करता है।

आगमों के व्याख्याकारों ने आगमों की व्याख्या में सिद्धान्त विश्लेषण के साथ जो दार्शनिक दृष्टि प्रस्तुत की है वह अनुसंधान से अछूती है। आचारांग सूत्र से लेकर जितने भी आगम हैं उन सभी पर व्याख्याकारों ने जो व्याख्याएँ की हैं उनमें तत्त्व को नय और निक्षेप पद्धति पर घटित करके उसकी सूक्ष्मता का विवेचन भी किया गया है।

आचारांग वृत्ति दार्शनिक पक्ष की पृष्ठभूमि पर ही आधारित है। शीलाकाचार्य ने आचारांग वृत्ति में आचार-विचार की भूमिका के साथ प्रत्येक सूत्र को स्पष्ट करने के लिए नय पद्धति, निक्षेप पद्धति, भंग दृष्टि और प्रमाण दृष्टि को केन्द्रबिन्दु बनाया है। उसी के आधार पर रहस्य को स्पष्ट किया है। आचारांग वृत्ति, चूर्णि आदि में अधिकांशतः दार्शनिक चर्चाएँ उभर कर सामने आई हैं। निर्युक्तियों में भद्रबाहु स्वामी ने अनेक स्थलों पर दार्शनिक चर्चाएँ बड़े सुन्दर ढंग से की हैं। उनमें बौद्धों और चार्वाक दर्शन के मतों का उल्लेख किया है। आत्मसिद्धि के विविध चरणों अर्थात् प्रमाण, नय और निक्षेप आदि के विषय से परिपूर्ण दृष्टि है। संघदास गणि, जिनभद्र

आदि आचार्यों की भाष्य विवेचना तर्क-संगत है। उसी तर्क पर दार्शनिक विषय प्रकट हुआ है।

सातवीं और आठवीं शताब्दी के बाद भी आचार्य हरिभद्र सूरि जैसे प्रकाण्ड दार्शनिक ने आगमों पर टिप्पणी लिखते हुए जो दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत किये हैं, वे सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। आचार्यों द्वारा आगमों पर जो व्याख्याएँ लिखी गई हैं, उनमें युग की माँग के अनुसार भारतीय संस्कृति में व्याप्त विविध मत-मतान्तरों के विषयों का उद्घाटन हुआ है। उन्होंने जो भी प्रयास आगमों के आधार पर किये हैं वे निश्चित ही दार्शनिक जगत के मार्गदर्शक हैं, उससे नए-नए चिन्तन भी सामने आए हैं।

### भारतीय दर्शन की विचारधारा—

मूलतः आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित भारतीय दर्शन सभी दर्शनों में सर्वोपरि है। भारत में दर्शन-शास्त्र मूलभूत रूप से आध्यात्मिक है। दर्शन-शास्त्र के संस्थापकों ने देश के सामाजिक एवं आध्यात्मिक सुधार का प्रयास भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही किया, इसलिए दर्शन की प्रगति के साथ-साथ नये-नये विचारों का आदान-प्रदान भी हुआ। उन्हीं से कई मत-मतान्तरों ने आध्यात्मिक जीवन की गहराइयों में हलचल उत्पन्न कर दी। भारतीय विचारधारा के इतिहास में निःसंदेह ये बड़े बहुत महत्वपूर्ण क्षण रहे हैं। आन्तरिक कसौटी और अन्तरदृष्टि के क्षण आत्मा की पुकार पर मनुष्य का मन एक नये युग में पग रखता है और एक नये साहसिक कार्य पर चल पड़ता है। दर्शन का सत्य जन-साधारण के दैनिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है तथा धर्म तत्त्व को सजीव और वास्तविक बनाता है।<sup>१</sup>

भगवान महावीर और बुद्ध के समय में चिन्तन की धाराओं ने अनेक रूप धारण किये। श्रमण परम्परा में अनेक वाद प्रचलित हुए। इन वादों में बौद्ध परम्परा, वैदिक परम्परा और जैन परम्परा अर्थात् श्रमण परम्परा की विचारधाराओं ने भी अपने पैर जमाए। आगम के नये-नये संदर्भ सामने आए। तत्त्व चिन्तन के विषय दर्शन पर आधारित हुए। सम्पूर्ण प्रस्तुतीकरण में एक नये अध्याय का प्रारम्भ किया। तत्त्व चिन्तन ने विचारकों के विचारों में जो मोड़ दिया, वह खुलकर अभिव्यक्त हुआ। जीव, जगत आदि के दार्शनिक रूप ने क्रान्तिकारी कदम उठाए। परिणामस्वरूप तत्त्व चिन्तन ने वादी-प्रतिवादी का जमघट तैयार कर दिया। वस्तु तत्त्व के विवेचन में जो तर्क-वितर्क उत्पन्न हुआ, उसकी पहचान बनी। उसी पर आधारित सभी कुछ विवेचन प्रस्तुत किया जाने लगा।

जैन दर्शन का विकास-क्रम चार युगों में विभक्त किया जा सकता है—

१. आगम युग, २. अनेकान्त स्थापना युग, ३. प्रमाण-शास्त्र व्यवस्था युग, ४. नवीन न्याय युग।

इस विभाजन से स्पष्ट है कि प्रत्येक युग का कोई न कोई दार्शनिक पक्ष रहा होगा।

- (१) महावीर निर्वाण से लेकर १००० वर्ष का युग आगम युग है (वी. पू. ४७० वी. ५००),
- (२) दूसरा वि. पाँचवीं से आठवीं शताब्दी तक,
- (३) तीसरा आठवीं से सत्तरहवीं शताब्दी तक,
- (४) चौथा अठारहवीं से आधुनिक समय पर्यन्त।<sup>३</sup>

आगमों या अन्य इसके व्याख्या ग्रन्थों में दार्शनिक तत्त्व की प्रक्रिया अनेकान्त व्याख्या युग प्रमाण शास्त्र-युग को स्पष्ट करती है; क्योंकि विवेचनकारों ने आगम युग के दार्शनिक तत्त्वों को तत्कालीन प्रचलित मत-मतान्तरों के मूल सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए भी दार्शनिक चर्चा प्रस्तुत की है। आगम और उनकी निर्युक्तियों, चूर्णियों, भाष्यों एवं वृत्तियों में आगम साहित्य के मूल विषय को आगम युग के दर्शन तत्त्व के निरूपण में जो स्थान नहीं दिया गया था, उसे विवेचनकर्त्ताओं ने आत्मवादी, कर्मवादी, लोकवादी, क्रियावादी, विज्ञानवादी, विनयवादी आदि दृष्टियों को अपने सूक्ष्म विश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया है। वृत्तिकार शीलंकाचार्य ने आचारांग वृत्ति के विवेचन में जिस दार्शनिक दृष्टि को अपनाया है, उसे हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

- (१) प्रमाण-पद्धति, (२) नय-पद्धति, (३) निक्षेप-व्यवस्था, (४) भंग-विवेचन।

आगमों की भंग विवेचना दार्शनिक विवेचना की एक ऐसी पद्धति है जिसमें अनेकान्त की संमायोजना परिलक्षित होती है। स्याद्वाद सिद्धान्त की शैली पर आधारित आचारांग वृत्ति की पद्धति अन्य आगम ग्रन्थों की टीकाओं में भी पायी जाती है। दार्शनिकों की दर्शन दृष्टि ने स्वतंत्र दर्शन ग्रन्थों की रचना के माध्यम से जीव जगत, ईश्वर, प्रमाण, नय आदि के तत्त्वों को सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया, वह सब आगम के सैद्धान्तिक तत्त्वों के विश्लेषण पर ही आधारित है। जो पूर्व में था अर्थात् जो आगम रूप में प्रसिद्ध था, वही दर्शन युग में प्रवेश करते ही खण्डन-मण्डन की पद्धति को प्राप्त कर गया। परिणामस्वरूप प्राचीन आत्मा, जगत, ईश्वर आदि का विश्लेषण अपने-अपने पक्षों पर केन्द्रित होकर विषयों को अधिक सटीक बनाने लगा। दार्शनिकों की प्रस्तुति प्राचीन मान्यताओं से हटकर कुछ भी कहने में असमर्थ नहीं है; क्योंकि जो किसी न किसी प्रमाण को लेकर प्रस्तुत किया जाता है। सत्य, सत्य होता है। सत्य को विविधरूपों में प्रस्तुत करके तर्क-संगत बनाने

के लिए उसे अपनी प्राचीन दार्शनिक मान्यताओं को सामने रखना पड़ता है। आचारांग का “आयावादी लोयावादी-कम्मावादी किरियावादि” नामक सूत्र मूलतः इन चार दर्शन तत्त्व की मीमांसा करता है। आयावादी में आत्म दर्शन की, लोयावादी में लोक दर्शन (चार्वाक) की, कम्मावादी में कर्म की विवेचना और किरियावादी में क्रिया का अर्थात् कर्म के निमित्त से होने वाली क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। सूत्रकृतांग में स्वागम-परागम के विश्लेषण के साथ १. क्रियावाद, २. अक्रियावाद, ३. नियतिवाद, ४. अज्ञानवाद, ५. जगतवाद, ६. कर्तृत्ववाद जैसे विचार व्यक्त किये गये। आगमों में चार एवं छः दार्शनिकों के अतिरिक्त ३६३ मत-मतान्तरों का उल्लेख मिलता है। इसके अनन्तर मूल आगम ग्रन्थों के ऊपर जो व्याख्याएँ लिखी गईं, उनमें इन दार्शनिक मान्यताओं के अतिरिक्त दर्शन जगत के प्रसिद्ध न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन एवं सांख्य दर्शन आदि का उल्लेख है।

आगमों में क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६७ और वैशेषिकों के ३२ भेद गिनाये गये हैं। उक्त चारों दार्शनिकों के कुल मिलाकर ३६३ भेद बताये गये हैं। उक्त क्रियावादी दार्शनिक आदि के भेदों को अलग-अलग रूप में प्रतिपादित किया गया है— १. जीव के काल की अपेक्षा से ४ भेद और २. नियति के ४ भेद, ३. स्वभाव के ४ भेद, ४. ईश्वर के ४ भेद और ५. आत्मा के ४ भेद। ये सभी जीव के २० भेद दार्शनिक हैं। अजीव के २०, पुण्य के २०, पाप के २०, आश्रव के २०, संवर के २०, निर्जरा के २०, बन्ध के २० और मोक्ष के २०, कुल १८० भेद क्रियावादियों के हैं। इसी तरह के अन्य भेदों का उल्लेख आगमों में आया है।

आचारांग के वृत्तिकार ने उक्त मतों का उल्लेख किया है।<sup>६</sup> इसके अतिरिक्त कालवादी, नियतिवादी, स्वभाववादी, ईश्वरवादी, आत्माद्वैतवादी, अज्ञानवादी, विनयवादी, एकान्तवादी के नामों का उल्लेख भी आचारांग वृत्ति में किया गया है। आत्मवाद, कर्मवाद, ज्ञानवाद, मोक्षवाद, परिणानित्यवाद, अनेकान्तवाद, सत्कार्यवाद, असत्कार्यवाद, स्वतःप्रामाण्यवाद, परतःप्रामाण्यवाद प्रतीत्यसमुत्पाद, भौतिकवाद (चार्वाकवाद), अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद, शून्यवाद, नितानावाद, स्याद्वाद, परमाणुवाद (वैशेषिक), स्फोटवाद, नयवाद, अनात्मवाद, अध्यासवाद, ईश्वरवाद, निरीश्वरवाद, सन्तानवाद, विवर्तवाद, निक्षेपवाद, प्रतिबिम्बवाद, अक्रियावाद, नियतिवाद, अकृततावाद, अनिश्चिततावाद, उच्छेदवाद, निह्वणवाद, बहुरतवाद, जीवप्रादेशिकवाद, अव्यक्तवाद, सामुच्छेदिकवाद, द्वैक्रियवाद, त्रैराशिकवाद, अवद्विकवाद, ढाई हजार वर्ष पूर्व के स्फुट दार्शनिकवाद इत्यादि कई दार्शनिकों का उल्लेख भारतीय दर्शन के प्रमुखवाद नामक पुस्तक में किया गया है।<sup>७</sup>



दर्शन शास्त्रों की परम्परा में कई दर्शनों का उल्लेख आता है। उनमें षड् दर्शन का महत्त्व प्रारम्भ से लेकर अब तक बना हुआ है। दर्शन की छः संख्या अलग-अलग रूप में है। पुराण काल में न्याय, सांख्य, योग, मीमांसक और लोकायत दर्शन की प्रसिद्धि है। महाभारत और गीता से सांख्य योग दर्शन की विशेषताओं का ज्ञान होता है। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में न्याय वैशेषिक, सांख्य योग और मीमांसक दर्शन का बोलबाला था। इनके विरोधी जैन, बौद्ध और चार्वाक—ये तीन अवैदिक दर्शन भी अपना स्थान बनाये हुए थे। इस तरह वैदिक और अवैदिक इन दो परम्पराओं के कुल छः दर्शन स्थायित्व को प्राप्त होते हैं। जैन परम्परा के प्रमुख आचार्य हरिभद्र सूरि ने बौद्ध नैयायिक, सांख्य, जैन, वैशेषिक और जैमिनी—इन छः दर्शनों का उल्लेख किया है।<sup>1</sup> मणिभद्र कृत लघु वृत्ति में उक्त दर्शनों का विवेचन है।<sup>1</sup> षड्दर्शन समुच्चय की भूमिका में पंडित दलसुख मालवणिया ने इन दर्शनों का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है।

आचारांग वृत्ति के प्रथम अध्ययन के प्रारम्भिक विवेचन में ज्ञान और क्रिया को महत्त्व दिया गया है। ज्ञान और क्रिया के समन्वय से मोक्ष की प्राप्ति होती है। ज्ञान और क्रिया यदि परस्पर निरपेक्ष हो तो वह इष्ट का साधन नहीं बन सकती है। क्रियारहित ज्ञान पंगु है और ज्ञान रहित क्रिया अन्धी है। यदि अन्धे और पंगु का परस्पर संयोग हो तो वह दोनों ही दावानल से बच कर जंगल से पार हो सकते हैं। यदि वे परस्पर निरपेक्ष हों तो दोनों जलकर नष्ट हो जाएँगे। अन्धे और लँगड़े के समन्वय रूप ज्ञान और क्रिया ही फल को प्रदान करने वाली है।<sup>1</sup>

### एकांत ज्ञान नयवाद—

ज्ञान को ही प्रमुख मानने वाले ज्ञान नयवादी हैं। वे क्रिया को नहीं मानते हैं, क्योंकि उपादेय का उपादान और हेय का त्याग, ज्ञान के आश्रित ही हैं। ज्ञान रहित की जाने वाली क्रिया इष्टकारी नहीं होती है। ज्ञान होने पर सब क्रियाएँ व्यवस्थित हो जाती हैं। ज्ञान शून्य क्रिया पतंग की तरह अनर्थकारी है। इसलिए ज्ञान ही मोक्ष का प्रमुख साधन है।<sup>1</sup>

### क्रिया-प्रधानवाद—

क्रिया को प्रधान मानने वालों का कहना है कि क्रिया ही प्रधान है; क्योंकि ज्ञान के द्वारा जान लेने पर भी यदि क्रिया न की जाये तो वह ज्ञान निष्फल हो जाता है। केवल औषधि का ज्ञान कर लेने मात्र से रोग का उपचार नहीं हो जाता है अपितु औषधि का सेवन ही रोग के निदान में सहायक होता है। मोदक का ज्ञान हो जाने से मोदक का मिठास का अनुभव नहीं होता है। उसका आस्वाद करना ही आनन्द

का कारण माना जाता है। क्रिया ही फल देने वाली है ज्ञान नहीं; क्योंकि स्त्री भक्ष्य और भोग को जानने मात्र से कोई सुखी नहीं हो जाता है।<sup>१२</sup>

आगम की चर्चा करते हुए आगम ग्रन्थों में आगम के तीन भेद प्रतिपादित किये गये हैं—आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम। अर्थ की अपेक्षा से अर्हन्त का आगम अर्थागम है। सूत्र की अपेक्षा से गणधरों का आगम आत्मागम है।<sup>१</sup> अर्थ की अपेक्षा से गणधरों का आगम अनन्तरागम है; क्योंकि उन्होंने यह अर्थ सर्वज्ञ से ग्रहण किया है इसलिए गणधर आदि शिष्य के लिए सूत्ररूप आगम अनन्तरागम और अर्थरूप आगम परम्परागम है। आगम की इस निरूपण में मीमांसक दर्शन की अपौरुषेय मान्यता का विवेचन हुआ है।

### मीमांसक दर्शन—

यह दर्शन वेद रूप आगम को अपौरुषेय मानता है; क्योंकि उनके मत से कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता है। इसलिए वेद को पुरुषकृत न मानकर अपौरुषेय माना है। जैन दर्शन ने इस पर टिप्पणी करते हुए यह कथन किया कि पुरुष भी सर्वज्ञ हो सकता है; क्योंकि पुरुष परमात्मा का स्वरूप है। राग-द्वेष से मुक्त है। इसलिए उसमें किसी तरह का विरोध नहीं है, वेद वर्णात्मक है। वर्ण या अक्षर तालु आदि स्थानों के बिना नहीं बोले जा सकते हैं, अतः वेद रूप आगम अपौरुषेय नहीं है। आचारांग में सर्वत्र “सुयं मे”<sup>१३</sup>—मैंने सुना यह कहकर पुरुषेय आगम की प्रामाणिकता सिद्ध की है।

### आचारांग का दार्शनिक पक्ष—

आचारांग सूत्र आचार-विचार के तत्त्व ज्ञान पर आधारित है। यद्यपि आचारांग का तत्त्व ज्ञान धार्मिक दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण है उससे कहीं अधिक दर्शन शास्त्र की दृष्टि से इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। “से आयावादी,<sup>१४</sup> लोयावादी, कम्मावादी, किरियावादी”<sup>१५</sup> आचारांग का यह सूत्र आत्मा, लोक, कर्म और क्रिया—इन चार तत्त्वों को प्रतिपादित करता है। ये सभी तत्त्व तत्कालीन दार्शनिकों के विविध विचारों को व्यक्त करते हैं। इन्हीं विचारों को केन्द्रबिन्दु बनाकर आचारांग सूत्र विविध दार्शनिक मतों का संक्षिप्त रूप में निराकरण करता है।

मैंने किया, मैंने करवाया, मैंने करते हुए को अनुमोदन किया, मैं करता हूँ, मैं करवाता हूँ, मैं करते हुए अनुमोदन करता हूँ। मैं करूँगा, मैं करवाऊँगा, मैं करते हुए को अनुमोदन करूँगा—उक्त विकल्प दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण हैं। शस्त्र परिज्ञा नामक प्रथम अध्ययन में संसार के समस्त जीवों की रक्षा, सापेक्ष दृष्टि को प्रस्तुत करने वाली बातें हैं। लोक विजय नामक द्वितीय अध्ययन में माता-पिता आदि के सम्बन्धों की मीमांसा करते हुए जो भी कथन किया गया है उसमें नियमतः दर्शन तत्त्व का समावेश है। वास्तव में वे विमुक्त मनुष्य हैं जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र

के पारगामी हैं।<sup>१६</sup> जन्म और मरण अरहट्ट-घटीयन् के न्याय पर आधारित है। जिस प्रकार अरहट्ट में रहे हुए घट खाली होते हैं और भरते हैं उसी क्रम से प्राणी जन्म लेते हैं और मरते हैं। इसे आबीची मरण न्याय कहा जाता है। अनित्य, क्षण, विध्वंसी और नश्वर पदार्थों को जो नित्य मानता है, अहित में हित बुद्धि करता है, यह भी दर्शन की एक प्रक्रिया है।<sup>१७</sup>

“जेण सिया, तेण णो सिया”<sup>१८</sup>

जो है वह वैसा नहीं है। यह कथन भी दर्शन तत्त्व पर आधारित है। शीतोष्णिय नामक तृतीय अध्ययन में जो सोता है वह खोता है, जो जागता है वह पाता है<sup>१९</sup> यह विवेचन विवेक दर्शन को जागृत करने वाला है। गीता में यही बात कही गई है। ज्ञानी और अज्ञानी का भेद पूर्णिमा और अमावस्या, आकाश और पाताल, हिमालय और परमाणु से भी अधिक है। अज्ञानी लोग भटकते रहते हैं। उन्हें ज्ञान के प्रकाश में अन्धकार ही दिखाई पड़ता है, परन्तु ज्ञानी अन्धकार में भी ज्ञान की कल्पना करता है। जैन दर्शन की दृष्टि व्यापक है। आचारांग सूत्र में आत्मदर्शन की विवेचना करते हुए आत्मा की नित्यता-अनित्यता पर प्रकाश डाला है। उसकी सिद्धि के लिए विविध प्रमाणों का आश्रय लिया है। लोक के स्वरूप को सिद्ध करने के लिए लोक के अस्तित्व का विवेचन किया है। क्रियावादी और अक्रियावादी, कर्मवादी और अज्ञानवादी के विचारों को आचारांग में प्रतिपादित किया गया है।

“जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।

जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ।”<sup>२०</sup>

अर्थात् जो एक को जानता है वह सब को जानता है। जो सब को जानता है वह एक को जानता है।

उक्त सूत्र में एकता और अनन्तता का समन्वय प्रस्तुत किया गया है। जैन दर्शन में वस्तु अनन्त धर्मात्मक मानी गई है। दीपक से लगाकर आकाश पर्यन्त सभी प्रदार्थ अनन्त धर्म से युक्त हैं। इसलिए आचारांग सूत्रकार ने इस सूत्र द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि अनन्त धर्मात्मक वस्तु को पूर्ण रूप से जान लेने का अर्थ है सारे संसार के पदार्थों को जान लेना। उपनिषदकार एक ब्रह्म-तत्त्व को परम-तत्त्व मानते हैं। जो ब्रह्म तत्त्व को जान लेता है वह विश्व के समस्त अज्ञात पदार्थों को जान लेता है।<sup>२१</sup> ब्रह्म सबका कारण है। इसलिए वह सत् है और उसके जान लेने से समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान हो जाता है।<sup>२२</sup>

“जे एगं नामे से बहुं नामे। जे बहुं नामे से एगं नामे।”<sup>२३</sup>

जो एक को नष्ट करता है वह अनेक को नष्ट करता है और जो अनेक को नष्ट करता है वह एक को नष्ट करता है। इसी तरह सम्यक्त्व अध्ययन में कर्म बन्धन

कि जो आश्रव के हेतु हैं वे कर्म की निर्जरा के हेतु ही हो सकते हैं और जो कर्म की निर्जरा के हेतु हैं वे कर्म बन्धन के हेतु भी बन सकते हैं।<sup>२४</sup> लोकसार नामक पञ्चम अध्ययन में आत्मा की यथार्थता का परिचय देते हुए यह कथन किया है कि जो आत्मा है, वही विज्ञाता है, जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जिसके द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना जाता है वही आत्मा की प्रतीति होती है जो आत्मा और ज्ञान के इस सम्बन्ध को जानता है वही आत्मवादी है।<sup>२५</sup> छठे धूत अध्ययन में दुःख और कर्म का कार्य-कारण भाव प्रदर्शित किया गया है। उसमें यह कथन किया गया है कि सृष्टि का समस्त कारण कर्म है। ईश्वर को इसका कारण मानना उचित नहीं है।<sup>२६</sup>

आठवें मोक्ष अध्ययन में जैन धर्म की विश्वव्यापक दृष्टि का विवेचन सूक्ष्म तत्त्वों की ओर आकर्षित करता है। सूत्रकार ने क्रियावादी अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी आदि दार्शनिकों की परम्पराओं का निराकरण करने के लिए—

अत्थिलोए	(वेदान्त का एक पक्ष द्वैतमत)
नत्थलोए	(चार्वाक मत भूत चैतन्यवादी मत)
धुवे लोए	(लोक नित्य ही है—सांख्य दर्शन)
अधुवे लोए	(लोक अनित्य ही है—बौद्ध दर्शन)
साइए लोए	(इस लोक की सादि परम्परा है)
अणाइए लोए	(लोक अनादि है—संख्य मत)
सपज्जवसिए लोए	(लोक सान्त है)
अपज्जवसिए लोए	(लोक अपर्यवसित है—इस लोक का सर्वथा नाश नहीं होता है <sup>२७</sup> )

इस तरह आचारांग-सूत्र में आचार मीमांसा के प्रतिपादन के लिए विविध दर्शन, मत, सम्प्रदाय एवं धर्मों की मान्यताओं का कथन आचारांग की दार्शनिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करता है। जैन-दर्शन का स्याद्वाद एवं अनेकान्तवाद का समग्र दृष्टिकोण आचारांग सूत्र की सूत्र शैली में सर्वत्र देखा जा सकता है। यह निर्विवाद है कि जो भी कथन प्रतिपादन आचारांग सूत्र में किया गया है वह सब अनेक दार्शनिकों के दर्शन चिंतन के साथ शोध की अपेक्षा रखते हैं। इस पर स्वतंत्र रूप से ही दार्शनिक विवेचन नई दिशा प्रदान कर सकता है।

### आचारांग वृत्ति की दार्शनिक पृष्ठभूमि—

आचारांग सूत्र के सूत्रों पर वृत्तिकार ने विवेचन के लिए चार प्रकार की शैली को अपनाया है—

१. नय-शैली, २. निक्षेप-शैली, ३. प्रमाण-शैली, ४. भंग-शैली

आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी दृष्टि को आचारांग सूत्र में प्रतिपादित किया है। वृत्तिकार ने आत्मा की सर्वव्यापी, नित्य, क्षणिक और अकर्ता रूप मान्यता को खुलासा करने के लिए चार्वाक की अनात्म दृष्टि, वैशेषिक दर्शन की सर्वव्यापी दृष्टि, बौद्ध की क्षणिकवादिता की एकान्त क्षणिकवाद आदि का निराकरण करके स्वमत का विवेचन किया है। सांख्य-दर्शन के अकर्तृत्ववाद का निराकरण करते हुए अपनी आत्मदृष्टि को प्रतिपादित किया है। उन्होंने कहा है कि आत्मा ज्ञान है, ज्ञान आत्मा है। जो आत्मवादी है, वही सच्चा कर्मवादी है और क्रियावादी है।<sup>32</sup> आत्मा के विविध पक्षों को प्रतिपादित करते हुए वृत्तिकार ने चार्वाक के मत का भी निराकरण किया है। उन्होंने कहा कि चार्वाक का पृथ्वी आदि भूतों को स्वीकार करना उचित नहीं है; क्योंकि पृथ्वी आदि भूतों के गुण और हैं और आत्मा के गुण अन्य हैं। असाधारण गुणों की भिन्नता भिन्न वस्तु को सिद्ध करती है। यदि भूतों से चैतन्य की उत्पत्ति मान ली जाए तो किसी भी अवस्था में उसकी मृत्यु नहीं हो सकती है; क्योंकि मृतक शरीर में भी पाँचों भूत तत्त्व पाये जाते हैं।<sup>33</sup> गीता में आत्मा को नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन माना है। उसमें भी प्रतिपादित किया गया है कि आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकता है, अग्नि जला नहीं सकती है, पानी गला नहीं सकता है और हवा सुखा नहीं सकती है।<sup>34</sup> आत्मा की इसी दृष्टि को वृत्तिकार ने प्रतिपादित करते हुए कहा है कि तत्त्वज्ञान जीवन का उद्देश्य है। जीवन पुनः-पुनः प्राप्त न हो ऐसा पुरुषार्थ करें। आहार के लिए अनिन्दनीय कार्य करें; क्योंकि आहार प्राण धारण करने के लिए है। प्राणों को धारण करना तत्त्व ज्ञान के लिए है और तत्त्वों का ज्ञान इसलिए करें कि पुनः जन्म-मरण न करना पड़े।<sup>35</sup> सच्चा आत्मस्वभावी साधक आत्मा का स्वरूप सच्चिदानन्दमय समझता है। उसकी आत्मा शाश्वत, चैतन्यमय और आनन्द का सागर है।<sup>36</sup> आत्मा को सूत्रकार ने मित्र और अमित्र भी कहा है।<sup>37</sup> आत्मा ही अपना मित्र है, पारमार्थिक, एकान्तिक और अत्यधिक उपकार करने वाला है।<sup>38</sup> आत्मा मित्र है। यदि वही आत्मा अशुभ परिणति से युक्त हो जाता है तो वह अमित्र बन जाता है। शुभ और शुद्ध परिणति के कारण वही आत्मा मित्र बन जाता है। बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ “धम्मपद” में कहा गया है कि आत्मा ही स्वयं अपना नाथ है और आत्मा के अतिरिक्त तारने वाला दूसरा कोई नहीं है। जिस प्रकार कोई व्यापारी अपने उत्तम घोड़े का संयमन करता है उसी प्रकार हमें अपने आत्मा का संयमन करना चाहिए।<sup>39</sup>

आत्मा के विषय में वृत्तिकार ने विस्तृत विवेचन करते हुए जैन दर्शन की दृष्टि को प्रतिपादित किया है। सांख्य दर्शन ने आत्मा को अकर्ता माना है और साथ

ही कर्म फल का भोक्ता माना है।<sup>३७</sup> यह कथन सांख्य का तर्क-संगत नहीं है। नैयायिक और वैशेषिक ज्ञान को आत्मा का स्वरूप नहीं मानते। उनके मत के अनुसार ज्ञान भिन्न वस्तु है और आत्मा भिन्न वस्तु। वे ज्ञान और आत्मा को सर्वथा भिन्न मानते हैं। यह कथन युक्ति-संगत नहीं है, क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। सामान्य विशेष से जो जानता है या अनुभव करता है वह आत्मा है, आत्मा से भिन्न ज्ञान नहीं है इसलिए आत्मस्वरूप ज्ञान है।<sup>३८</sup>

परवादियों के मत पर विचार करते हुए वृत्तिकार ने हिंसा, अहिंसा, देवी, देवताओं की मान्यताओं आदि की प्रसंगिक चर्चा करते हुए उनके मत का निराकरण किया है। मीमांसक ने वेद विहित हिंसा को धर्म का कारण माना है, क्योंकि इससे देवता और अतिथियों की प्रीति प्राप्त होती है। यज्ञ आदि करने से वृष्टि होती है। अश्वमेध यज्ञ, गोमेधयज्ञ और नरमेध यज्ञ करने से देवता प्रसन्न होते हैं। इत्यादि मान्याताएँ वेद विचारधारा वालों की हैं। वे ठीक नहीं हैं। जो इस प्रकार की हिंसा करते हैं या हिंसा का प्रतिपादन करते हैं, वे अनार्य हैं। इससे पाप का कारण बनता है। वे पाप के अनुबन्धी हैं। ये धर्मग्रन्थ और परलोक के विरुद्ध कार्य हैं।<sup>३९</sup>

इसी प्रसंग में वैशेषिक मत का यह कथन प्रस्तुत किया गया है कि द्रव्य आदि षट् पदार्थों के परिज्ञान से मोक्ष होता है। बौद्धमत की अनात्मवादी दृष्टि एवं क्षणिकवाद तथा मीमांसक का मोक्ष सम्बन्धी कथन भी चतुर्थ अध्ययन के दूसरे उद्देशक में प्रसंगानुसार प्रतिपादित किया है। बौद्धमत सम्बन्धी यह विचारधारा भी प्रस्तुत की गई है कि प्राणी का ज्ञान, उसे मारने का संकल्प एवं चेष्टा तथा प्राणियों का जिससे घात हो, वह हिंसा है। जब तक प्राणी को ज्ञान न हो या ज्ञान हो जाने पर उसे मारने की भावना न हो, और भावना हो जाने पर भी तदरूप चेष्टा न की हो और चेष्टा करने पर भी जीव न मरा हो तो वह हिंसा नहीं है।<sup>४०</sup> ऐसे विचारों पर जैन दर्शन की स्यादवाद दृष्टि की उपादेयता सामने आती है जिसमें किसी मत, सम्प्रदाय या दर्शन पर आक्षेप न करके सर्वदर्शी की भावना को प्रकट किया है। वृत्तिकार ने अहिंसा की सूक्ष्मता का प्रतिपादन करने के लिए विविध दार्शनिकों के मतों को रखते हुए यही विचार व्यक्त किया है कि प्राणीमात्र हित चाहता है। इसलिए मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति को रोककर द्रव्य हिंसा तथा राग-द्वेष, मोह की क्रियाओं को रोककर भाव हिंसा का परित्याग श्रेयस्कर है।

१. अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालतः। (जीव स्वतः नित्य है काल से)
२. अस्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतः। (जीव स्वतः अनित्य है काल से)
३. अस्ति जीवः परतो नित्यः कालतः। (जीव परतः नित्य है काल से)
४. अस्ति जीवः परतोऽनित्यः कालतः। (जीव परतः अनित्य है काल से)<sup>४१</sup>

उक्त चार भंग जीव के अस्तित्व को काल की अपेक्षा से नित्य और अनित्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। साधक को संसार की असारता को बतलाने के लिए यही पद्धति अपनाई है।

१. जे पुव्वुड्डाई नो पच्छानिवाई। पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती।

२. जे पुव्वुड्डाई पच्छानिवाई। पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती।

३. जे नो पुव्वुड्डाई नो पच्छानिवाई। नो पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती।

४. सेऽपि तारिरिए सिया, नो पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती।<sup>४३</sup>

१. मैंने किया, २. मैंने कराया, ३. मैंने करते हुए को अनुमोदन किया, ४. मैं करता हूँ, ५. मैं करवाता हूँ, ६. मैं करते हुए को अनुमोदन देता हूँ, ७. मैं करूँगा, ८. मैं कराऊँगा, ९. मैं करते हुए को अनुमोदन दूँगा—ये नौ विकल्प दर्शन की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हैं।

प्राण, भूत, जीव और सत्व—ये चार शब्द जीव के ही वाचक हैं। शब्द नय की अपेक्षा से इनके अलग-अलग अर्थ भी किये हैं।

दश प्रकार के प्राणयुक्त होने से—प्राण हैं।

तीनों काल में रहने के कारण—भूत हैं।

आयुष्य कर्म के कारण जीता है—अतः जीव है।

विविध पर्यायों का परिवर्तन होते हुए भी आत्म द्रव्य की सत्ता में कोई अन्तर नहीं आता, अतः सत्व है।<sup>४३</sup> वृत्तिकार शीलाकाचार्य ने निम्न अर्थ किया है—

**प्राण**—द्वीन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव। **भूत**—वनस्पतिक कायिक जीव। **जीव**—पाँच इन्द्रिय वाले जीव—तिर्यच, मनुष्य, देव, नारक। **सत्व**—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु काय के जीव।<sup>४४</sup>

वृत्तिकार ने इस तरह से सम्पूर्ण विषय का प्रतिपादन दर्शन के तत्त्वों पर ही किया। जहाँ जैसी आवश्यकता हुई, उस आवश्यकता के अनुसार दर्शन के विविध पहलुओं को अपनाया गया है। वृत्तिकार ने आचारांग सूत्र की गुत्थियों को दर्शनिक दृष्टि से सतत सुलझाया है।

### जीव तत्त्व का दार्शनिक मूल्यांकन—

जैन आगमों में जीव तत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। जीव के कई लक्षण आगमों एवं सिद्धान्त ग्रन्थों में मिलते हैं। आचारांग सूत्र के शस्त्र परिज्ञा अध्ययन में जीव की विस्तार से विवेचना की गई है। परन्तु जीव क्या है? जीव का स्वरूप क्या है? यह कहीं भी उद्घाटित नहीं हो पाया है। परन्तु जीव अर्थात् आत्मा के विषय में चिन्तन करते कहा गया है कि जीव संज्ञावान होता है। संज्ञा के

अभाव में प्राणियों को यह ज्ञान नहीं होता है कि मेरा आत्मा पूर्व दिशा से आया है या दक्षिण दिशा से या पश्चिम दिशा से या उत्तर दिशा से या अन्य किसी दिशा से आया है।<sup>५५</sup> शीलांक की वृत्ति में विविध प्रकार की संज्ञाओं का विवेचन किया गया है। संज्ञा का अर्थ भी दिया गया है।

संज्ञा का अर्थ है चेतना। वह भी दो प्रकार की है—१. ज्ञान चेतना और २. अनुभव चेतना।<sup>५६</sup> अनुभव चेतना प्रत्येक प्राणी में रहती है। ज्ञान-चेतना विशेष बोध, किसी में कम विकसित होती है और किसी में अधिक विकसित होती है। अनुभव चेतना के १६ भेद गिनाये हैं<sup>५७</sup> और ज्ञान चेतना के ५ भेद किये हैं।

जीव चेतनायुक्त है, भारतीय दर्शन की प्रत्येक परम्परा उसे स्वीकार करती है; किन्तु अतीत और भविष्य के अस्तित्व में सब विश्वास नहीं करते हैं। जो चेतन की त्रैकालिक सत्ता में विश्वास रखते हैं, वे आत्मवादी होते हैं, वे आत्मा या जीव दोनों को एक ही मानते हैं। आत्मा जीव है, चेतनायुक्त है। उपयोग लक्षण वाला है।

शीलांकाचार्य ने जो प्राण को धारण करता है उसे जीव कहा है और उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है कि जो जीवित था, जीवित है तथा आयु कर्म से जीवित रहेगा वह जीव है।<sup>५८</sup> अन्य आगम ग्रन्थों में उक्त व्युत्पत्तिपूर्ण परिभाषा दी गई है। जो चार प्राणों से जीता है या दश प्राणों से जीता है, जियेगा और जो पहले जीता था वह जीव है।<sup>५९</sup> आचार्य हरिभद्र सूरि ने “चेतना लक्षणो जीवः” यह परिभाषा दी है। जिसमें जानने-देखने की शक्ति पाई जाती है वह जीव है।<sup>६०</sup> प्राण, भूत, जीव और सत्व—ये जीव के ही वाचक हैं।

जीव के विषय में आचारांग सूत्र की दृष्टि प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सम्पूर्ण विश्व के जीवों पर केन्द्रित रही है। इसमें वनस्पति, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन पाँच वस्तुओं में जीव की सत्ता स्वीकार करते हुए इनके संरक्षण पर इनके बचने के लिए और इनके स्थायित्व के लिए बार-बार उपदेश दिया गया है। जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा पृथ्वी कर्म आदि की क्रियाओं में संलग्न होकर उनका वध, बन्धन, छेदन, भेदन आदि की क्रियाओं को करते हैं वे अपना ही अहित करते हैं।<sup>६१</sup>

आचारांग के मूल उद्देश्य को ध्यान में रखकर वृत्तिकार ने अपनी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों पर ले जाकर प्राणियों के चेतन स्वरूप का वैज्ञानिक पक्ष भी प्रस्तुत किया है। आगमों में जीवों के चेतन स्वरूप को एकेन्द्रिय तक सीमित करके अपनी बात को समाप्त नहीं कर दिया, अपितु अन्य प्राणी मात्र का विवेचन भी किया है।

आगमों में जीवों के अनेक प्रकार बतलाये हैं, उनमें से दो भेद आचारांग सूत्र और आचारांग वृत्ति में प्रमुख रूप से गिनाये हैं। संसारी जीवों की अपेक्षा जीव



के दो भेद किये गये हैं—१. स्थावर और २. त्रस। इन जीवों के भी प्राणों की दृष्टि से चार से लेकर दस प्राण तक जीवों का विवेचन किया गया है।<sup>५२</sup> योनि की दृष्टि से जीव के भेद अनेक हैं। उनमें वृत्तिकार ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हुए संसारी जीवों के सांसारिक कारणों के आधार पर आठ भेद इस प्रकार दिये हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ, दर्शन, मोहनीय चारित्र—मोहनीय, राग-द्वेष, कषाय और पञ्च इन्द्रिय विषय। लोक की अपेक्षा एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुर इन्द्रिय और पञ्च इन्द्रिय—ये पाँच भेद किये हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव और पर्याय—ये आठ भेद निक्षेप की अपेक्षा से किये गये हैं। स्वभाव की दृष्टि से औपशामिक, क्षायिक, क्षायोपशामिक, औदयिक और पारिणामिक—ये पाँच जीव के स्वरूप हैं।<sup>५३</sup> द्रव्य और भाव की अपेक्षा से जीव के दो भेद किये गये हैं। इस तरह आगमों एवं सिद्धान्त ग्रन्थों में जीव के सामान्य दृष्टि से, योनि की दृष्टि से एवं भव-भाव आदि की अपेक्षा से जीव का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

### जीव की विविध दार्शनिक मान्यताएँ—

जीव चैतन्य स्वरूप है। ज्ञान और दर्शन इसका उपयोग है। यह अपने ज्ञान, दर्शन आदि गुणों से भिन्न भी है और अभिन्न भी। कर्मों के अनुसार वह अनेक जन्मों को धारण करता है। अच्छे-बुरे विचारों से युक्त होता है। उसके फल को भोगता है। इसलिए जीव भेदाभेद की अपेक्षा के लिये हुए हैं। भारतीय दर्शन के सभी विचारकों ने यद्यपि जीव को चैतन्य स्वरूप माना है, फिर भी विविध दार्शनिकों की विविध मान्यताएँ हैं, जिन पर सामान्य विवेचन ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

बौद्ध दर्शन जीव/आत्मा के विषय में मौन है। बौद्ध दर्शन ने आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं किया है। अन्य सभी दर्शनों में जीव/आत्मा की सत्ता को स्वतंत्र रूप से स्वीकार किया है। भौतिकवादी चार्वाक मत चेतन को ही जीव मानता है। उसके अनुसार इन तत्त्वों के समाप्त होने पर भी जीव तत्त्व समाप्त हो जाता है।

वेदान्त दर्शन जीव/आत्मा को ब्रह्म या परम तत्त्व को स्वीकार करता है वह देह स्थित आत्मा को जीव मानता है। आत्मा सच्चित् आनन्दस्वरूप है। जिसके लिए ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है वह परम ब्रह्म स्वरूप आत्मा को प्राप्त हो जाता है।

न्याय दर्शन आत्मा को नित्य एवं व्यापक मानता है। वह चैतन्य को आगन्तुक गुण मानता है। न्याय दर्शन के अनुसार चैतन्य गुण का उद्भव मन एवं शरीर के संयोग होने से होता है। न्याय दर्शन की तरह वैशेषिक दर्शन जीव को इसी रूप से मानता है।

सांख्य दर्शन जीव/आत्मा को पुरुष के रूप में स्वीकार करता है। पुरुष निर्गुण, विवेकी, ज्ञाता, चैतन्यस्वरूप, अपरणामी तथा अक्रिय है। प्रकृति के साथ संयोग होने से आत्म एवं नाना प्रकार की क्रियाओं को प्राप्त करने लगता है।

मीमांसक दर्शन<sup>45</sup> जीव को नित्य, व्यापक एवं अनेक रूप मानता है। मीमांसक दर्शन में आत्मा, चित्त अंश रूप है। अचित्त अंश रूप भी है। जैन दर्शन ने जीव का लक्षण उपयोग किया है। उपयोग, ज्ञान और दर्शन रूप है।

### जीव और आत्मा—

जीव और आत्मा सभी दार्शनिक दृष्टियों से चैतन्यस्वरूप है। जीव को आत्मा या आत्मा को जीव कहा जाता है।

बौद्ध दर्शन आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है, परन्तु पुनर्जन्म आदि को मानता है। वेदान्त दर्शन में आत्मा/जीव को कई दृष्टियों से प्रस्तुत किया है। अविद्या के नाश होने पर आत्मा सत्-चित्त आनन्दरूप होता है और अविद्या के कारण जीव ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाता है। इसलिए वह जीव भिन्न-भिन्न रूप में दिखाई देता है। न्याय एवं वैशेषिक<sup>46</sup> दर्शन इच्छा, द्वेष, प्रत्यन, सुख, दुःख की अनुभूति से आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करता है। सांख्य का आत्मा पुरुष प्रधान है। मीमांसक-दर्शन आत्मा को शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि से भिन्न मानता है। जैन-दर्शन आत्मा और जीव को एक ही मानता है। जीव के अस्तित्व से आत्मा का अस्तित्व है। आत्मा/जीव है और जीव आत्मा है। जीव नाना प्रकार की क्रियाओं के कारण पृथक्-पृथक् है, पर जीव और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है।

### आत्मा और देह—

यह भी एक विचारणीय विषय है। शरीर है इसलिए आत्मा है। आत्मा है इसलिए शरीर है। शरीर से पृथक् आत्मा या जीव का अस्तित्व नहीं होता।<sup>47</sup> सभी दार्शनिक इस बात को स्वीकार करते हैं। अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जाता है कि ज्वर की उष्णता भी जीव संयुक्त शरीर में ही होती है। मृत शरीर में ज्वर की उष्णता नहीं पाई जाती है। अङ्गार आदि का प्रकाश आत्मसंयोगपूर्वक है; क्योंकि वह शरीरस्थ है।<sup>48</sup> आत्मा है और वह आत्मा शरीर में है, मृत शरीर में नहीं है। शरीरगत सुख-दुःख आत्मा की अनुभूति है।

### जीव और ज्ञान—

आत्मा या जीव दोनों एक हैं। जैन दर्शन की दृष्टि से जीव/आत्मा ज्ञान का नाम है अर्थात् ज्ञान आत्मा है और आत्मा ज्ञान है।<sup>49</sup> जबकि अन्य भारतीय दर्शन ऐसा नहीं मानते हैं। वेदान्त दर्शन आत्मा को मानता है और ज्ञान को भी

मानता है परन्तु ज्ञान आत्मा से अलग है। न्याय दर्शन ज्ञान को आगन्तुक गुण मानता है अर्थात् उसका कहना है कि आत्मा ज्ञान का अधिकरण/आश्रय है।<sup>148</sup>

न्याय एवं वैशेषिक-दर्शन की तरह सांख्य-दर्शन भी ज्ञान को आगन्तुक गुण मानता है। मीमांसक-दर्शन का कथन है कि आत्मा ज्ञान का अनुभव करता है। इस तरह ज्ञान के विषय में भारतीय दर्शन की अपनी-अपनी दृष्टि है।

### जीव की प्रामाणिकता—

जीव है, इस बात को सभी दर्शन स्वीकार करते हैं। इसकी सिद्धि के लिए आगम प्रमाण, आगम अनुमान प्रमाण, स्मृति, तर्क, प्रत्यभिज्ञान आदि के द्वारा सिद्ध करते हैं। जीव नित्य है, शाश्वत है, उपयोगस्वरूप है, कर्ता है, भोक्ता है, शरीर प्रमाण है, अमूर्तिक है, संसार में रहता है संसार से मुक्त होता है और मुक्त होने के कारण वह जीव ऊर्ध्वगमन को प्राप्त होता है। अहं या अन्य किसी न किसी रूप में जीव है, उसका निषेध नहीं किया जा सकता है।

### जीव की व्यापकता—

जीव के भेद एक से लेकर कई किये गये हैं।<sup>149</sup> पृथ्वी से लेकर सम्पूर्ण स्थावर काय तक वह एकेन्द्रिय रूप में है तथा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी की अपेक्षा से भी जीव भेद आगमों में गिनाये जाते हैं। दो इन्द्रिय आदि जीवों की व्यापकता कहाँ-कहाँ तक है और किस रूप में है इन सभी का उल्लेख भी आगमों में किया जाता है।<sup>150</sup> संज्ञी जीव भी कई प्रकार के होते हैं। मनुष्य, तिर्यच, देव और नारकी आदि मोटे रूप में संज्ञी हैं। अन्य भारतीय दर्शनों में भी इन सभी की व्यापकता का विवेचन है। ये लोक में सर्वत्र हैं। जहाँ तक गति है, वहाँ तक जीव जाता है। लोक अन्तिम लोकाकाश तक इसका स्थान है। वहाँ तक ही इसकी स्थिति है।

### जीव की नित्यता—

जीव नित्य है; क्योंकि वह किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है। परन्तु केवल नित्य या अनित्य का कथन जैन दर्शन की दृष्टि में नहीं है। जैन दर्शन की दृष्टि से जीव किसी अपेक्षा से नित्य है और किसी अपेक्षा से अनित्य है।<sup>151</sup> जीव नित्य ही नहीं है, या अनित्य ही नहीं है। वह तो नित्य भी है—सभी पर्यायों की अपेक्षा से और अनित्य भी है एक पर्याय से दूसरी प्राप्ति के कारण।

### जीव की अनादिनिधनता—

जैन दर्शन जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन छः द्रव्यों के समुदाय को संसार या विश्व या लोक कहता है। कोई भी द्रव्य कम नहीं हो सकता। सभी का अपना अस्तित्व है। जीव की अनादिनिधनता के साथ

अजीव द्रव्य का भी अनादिनिधनपना सिद्ध होता है। जीव और अजीव के संयोगी तत्त्व, धर्म-द्रव्य और अधर्म-द्रव्य हैं। इन द्रव्यों के कारण ही जीव और पुद्गल गति या विराम को प्राप्त करते हैं। गति और विराम होने पर आत्मा को या अजीव द्रव्य को स्थान भी चाहिए इसलिए स्थान प्रदान करने वाला द्रव्य आकाश ही काल की क्रिया, अपनी गति और स्थिति को इन्हीं द्रव्यों के होने पर बनाये रखता है।

### जीव की विविध प्रमाणों से पुष्टि—

जीव का अस्तित्व अनेक प्रमाणों से सिद्ध है। जीव स्वसंवेदन रूप है, और स्वसंवेदन आत्मा का गुण है। मैं हूँ, इसमें “मैं” शब्द आत्मा के लिए प्रयुक्त होता है। यदि यह कहा जाए कि “मैं” शब्द आत्मा की नहीं, अपितु शरीर की पुष्टि करता है तो यह कथन तर्क-संगत नहीं है, क्योंकि मैं शरीर हूँ, ऐसा प्रयोग किया ही नहीं जाता है। बल्कि यह कहा जाता है कि मेरा धन है, वह मेरा शरीर है। शरीर का अधिष्ठाता आत्मा है। यह प्रमाण द्वारा सिद्ध है।<sup>६४</sup>

अनुमान द्वारा भी जीव की सिद्धि की जाती है। इस शरीर को ग्रहण करने वाला कोई न कोई द्रव्य है, क्योंकि यह शरीर कफ, रुधिर अङ्गोपाङ्ग आदि का अन्न आदि की तरह परिणाम मात्र है। जैसे अन्न को ग्रहण करने वाला भी कोई द्रव्य है। वही द्रव्य जीव तत्त्व है, या आत्म तत्त्व है।<sup>६५</sup>

### पृथ्वीकाय आदि में जीव—

जीव/आत्मा के अस्तित्व की तरह पृथ्वीकाय जीव, जलकाय जीव, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय में भी जीव हैं। इस जगत में कई प्रकार के जीव हैं। सभी चैतन्य हैं। जिस तरह मनुष्य का जीव नाना प्रकार के कर्मादय से छोटे-बड़े आकार को ग्रहण करता है, उसी तरह पृथ्वी, जल आदि सूक्ष्म जीवों की भी नाना प्रकार की आकृति है। अतः वे सभी चैतन्य सम्पन्न हैं।<sup>६६</sup>

वृत्तिकार ने सर्वत्र पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि के विषय को प्रतिपादित करते हुए उसकी चेतना का भी विवेचन, प्रमाण, नय, निक्षेप आदि की दृष्टि से प्रतिपादन किया है। कई विचारक जलकाय को चेतनाशून्य मानते हैं। उसका अपलाप करते हैं। दूध, घी की तरह उसका विवेचन करते हैं। जिस तरह घी, दूध चेतना रहित होते हैं उसी तरह जल भी चेतनारहित है। उनका यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि उपकरण मात्र से वे अजीव हो जाते हैं तो हाथी आदि की भी सवारी के उपकरण हैं इसलिए वे भी उचित होने चाहिए; किन्तु वे सचेतन हैं उसी तरह जलकाय उपकरण होने पर भी सचेतन है।

जिस प्रकार नवीन गर्भ में उत्पन्न हाथी का शरीर कलल अवस्था में द्रव रूप होता है। किन्तु वह सचेतन है, उसी तरह द्रव रूप जल भी सचेतन है। सात दिन तक हाथी का शरीर गर्भ में कलल रूप रहता है। बाद में उसमें कठोरता आती है। तो सात दिन तक कलल जिस तरह सचित समझा जाता है उसी प्रकार द्रव्यात्मक जलकाय को भी सचित समझना चाहिए तथा जिस प्रकार अण्डे में रहा हुआ पानी सचित है उसी तरह जल भी सचित है।<sup>६७</sup>

अनुमान से जल की प्रामाणिकता सिद्ध की गई है। चार्वाक पञ्चभूत तत्त्वों को मानता है। वह पञ्च भूतात्मक शरीर में ही चैतन्य गुण मानता है। इसके अतिरिक्त वह कुछ नहीं मानता है। यह कथन ठीक नहीं है; क्योंकि पञ्चभूत स्वयं जड़ हैं। अतः वे चैतन्य कैसे हो सकते हैं।<sup>६८</sup>

### जीव का नय दृष्टि से विवेचन—

नय के कई भेद किये जाते हैं। आचार्य शीलांक ने षड्काय जीव के विवेचन को नय दृष्टि से भी प्रतिपादित किया है। उन्होंने इसी दृष्टि से ज्ञान नय और चरण नय—इन दो नयों का विवेचन करके जीव के अस्तित्व का विवेचन किया है। समन्वय के आधार पर जीव सम्बन्धी दो अध्यवसाय निर्मित होते हैं<sup>६९</sup>—१. जीव है—यह अभेद प्रधान अध्यवसाय है। २. जीव ज्ञानवान है—यह भेद प्रधान अध्यवसाय है।

जीव में चैतन्य नाम का विशिष्ट गुण होता है जो अजीव में नहीं पाया जाता है। प्रत्येक जीव में अनन्त धर्म होते हैं, जिनका विवेचन नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ तथा भूतनय—इन सात नयों की अपेक्षा से जीव का विवेचन किया जाता है।<sup>७०</sup>

### जीव का प्रमाण की दृष्टि से विवेचन—

चैतन्य जीव का स्वभाव है। ज्ञान आत्मा का गुण है। इसलिए वह ज्ञान को प्रमाण मानता है। अज्ञान के अभाव से ज्ञान की उपलब्धि होती है। इसलिए ज्ञान प्रमाण है। जीव ज्ञान है और ज्ञान आत्मा है, आत्मा से पृथक् नहीं है। अतः प्रमाण से भी जीव है।<sup>७१</sup>

### जीव की निक्षेप व्यवस्था—

वृत्तिकार ने सम्पूर्ण विवेचन को निक्षेप पद्धति पर केन्द्रित करके समग्र विवेचन को प्रस्तुत किया है। निक्षेप विशिष्ट शब्द प्रयोग की पद्धति है। जैसे—नाम जीव, स्थापना जीव, भाव जीव, इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि नाम मनुष्य, स्थापना मनुष्य द्रव्य मनुष्य और भाव मनुष्य।<sup>७२</sup> जीव है, जीव रहेगा या जीव था—यह सब जीव के नाम आदि निक्षेप का कथन करता है।

सत्—

सत् की अपेक्षा में सत्ता सभी जीवों में पाई जाती है। सम्यक्त्व गुण केवल अन्य जीवों में ही पाया जाता है। सत् संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प बहुत्व से भी जीव का विवेचन किया जाता है। सत् सभी पदार्थों की होती है। इसलिए जीव की संज्ञा है।

**द्रव्य गुण और पर्याय—**

“गुणपर्यायवद् द्रव्यम्”<sup>७३</sup>

अर्थात् द्रव्य गुण पर्याय वाला है। वृत्तिकार ने द्रव्य, गुण और पर्याय का विवेचन करते हुए कथन किया है कि द्रव्यों के आश्रित गुण और पर्याय होते हैं। द्रव्य में जो परिणाम शक्ति पाई जाती है, वह गुण कहलाता है। और गुण जन्य परिणाम पर्याय कहलाता है। गुण कारण है, और पर्याय कार्य है। द्रव्य पर्याय को छोड़कर नहीं रह सकता है। इसलिए द्रव्य उत्पाद, स्थिति और भंग इन तीन रूप है।<sup>७४</sup> द्रव्य गुण और पर्याय का भेद और अभेद की अपेक्षा से भी वृत्तिकार ने विस्तार से विवेचन किया है।

**उत्पाद, व्यय और भंग—**

जीव या अजीव दोनों ही द्रव्य उत्पाद, स्थिति और भंग रूप हैं। जीव किस पर्याय में है और किस पर्याय को प्राप्त होगा, यही उत्पाद, स्थिति और भंग रूप व्यवस्था प्रत्येक वस्तु के साथ घटित होती है। बालर्क ने जन्म लिया, यह बालक रूप जन्म, जीव का उत्पत्ति होना और जिस पर्याय से आया है, वह भंग रूप जीव है। जीव था, जीव है और आगे भी रहेगा, यह जीव की स्थिति है।

जीव या आत्मा के विषय में विविध दार्शनिकों के विचार प्रस्तुत किये गये। उनसे यह स्पष्ट होता है कि जीव कई रूप में है, उसके कई भेद हैं। उसमें ज्ञान गुण भी पाया जाता है। जैन दार्शनिक दृष्टि में जीव चैतन्य है, उसका गुण ज्ञान है। यह ज्ञान गुण आगन्तुक गुण नहीं है अपितु आत्मा का निज स्वभाव है। शीलाकाचार्य ने अपनी वृत्ति में जीव के विषय को विभिन्न रूपों में घटित करके उसकी सिद्धि की है। जीव के विभाजन को गुणों की अपेक्षा सामान्य-विशेष अवयव-अवयवी उत्पाद स्थिति भंग भेद एवं अभेद आदि की दृष्टि से भी उसका विवेचन किया है। गुण की अपेक्षा से भी उसका विवेचन करते हुए जीव के कई गुण प्रस्तुत किये हैं। उन गुणों के अनुसार उनका विस्तृत विवेचन भी आचारांग वृत्ति में किया गया है—(१) क्षेत्र गुण, (२) काल गुण, (३) फल गुण, (४) पर्यव गुण, (५) गणना गुण, (६) करण गुण, (७) अभ्यास गुण, (८) गुणागुण, (९) अवगुण, (१०) भवगुण, (११) शीलगुण, (१२) भाव गुण।<sup>७५</sup> भाव गुण की अपेक्षा से औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक<sup>७६</sup> दृष्टि से जीव का विवेचन किया गया है।

संसार की अपेक्षा से भी शीलांकाचार्य ने जीव के विवेचन को कई रूपों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने ज्ञान और दर्शन इन दो उपयोग को ही आधारभूत विषय बनाकर जीव का वर्णन किया है। ज्ञान की दृष्टि से पाँच ज्ञान और कर्म की दृष्टि से बन्ध योग जीवों के प्रकाशों का भी उल्लेख किया है।<sup>१७</sup> कषाय का आदि की दृष्टि से भी जीव का विवेचन प्रस्तुत किया है।<sup>१८</sup> प्रमाण, नय, निक्षेप आदि को दार्शनिक दृष्टि से विषय की गंभीरता को प्रकट करने के लिए आधार बनाया गया है।

### लोक-व्यवस्था—

लोक शब्द का अर्थ है—संसार या जगत। इस विषय में दार्शनिकों का अपना-अपना मत है। सभी ने संसार को किसी ने किसी रूप में अवश्य माना है। बौद्ध-दर्शन में दुःख तत्त्व की प्रधानता है। संसारी स्कन्ध का नाम दुःख है।

पाँच स्कन्धों से संक्षरण होता है। विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप ये सभी एक स्थान से दूसरे स्थान को तथा एक भव से दूसरे भव को जाते हैं। अतः संक्षरण धर्मा यह संसार है।<sup>१९</sup> न्याय, वैशेषिक-दर्शन जगत को कर्त्तव्य रूप में स्वीकार करते हैं, उनका कहना है कि दृश्यमान जगत ईश्वर के द्वारा बनाया गया है। इस चर-अचर रूप जगत का निर्माण तथा उसका संहार ईश्वर द्वारा होता है। जैसे—पृथ्वी, पर्वत, चन्द्र, सूर्य, समुद्र, घट आदि किसी न किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाए गए हैं। इसी तरह जगत भी बनाया है।<sup>२०</sup> सांख्य और योग दर्शन जगत को मानते हैं। वे इसे संसरण रूप कहते हैं। संसार जन्म और मरण रूप है।<sup>२१</sup> इसी तरह अन्य दर्शन भी इस विषय में अपने विचार व्यक्त करते हैं।

जैन-दर्शन की दृष्टि से जगत छः द्रव्यों का समुदाय है। अर्थात् जहाँ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन छः द्रव्यों का समुदाय है वह जगत है, विश्व या लोक इसी को कहते हैं। जैन दर्शन का जगत किसी ईश्वर द्वारा नहीं बनाया गया है, वह स्वतःसिद्ध है। जीव और अजीव द्रव्यों के साथ धर्म-अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्यों का भी अस्तित्व रहता है। इनमें से एक भी द्रव्य के अभाव होने पर संसार नहीं रहेगा।

### लोक का स्वरूप—

“लोकयतीति लोकः”<sup>२२</sup>

अर्थात् जहाँ द्रव्य आदि का अवलोकन किया जाता है उसे लोक कहते हैं। आकाश के जितने प्रदेश हैं, जीव पुद्गल आदि षड्द्रव्यों का जहाँ अवलोकन होता है वहाँ तक लोक होता है। अर्थात् षड्द्रव्यों के समुदाय को लोक कहते हैं। आचारांग सूत्र के लोक विषय अध्ययन में जीव के अस्तित्व की तरह लोक के अस्तित्व को स्वीकार करने के उपरान्त लोक का एक नया ही स्वरूप प्रतिपादित किया है।

जो शब्द आदि के विषय हैं, वे संसार के मूल कारण हैं। जो संसार के मूल कारण हैं, वे विषय हैं। मेरी माता, मेरे पिता, मेरे भाई, मेरी बहिन, मेरी पत्नी, मेरी पुत्री, मेरी पुत्रवधू, मेरे मित्र, मेरे स्वजन, मेरे कुटुम्बी, मेरे परिचित, मेरे हाथी-घोड़े-मकान आदि साधन, मेरी धन-सम्पत्ति, मेरा खानदान, मेरे वस्त्र आदि सभी प्रपञ्च मेरे हैं। इस तरह की आसक्ति का नाम लोक है।<sup>१३</sup> माता-पिता आदि का सम्बन्ध बाह्य लोक है। बाह्य लोक से आसक्ति ममता, स्नेह, वैर, अहंकार आदि जो भाव उत्पन्न होता है, वह आभ्यन्तर संसार है। इस तरह यह संसार दो प्रकार का है। द्रव्य संसार और भाव संसार की अपेक्षा से भी संसार के दो भेद किये गये हैं।

वृत्तिकार ने लोक को प्राणियों का समूह भी कहा है, इसलिए उन्होंने “लोक” प्राणिगणः ऐसे शब्द का प्रयोग किया है।<sup>१४</sup> एक, दो, तीन, चार और पञ्चेन्द्रिय जीव राशि का जहाँ स्थान है, उसे भी लोक कहा है।<sup>१५</sup>

### लोक का महत्त्व—

जैन, वैदिक और बौद्ध दर्शन आदि ने लोक को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह आज के आधुनिक वैज्ञानिकों को भी मान्य हैं। सभी की मान्यताएँ भिन्न-भिन्न होती हुई भी कुछ अंशों में मिलती हैं।

### लोक का आकार-प्रकार—

जैन और वैदिक भूगोल काफी अंशों में मिलता है। विष्णु पुराण में चूड़ी के आकार का लोक बतलाया है। जो एक द्वीप से अन्य द्वीप की अपेक्षा विस्तार वाले हैं। बौद्ध मत में भी जिस लोक की कल्पना की गई है वह भी वलयाकार ही है।<sup>१६</sup> जैन दर्शन में इसे ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक और अधोलोक के रूप में विभाजित कर इसका आकार वलयाकार बतलाया है।

आचारांग वृत्तिकार ने लोक अर्थात् संसार के विषय में अलग-अलग दृष्टि से प्रकाश डाला। भेद की उपेक्षा से उसके दो भेद किये हैं—द्रव्य लोक और भाव लोक। सम्बन्ध की अपेक्षा से बाह्य संसार और आभ्यन्तर संसार—ये दो भेद किये हैं। द्रव्य क्षेत्र, काल, भव और भाव की अपेक्षा से संसार के पाँच भेद किये हैं।<sup>१७</sup> कर्म की अपेक्षा से द्रव्य कर्म और भाव कर्मरूप संसार माना है। कषाय की अपेक्षा से चार प्रकार का संसार माना है।<sup>१८</sup> इस प्रकार संसार अर्थात् लोक के विषय में वृत्तिकार ने लोक विजय अध्ययन में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

लोक अर्थात् विश्व छः द्रव्यों के समुदाय को माना गया है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये छः द्रव्य सभी आगमों में प्रतिपादित किए गए हैं। जीव चैतन्य युक्त है। उसकी नाना योनियाँ हैं। अजीव अर्थात् पुद्गल



अमूर्त है। रूप, रस, गन्ध, वर्ण, स्पर्श इनमें पाया जाता है। इसका स्वभाव गलना, मिलना, मिटना आदि रूप है। धर्म, द्रव्य, जीव और पुद्गलों को चलने में सहायक है और अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गल को स्थिति प्रदान करता है। आकाश द्रव्य स्थान देता है और काल परावर्तन में कारण बनता है। लोक की शाश्वत स्थिति है। उसका कभी विनाश नहीं होता है। कोई भी द्रव्य कम नहीं होता है। सभी एक दूसरे के उपकार को करने वाली हैं अर्थात् जैन दर्शन में लोक का उक्त स्वरूप भी है। वृत्तिकार ने लोक विजय अध्ययन में जीव तत्त्व की प्रधानता को ध्यान में रखकर उसका विवेचन किया है।

### प्रमाण—

सभी दार्शनिक प्रमाण को किसी न किसी रूप में अवश्य मानते हैं। जैन दर्शन परम्परा में “स्व-परावभासी ज्ञान” को प्रमाण बतलाया है।<sup>८९</sup> आचार्य सिद्धसेन ने यही परिभाषा दी है। उन्होंने कहा है जो स्व-पर-प्रकाशी और बाध वर्जित ज्ञान है वह प्रमाण है। अर्थात् जिसके द्वारा अर्थ का ज्ञान हो, वह प्रमाण है। संशय और विपर्यय प्रमाण नहीं हैं।

बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, वैशेषिक आदि दार्शनिकों ने प्रमाण सम्बन्धी परिभाषा दी है। बौद्ध-दर्शन में अविस्मृति ज्ञान को प्रमाण माना है।<sup>९०</sup> नैयायिकों ने अर्थोपलब्धि के हेतु को प्रमाण माना है।<sup>९१</sup> पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री ने जैन न्याय में प्रमाण के विविध लक्षणों के बाद सम्यक् ज्ञान को प्रमाण कहा है।<sup>९२</sup>

वृत्तिकार शीलाकाचार्य ने प्रमाण को सम्यक् माना है।<sup>९३</sup>

### प्रमाण का फल—

जैन दर्शन ज्ञान को प्रमाण का फल माना गया है। वृत्तिकार ने ज्ञान के विविध सकल पदार्थों का ज्ञान कराने वाला कहा है।<sup>९४</sup> यह अज्ञान की निवृत्ति में कारण होता है। इसलिए ज्ञान को प्रमाण का फल माना गया है।

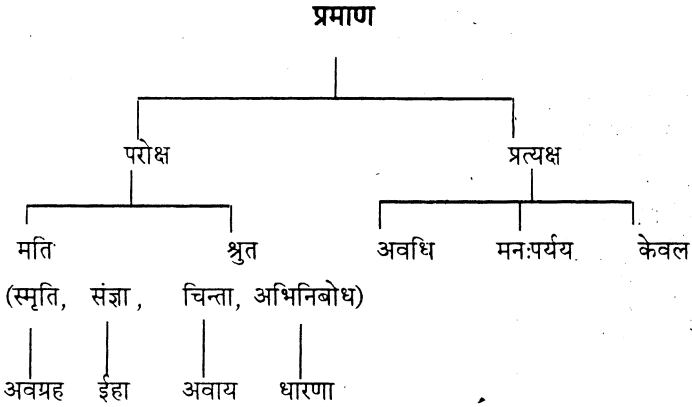
### प्रमाण के भेद—

मूलतः प्रमाण के दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष।<sup>९५</sup> अन्य दार्शनिकों ने प्रमाणों के भेद इस प्रकार माने हैं। मीमांसक ने—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) आगम, (४) उपमान, (५) अर्थापत्ति और (६) अभाव—ये छः भेद माने हैं। नैयायिक ने (१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान और (३) शब्द—इन तीन प्रमाणों को माना है। वैशेषिक और बौद्ध दो प्रमाण मानते हैं—(१) प्रत्यक्ष और (२) अनुमान, तथा चार्वाक एक प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानता है।<sup>९६</sup>

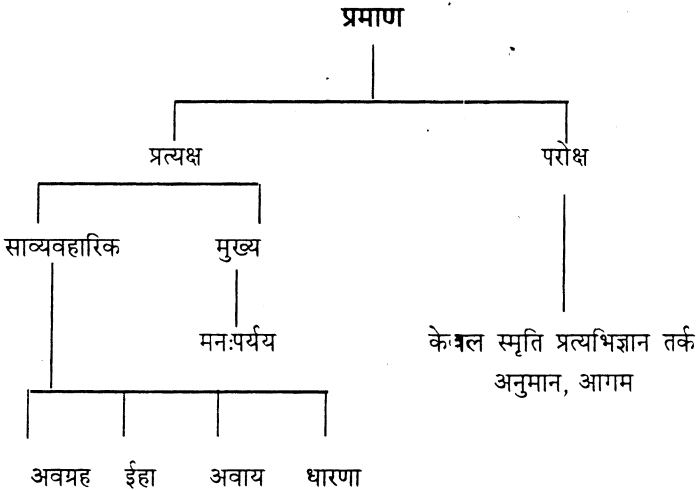
वृत्तिकार शीलाकाचार्य ने भी प्रमाण के दो भेद किये हैं—(१) प्रत्यक्ष प्रमाण और (२) परोक्ष प्रमाण।<sup>९७</sup> पृथ्वीकाय के विवेचन में वृत्तिकार ने प्रत्यक्ष और परोक्ष

शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने यह कहा है कि व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया का परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से अवश्य दूसरे पर असर पड़ता है। प्रत्यक्ष ज्ञान और परोक्ष ज्ञान—ये दो शब्द प्रयोग किये हैं।<sup>१८</sup>

मति, श्रुत, अवाधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान—ये पाँच ज्ञान ही प्रमाण हैं।<sup>१९</sup> इनमें से आदि के दो ज्ञान परोक्ष हैं और शेष तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं। इसके अतिरिक्त मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध भी प्रमाण के विषय हैं। इन प्रमाणों के भेदों को निम्न रेखांकित चित्र से समझा जा सकता है।



प्रमाण का एक अन्य रेखांकित चित्र



## प्रामाण्य और अप्रामाण्य—

जैन दर्शन में परतःज्ञान को अन्यास दशा कहा गया है और श्रुतः ज्ञान को अभ्यास दशा माना गया है। प्रामाण्य और अप्रामाण्य की उत्पत्ति इन दोनों से ही होती है। प्रामाण्य ज्ञान अविश्वस्यवादि होता है। अप्रामाण्य ज्ञान विश्वस्यवादि होता है।

प्रमाण वस्तु के अनेक अंशों को ग्रहण करता है। इसमें अवयव और अवयवी दोनों ही पाये जाते हैं। यह प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान के कारण दो प्रकार का है। इसमें मिथ्या ज्ञान को स्थान नहीं दिया जाता है। यह मिथ्या ज्ञानों का निराकरण करने वाला है।

## अनुमान—

यह दर्शन शास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण अङ्ग है। आगमों में कथन किया गया है कि जो ज्ञान मतिपूर्वक होता है वह अनुमान है। इसके दो अङ्ग—साध्य और साधन हैं। इसके दो भेद भी किये जाते हैं—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। सूत्र कृतांग में अज्ञमनः और परतः ये दो ज्ञान के साधन बतलाये गये हैं।<sup>१००</sup> जल की सचेतना सिद्ध करने के लिए वृत्तिकार ने अनुमान का सहारा लिया है तथा आत्मसिद्धि के लिए भी अनुमान को आधार बनाया। उन्होंने प्रतिपादन किया है कि शरीर को ग्रहण करने वाला कोई न कोई द्रव्य है; क्योंकि यह शरीर कफ, रुधिर, अङ्गोपांग आदि का परिणाम मात्र है। अन्न आदि की तरह। जैसे अन्न को ग्रहण करने वाला कोई न कोई है। वैसे शरीर को ग्रहण करने वाला कोई द्रव्य है।<sup>१०१</sup> अनुमान के विविध अवयवों का प्रयोग जैन दार्शनिकों ने अनेकान्त दृष्टि से व्यक्त किया है जिसे निम्न प्रकार निर्दिष्ट किया जा रहा है—

### अवयव

प्रतिज्ञा उदाहरण	प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण	प्रतिज्ञा हेतु दृष्टान्त उपसंहार निगमन	प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा विशुद्धि हेतु हेतु विशुद्धि दृष्टान्त दृष्टान्त विशुद्धि उपसंहार उपसंहार विशुद्धि निगमन निगमन विशुद्धि	प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा विभक्ति हेतु हेतु विभक्ति विपक्ष प्रतिषेध दृष्टान्त आशंका तत्प्रतिषेध निगमन
---------------------	-----------------------------	--	---	--

इसके अतिरिक्त अनुमान के अन्य कई भेदों का उल्लेख मिलता है जैसे—  
 (१) पूर्ववत् (२) शेषवत्, (३) कार्येण (कार्य), (४) कारनेण (कारण), (५) गुणेण (गुण से), (६) अवयवेण (अवयव से), (७) आश्रयेण (आश्रय से)।

आगम साहित्य में अनुमान एवं प्रमाण आदि का विशद विवेचन मिलता है। निक्षेप दृष्टि से द्रव्य प्रमाण, क्षेत्र प्रमाण, काल प्रमाण और भाव प्रमाण का उल्लेख प्राप्त होता है। अनुमान ही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से प्रतिपादित किया जाता है।

### नय विवेचन—

नामादि का न्यसन् अर्थात् नयस्त, प्रमाण और नय के माध्यम से किया जाता है। प्रमाण, नय और निक्षेप—इन तीन तत्त्वों की व्याख्या करने वाले प्रमुख कारण हैं। यही कारण है कि उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र में इन्हें उपाय तत्त्व के रूप में ग्रहण किया है। आचार्य सिद्धसेन एवं अन्य दार्शनिकों ने भी इन प्रमुख बिन्दुओं को आधार बनाकर वस्तु तत्त्व का विवेचन किया है।

शीलांकाचार्य ने आचारांग सूत्र की वृत्ति के प्रारम्भिक विवेचन में अनुयोग द्वार को मूल केन्द्रबिन्दु बनाकर दार्शनिक युग की विचारधारा के अनुरूप प्रमाण, नय और निक्षेप के आधार पर वस्तु तत्त्व का विवेचन करने का विधान बतलाया है। उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय मूल रूप से अनुयोग के प्रमुख चार द्वार हैं।<sup>१०३</sup> आगम युग का जैन दर्शन का विवेचन आगमों को प्रमाण मानकर पण्डित दलसुख मालवणिया ने नय निरूपण में उक्त कथन प्रस्तुत किया है।<sup>१०३</sup>

नामादि का व्यसन तीन प्रकार से होता है। औद्य निस्पन्न, नाम निस्पन्न और सूत्रालापक निस्पन्न, इन न्यास के अतिरिक्त निक्षेप अनुगम और नय अनुयोग द्वार के मूल स्थान हैं। प्रमाण की दृष्टि से ये पृथक् नहीं हैं अपितु उपक्रम के ही भेद हैं।

### नय का स्वरूप—

वृत्तिकार ने व्युत्पत्ति के माध्यम से नय का स्वरूप इस तरह प्रतिपादित किया है कि जो अनन्त धर्मों के अध्यवसाय से वस्तु के एक-एक धर्म को साथ लेकर चलता है या उसका विश्लेषण करता है, ऐसा ज्ञान विशेष नय है।<sup>१०४</sup> ज्ञान विशेष से वृत्तिकार का अभिप्राय यह है कि जो कुछ भी कथन किया जाता है वह वस्तु के अनेक धर्मों की वास्तविकता को लेकर ही प्रतिपादित किया जाता है; क्योंकि नय सूत्रों के अवयवों का सापेक्ष दृष्टि से निरूपण करता है। इसमें उद्देश्य, निर्देश, निर्गम, क्षेत्र, काल और पुरुष की प्रधानता होती है। कारण प्रत्ययों से युक्त नय अनुगम को प्राप्त होता है। अनुगम में सूत्र का अनुगम, सूत्र का उच्चारण आदि होता है। अनुगम, निक्षेप निर्युक्ति रूप है। उपोद्घात निर्युक्ति रूप है, और सूत्र स्पर्शिक निर्युक्ति रूप भी है। नय सामान्य और विशेष की अवस्था को भी लिये हुए होता है।<sup>१०५</sup>

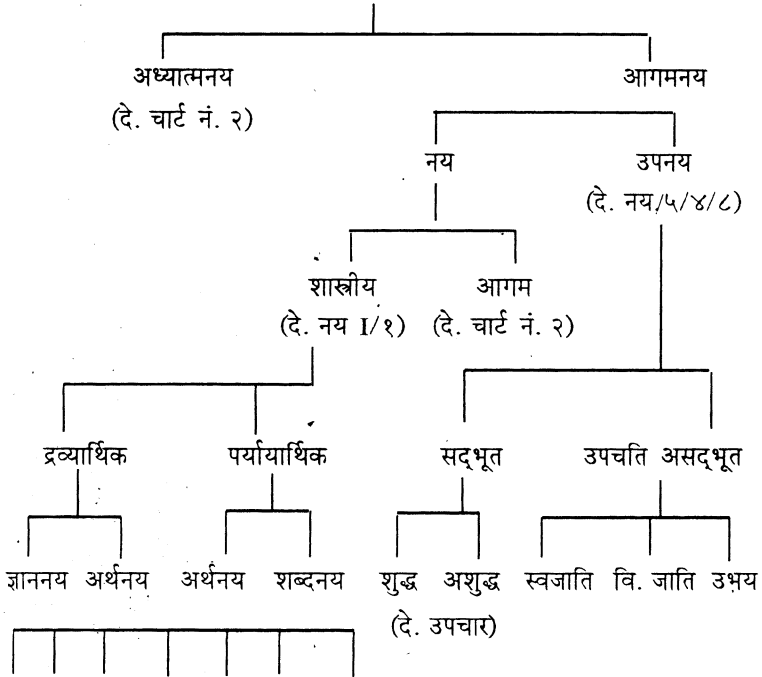
## नय की संख्या—

वृत्तिकार ने सप्तनय<sup>१०६</sup> का निर्देश किया है। उनके नाम नहीं गिनाये हैं। यद्यपि नय मूल रूप से दो द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक हैं<sup>१०७</sup> एवं (१) निश्चय-नय और (२) व्यवहार-नय<sup>१०८</sup> आगम दृष्टि से आचार्यों ने प्रतिपादित किये हैं।

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवं भूत— ये सात नय सर्वत्र प्राप्त होते हैं, जिन्हें वृत्तिकार ने स्वयं सप्त की संज्ञा से प्रतिपादित किया है।

रेखा चित्र नं. १

नय



नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत

द्रव्ये द्रव्यारोपण

द्रव्ये गुणारोपण

द्रव्ये पर्यायारोपण

गुणे द्रव्यारोपण

गुणे गुणारोपण

गुणे पर्यायारोपण

पर्याये द्रव्यारोपण

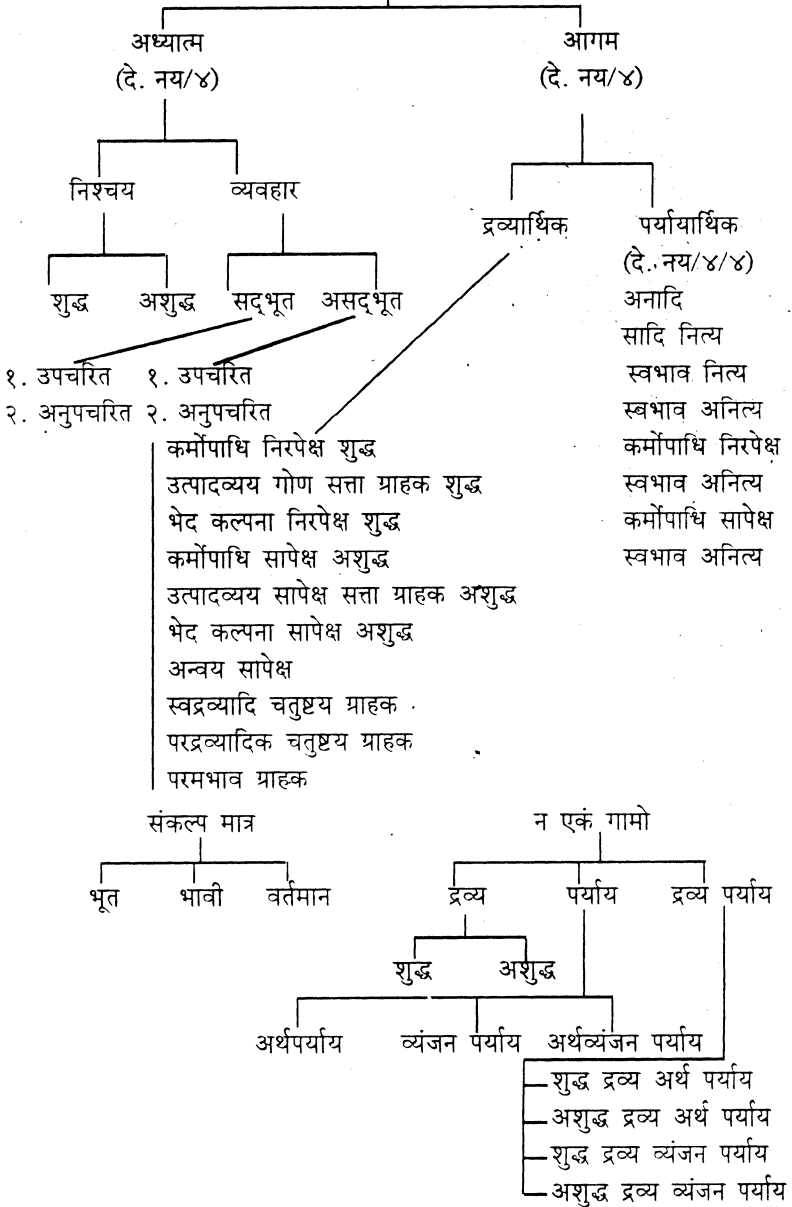
पर्याये गुणारोपण

पर्याये पर्यायारोपण

पर अपर पर अपर सूक्ष्म स्थूल  
(दे. नय/III/२)

## रेखाचित्र न. २

### नय



## नयों के मूल निर्देश—

मूलतः नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत, शब्द, समभिरूढ और भूत—ये सात नय प्रतिपादित किये जाते हैं।<sup>१०९</sup> विषय विश्लेषण की दृष्टि से नय के अन्य भेद भी किये जाते हैं, जैसे—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। निश्चय नय और व्यवहार नय, द्रव्यनय और भाव नय, सभी नय जैन दर्शन की अनेकान्त दृष्टि को प्रस्तुत करते हैं।

आचार्यों ने सभी मदों की अपेक्षा से इन्हें भिन्न रूप में प्रस्तुत किये हैं।

(१) ज्ञान नय (२) चरण नय

ज्ञान नय में ज्ञान की प्रधानता होती है और चरण नय में चारित्र की प्रधानता होती है। ज्ञान नय मोक्ष का साधन है, जिसमें हित, अहित पर विचार किया जाता है। चरण नय में अन्वय, व्यतिरेक की दृष्टि से समस्त पदार्थों का विवेचन किया जाता है। ज्ञान में सम्पूर्ण वस्तुओं को ग्रहण किया जाता है, जबकि चारित्र में ऐसा नहीं है।<sup>११०</sup>

## निक्षेप—

जैन सिद्धान्त में प्रमाण और नय की तरह निक्षेप का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। शीलंक आचार्य ने आचारांग वृत्ति का समग्र विवेचन निक्षेप पद्धति पर ही किया है; क्योंकि उनके सामने एकमात्र विकल्प यही था कि वे अच्छी तरह से अनुभव करते होंगे कि निक्षेप अर्थात् धरोहर या न्यास, वस्तु में भेद करने का उपाय है। इसमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय से रहित वस्तु को नाम आदि द्वारा क्षेपण किया जाता है। वृत्तिकार ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि युक्तिमार्ग से प्रयोजनवश जो वस्तु को नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि की दृष्टि से क्षेपण करें उसे निक्षेप कहते हैं।<sup>१११</sup> निक्षेप का अन्य नाम उपक्रमानी व्याची ख्यासित या न्यसन भी किया गया है। निक्षेप को निष्पन्न भी कहा है। निष्पन्न के तीन भेद किये हैं<sup>११२</sup>—

१. ओघ-निष्पन्न,
२. नाम-निष्पन्न,
३. सूत्रालापक-निष्पन्न

औघ-निष्पन्न में अङ्ग ग्रन्थों के अध्ययन आदि का सामान्य न्यास किया जाता है। नाम-निष्पन्न में आचार, शस्त्र परिज्ञा आदि विशेष नामों का उल्लेख किया जाता है। सूत्रालापक निष्पन्न में सूत्रशैली के कथन को नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव आदि के रूप में रखा जाता है।

## निक्षेप के प्रकार—

आगमों में निक्षेप के मूल रूप से चार भेद किये गये हैं—<sup>११३</sup>

१. नाम-निक्षेप—पदार्थ का नामाश्रित व्यवहार
२. स्थापना-निक्षेप—पदार्थ का आकाराश्रित व्यवहार
३. द्रव्य-निक्षेप—पदार्थ का भूत और भावी पर्यायाश्रित व्यवहार
४. भाव-निक्षेप—पदार्थ का वर्तमान पर्यायाश्रित व्यवहार

आचारांग वृत्तिकार ने निक्षेप के (१) नाम (२) स्थापना (३) द्रव्य (४) क्षेत्र (५) काल और (६) भाव की अपेक्षा से छः भेद किये हैं।<sup>११४</sup>

दिशा की अपेक्षा से सात निक्षेप इस प्रकार प्रतिपादित किये हैं—

(१) नाम, (२) स्थापना, (३) द्रव्य, (४) क्षेत्र, (५) ताप, (६) प्रज्ञापक और (७) भाव।<sup>११५</sup>

लोक की दृष्टि से निक्षेप के आठ भेद किये हैं—

(१) नाम, (२) स्थापना, (३) द्रव्य, (४) क्षेत्र, (५) काल, (६) भाव, (७) भाव और (८) पर्याय।<sup>११६</sup> इसी तरह निक्षेप के अन्य भेद आगमों में किये जाते हैं।

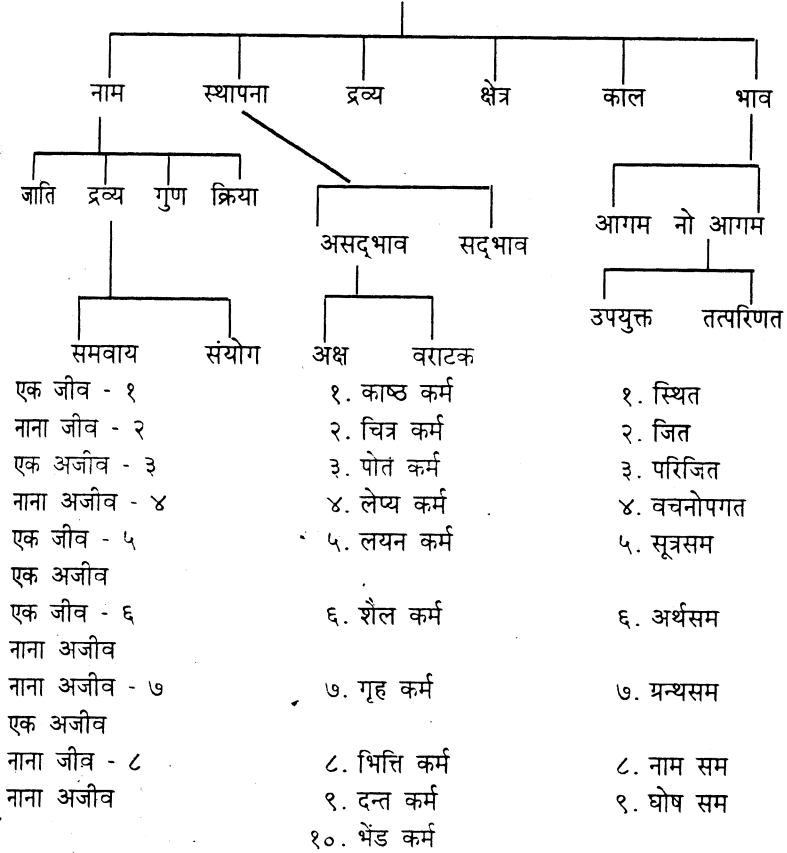
वर्णना की दृष्टि से भी निक्षेप के छः भेद किये गये हैं—

(१) नाम, (२) स्थापना, (३) द्रव्य, (४) क्षेत्र, (५) काल और (६) भाव। इस तरह वृत्तिकार की दृष्टि निक्षेप के भेदों को प्रतिपादित करने के लिए जिस रूप को प्राप्त हुई है उससे यही पता चलता है कि वे महावीर के सिद्धान्तों को सर्वव्यापी बनाने के लिए इस तरह की पद्धति को अपनाते रहे हैं। उन्होंने इसी प्रसंग में यह कथन किया है कि लोक जन्म का मूल स्थान है। मूल कषाय है, जिसे नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव पर्याय की प्राप्ति होती है।<sup>११७</sup> इसी लोक विजय अध्ययन के प्रथम उद्देशक में निक्षेप के १६ भेद भी गिनाये हैं, जैसे—(१) नाम, (२) स्थापना, (३) द्रव्य, (४) क्षेत्र, (५) काल, (६) भव, (७) भाव, (८) गमन, (९) करण, (१०) अभ्यास, (११) गुणागुण, (१२) अवगुण गुण, (१३) अनुगुण, (१४) शीलगुण, (१५) पर्याय गुण और (१६) रूप गुण<sup>११८</sup> इत्यादि।

निक्षेप को निम्न रेखांकित चित्र से समझा जा सकता है—



## निक्षेप



### भंग व्यवस्था—

जैन दर्शन में प्रत्येक वस्तु विवेचन के लिए भंग को आधार बनाया गया है। एक संख्या रूप प्रकृतियों में प्रकृतियों का बदलना भंग कहलाता है। अथवा संख्या भेद कर एकत्व में प्रकृति भेद के द्वारा भंग होता है।<sup>११९</sup> भंग के कई नाम हैं, जैसे—अंश, भाग, पर्याय, हार, विध, प्रकार, भेद, छेद आदि।

भंग का अर्थ स्थिति और उत्पत्ति का अविनाभावी वस्तु विनाश है। जिसके द्वारा विहित अर्थात् निरूपित किया जाता है। वह अङ्ग विधि कहलाती है जहाँ जुदे-जुदे भाव कहे जाते हैं वहाँ भंग होता है।<sup>१२०</sup>

आचारांग सूत्र में सर्वत्र भंग व्यवस्था को देखा जा सकता है,<sup>१२१</sup> जैसे—

१. जीव स्वतः नित्य है, काल से २. जीव स्वतः अनित्य है, काल से ३. जीव परतः नित्य है, काल से

४. जीव परतः अनित्य है, काल से

आचारांग के मूल सूत्र में भी यही व्यवस्था अपनाई गई है,<sup>१२२</sup> जैसे—

१. मैंने किया, २. मैंने कराया, ३. मैंने करते हुए को अनुमोदन दिया, ४. मैं करता हूँ, ५. मैं करवाता हूँ, ६. मैं करते हुए को अनुमोदन देता हूँ, ७. मैं करूँगा ८. मैं कराऊँगा, ९. मैं करते हुए को अनुमोदन दूँगा।

पदार्थ त्याग निरूपण सम्बन्धी भंग व्यवस्था इस प्रकार दी गई है—<sup>१२३</sup>

१. पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती, २. पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती, ३. नो पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती, ४. नो पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती।

प्रथम भंग का अर्थ यह है कि कितने ही साधक संसार की अंसारता को जानकर धर्म की आराधना करने के लिए चारित्र मार्ग अङ्गीकार करते हैं और उसे यावज्जीवन यथावत पालते हैं। वे सिंह के समान ही संसार से निष्क्रमण करते हैं और सिंह के समान ही दृढ़ता से संयम का पालन करते हैं। वे प्रबल-भावना से प्रेरित होकर ही चारित्र स्वीकार करते हैं और तदनन्तर भी श्रद्धा संवेगादि द्वारा वर्धमान परिणाम रखते हुए जीवनपर्यन्त प्रबल भावना से ही यथावत पालन करते हैं। इस भंग में गणधरादि का समावेश होता है। यह त्याग समझपूर्वक और सहज होता है।

द्वितीय भंग का अर्थ यह है कि कोई साधक प्रथम तो उज्ज्वल परिणामों से दीक्षा अङ्गीकार करते हैं लेकिन पश्चात् वे कर्म की परिणति से हीयमान परिणाम वाले होकर साधना से गिर जाते हैं। वे त्याग में यावज्जीवन नहीं टिकते हैं। दीक्षा प्रसंग पर वर्धमान परिणाम होते हैं, लेकिन बाद में परीषह एवं उपसर्गादि से व्याकुल होने से अथवा पूर्वाभ्यासों की प्रबलता होने से संयम के प्रति अरुचि पैदा हो जाती है और ऐसे साधक प्रब्रज्या से पतित हो जाते हैं। ऐसे साधक प्रथम तो सिंह के समान वीरता के साथ संसार से निकलते हैं और पश्चात् मोहोदय से गीदड़ के समान कायर बन जाते हैं। पूर्वाभ्यासों का असर मनोवृत्तियों पर बहुत अधिक पड़ा हुआ रहता है।

यदि साधक अपनी संयम साधना में जरा भी असावधान रहता है तो पूर्वाभ्यासों को वेग मिल जाता है और वे साधक को पुनः संसार की ओर खींचते हैं। असावधान साधक बराबर संसार की ओर खिंचता चला जाता है। इसके लिए नन्दीषेण का दृष्टान्त वर्तमान है। प्रायः यह देखा जाता है पतन जब शुरू होता है तो वह न जाने कहाँ जाकर रुकता है? पतनोन्मुख प्राणी का सब ओर से पतन होता है। ऊँचा चढ़ा हुआ व्यक्ति जब गिरता है तो उसे विशेष चोट लगती है, और वह अधिक नीचे गिरता है। यही हाल संयम से गिरने वालों का है, संयम से पतित होने के साथ ही

साथ कई व्यक्ति दर्शन सम्यक्त्व से भी भ्रष्ट हो जाते हैं। यह उनके पतन की उत्कृष्टता है। इसके लिए गोष्ठामाहिल का उदाहरण समझना चाहिए।

तृतीय भंग अभाव रूप है। अतएव सूत्र में उसका ग्रहण नहीं है। तीसरे भंग का अर्थ है प्रथम उत्थित नहीं होते हैं और बाद में गिरते हैं। यह असंभव है, जिसका उत्थान नहीं उसका पतन क्या हो सकता है।<sup>१२४</sup>

पतन उसी का होता है जिसका प्रथम उत्थान हुआ हो। उत्थान के होने पर पतन की चिन्ता हो सकती है। सूर्य उदय होता है तो उसका अस्त भी होता है। जिसका उदय ही नहीं, उसका अस्त क्या होगा? धर्मों के होने पर ही धर्म का विचार हो सकता है। जब धर्मों (गुणी) ही नहीं तो धर्म (गुण) कहाँ से हो सकता है? जिसने प्रव्रज्या अङ्गीकार नहीं की वह प्रव्रज्या से पतित कैसे होगा? अतएव यह तृतीय भंग असद् रूप होने से सूत्र में नहीं दिखाया गया है।

चतुर्थ भंग “नो पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती” है। इसका अर्थ यह है कि जिसने न तो संयम अङ्गीकार किया है और न जो संयम से पतित है। ऐसे गृहस्थ इत्यादिक अविरती है। सम्पूर्ण विरति के अभाव से गृहस्थ प्रथम भी उत्थित नहीं है और पश्चात् पतनशील भी नहीं है, क्योंकि उत्थान के बाद ही पतन होता है।<sup>१२५</sup>

श्रद्धा सम्बन्धी चार भंग इस प्रकार हैं—<sup>१२६</sup>

१. प्रथम श्रद्धालु और पीछे भी श्रद्धालु, २. प्रथम श्रद्धालु और पीछे अश्रद्धालु, ३. प्रथम अश्रद्धालु और पीछे श्रद्धालु, ४. प्रथम अश्रद्धालु और पीछे भी अश्रद्धालु।

अष्टम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में विधि और निषेध की अपेक्षा से भंग व्यवस्था प्रतिपादित की गई है।<sup>१२७</sup> जैन दर्शन का समग्र विवेचन विधि और निषेध पर आधारित है। वस्तु की मुख्यता और गौणता दोनों ही इसके अन्तर्गत किये जाते हैं। विधि और निषेध मुख्य और गौण स्याद्वाद का प्रतिपाद्य विषय है।

### स्याद्वाद—

स्याद् और वाद, इन दो शब्दों से स्याद्वाद शब्द बना है। स्याद् के अनेकान्त, विधि, विचार आदि अनेक अर्थ हैं। अनेकान्त का अर्थ ही यहाँ ग्रहण करने योग्य है, जिसमें क्वचित और कदाचित् अर्थ का समावेश है। सम्भव या संशय को इसमें स्थान नहीं दिया जाता है। अनेकान्त अनन्त धर्मात्मक वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान है। इसलिए “स्यात्” शब्द ही निश्चित अर्थ वाला है। संभावना और सापेक्षता उसके साथ जुड़े हुए हैं।<sup>१२८</sup>

स्याद्वाद अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति है। किसी भी एक शब्द या वाक्य के द्वारा सारी की सारी वस्तु का युगपत् कथन करना अशक्य होने से प्रयोजनवश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरे को।

मुख्य धर्म को सुनते हुए श्रोता को अन्य धर्म भी गौण रूप से स्वीकार होते हैं। उनका निषेध न होने पावे, इस प्रयोजन से अनेकान्तवादी अपने प्रत्येक वाक्य के साथ “स्यात्” या कथंचित् शब्द का प्रयोग करता है।<sup>१२९</sup>

स्यात्वाद को भिज्जवाद<sup>१३०</sup> और भंजनावाद<sup>१३१</sup> भी कहा गया है।

### सप्तभंगी—

प्रश्नकार के प्रश्नवश अनेकान्तस्वरूप वस्तु के प्रतिपादन के सात ही भंग होते हैं न तो प्रश्न सात से कम और न अधिक हो सकते हैं। आचार्य शीलांक देव ने जहाँ भंग की व्यवस्था के लिए चार विकल्प दिये हैं वहाँ वस्तु तत्त्व के विषय को स्पष्ट करने के लिए निम्न प्रकार से सप्तभंगी व्यवस्था द्वारा वस्तु के स्वरूप को समझाया है।

१. अप्रत्युपेक्षितमप्रमार्जितम्—प्रति लेखन किया हो, प्रमार्जन नहीं।
२. प्रत्युपेक्षितमप्रमार्जितम्—प्रमार्जन किया हो, प्रतिलेखन नहीं।
३. अप्रत्युपेक्षितं प्रमार्जितं—प्रतिलेखन, प्रमार्जन दोनों न किये हों।
४. दुष्प्रत्युपेक्षितं दुष्प्रमार्जितं—दुष्प्रतिलेखित और दुष्प्रमार्जित हो।
५. दुष्प्रत्युपेक्षितं सुप्रमार्जितं—दुष्प्रतिलेखित और सुप्रमार्जित हो।
६. सुप्रत्युपेक्षितं दुष्प्रमार्जितं—सुप्रतिलेखित और दुष्प्रमार्जित हो।
७. सुप्रत्युपेक्षितं सुप्रमार्जितं—सुप्रतिलेखित और सुप्रमार्जित हो।

आगमों में तीन भंगों की प्रधानता है—(१) अस्ति, (२) नास्ति और (३) अवक्तव्य। आचारांग वृत्तिकार ने सात भंग दिये हैं। व्याख्या प्रज्ञप्ति में सात भंगों का प्रयोग भी हुआ है।<sup>१३३</sup> इस तरह निरपेक्ष और सापेक्ष दृष्टि स्याद्वाद भी है।

आगम युग की अपनी परम्परा रही है, जिस परम्परा ने बौद्धिक जगत को सदैव गतिशीलता प्रदान की है। वस्तु स्वरूप के प्रतिपादन करने के लिए नये-नये पक्षों को ध्यान में रखकर वस्तु स्वरूप से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने के लिए तर्कपूर्ण शैली को अपनाया है। आचारांग वृत्तिकार ने आगम युग के प्रथम अङ्ग आगम आचारांग सूत्र पर अपनी दार्शनिक चिन्तन की सूझबूझ को हर सूत्र के साथ रखा है। चिन्तन के लिए उन्होंने दार्शनिक जगत की जिन शैलियों को अपनाया है, उसमें निक्षेप शैली महत्वपूर्ण कही जा सकती है। इस शैली के आधार पर ज्ञान की प्रामाणिकता, आत्मा की सिद्धि एवं प्रश्नोत्तर की दृष्टि ने विषय की गम्भीरता को अधिक स्पष्ट किया है।

शीलांकाचार्य के सम्पूर्ण दार्शनिक विवेचन में दर्शन के सभी पक्ष देखे जा सकते हैं। प्रमाण का स्वरूप, नय के विविध रूप, स्याद्वाद और सप्तभंगी व्यवस्था आदि का चिन्तन स्वतंत्र अनुसंधान के विषय को प्रेरित करता है। परन्तु यह हमारा प्रतिपाद्य विषय न होने से इसकी केवल जानकारी मात्र ही दी गई है। इसका तुलनात्मक अध्ययन जैन न्याय के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा।

□ □ □

## सन्दर्भ ग्रन्थ

१. परीक्षामुख ३/१९
२. राधाकृष्ण, भारतीय दर्शन, पृष्ठ २१
३. मालवणिया दलसुख - आगम युग का जैन दर्शन, पृ. ३५
४. आचारांग वृत्ति, पृ. १३
५. आचारांग सूत्र, पृ. १९
६. आचारांग वृत्ति, पृ. ११
७. मुनि राकेश कुमार - भारतीय दर्शन के प्रमुखवाद
८. आचार्य हरिभद्र षड्दर्शन समुच्चय, पृ. ३४-३५
९. आचार्य हरिभद्र, पृ. ६४६
१०. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. २-३, प्रारम्भिक विवेचन  
(ख) आचारांग सूत्र, पृ. २-३
११. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. गाथा,  
(ख) आचारांग सूत्र ३
१२. (क) आचारांग वृत्ति  
(ख) आचारांग सूत्र
१३. आचारांग सूत्र नं. १
१४. आचारांग सूत्र ५/५
१५. आचारांग सूत्र १/५
१६. आचारांग सूत्र २/२
१७. आचारांग सूत्र २/३
१८. आचारांग सूत्र २/४
१९. आचारांग सूत्र ३/१
२०. आचारांग सूत्र ३/४
२१. छान्दोग्य उप. अ. ६ खं. १, ऋ ३
२२. मुण्डक उप. अ. १, खं. २, ऋ ३
२३. आचारांग सूत्र ३/४
२४. आचारांग सूत्र ४/२
२५. आचारांग सूत्र ५/५
२६. आचारांग सूत्र ६/१
२७. आचारांग सूत्र ८/१
२८. आचारांग सूत्र १/६
२९. आचारांग वृत्ति, पृ. १११

३०. आचारांग सूत्र, पृ. १५०
३१. आचारांग वृत्ति, पृ. १११  
आहारार्थं कर्म कुर्यादिन्द्रियं, स्यादाहारः प्राणसंधारणार्थम् ।  
प्राणाधार्यास्तत्त्व जिंसनायं तत्त्वं ज्ञेयं येन भूयो न भूयात् ॥
३२. आचारांग सूत्र, पृ. ११०, १११, ११२
३३. आचारांग सूत्र ३/३
३४. आचारांग वृत्ति, पृ. ११२
३५. आचारांग वृत्ति, पृ. ११२
३६. धम्मपद, ३८० "अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ताहि अत्तनो गति ।  
तस्मा संजमयऽताणं अस्सं भद्दं व वाणिजो ॥"
३७. आचारांग सूत्र सं. सौभाग्य मुनि, पृ. २५५
३८. आचारांग वृत्ति, पृ. १५१
३९. आचारांग वृत्ति, पृ. १२४
४०. आचारांग वृत्ति, पृ. १२४
४१. आचारांग वृत्ति, पृ. ११
४२. (क) आचारांग वृत्ति ५/३  
(ख) आचारांग सूत्र ५/३
४३. व्याख्या प्रज्ञप्ति २/१
४४. आचारांग वृत्ति, पृ. ४७
४५. आचारांग वृत्ति, पृ. ५-८
४६. आचारांग वृत्ति, पृ. ८
४७. आचारांग वृत्ति, पृ. ८
४८. आचारांग वृत्ति, पृ. १७
४९. आचारांग वृत्ति, पृ. १३२
५०. हरिभद्र सूत्रि षड्दर्शन समुच्चय, पृ. २११
५१. आचार सुत्तं १/२८
५२. आचारांग वृत्ति, पृ. १९, २०
५३. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. २३  
(ख) उमास्वाति - तत्त्वार्थ सूत्र अ. २/१
५४. आचारांग वृत्ति, पृ. १२४
५५. आचारांग वृत्ति, पृ. १२४
५६. आचारांग वृत्ति, पृ. ३३
५७. आचारांग वृत्ति, पृ. ३३
५८. (क) प्रवचनसार ज्ञानाधिकार गाथा १६, १७, १८  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. ३४
५९. तर्क संग्रह, पृ. ८ "ज्ञानाधिकरणमात्मा"

६०. आचारांग वृत्ति, पृ. ३१ “जीवा अणेगा”
६१. आचारांग वृत्ति, पृ. ४७
६२. आचारांग वृत्ति, पृ. ३२
६३. आचारांग वृत्ति, पृ. ३२
६४. आचारांग वृत्ति, पृ. ३०
६५. आचारांग वृत्ति, पृ. ३०
६६. आचारांग सूत्र १/२/३
६७. (क) आचारांग सूत्र, पृ. ५२,  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. ३०, ३१
६८. आचारांग सूत्र, पृ. ५२
६९. आचारांग वृत्ति, पृ. ५३
७०. आचारांग वृत्ति, पृ. ५३ से ५५ तक
७१. आचारांग वृत्ति, पृ. ५४
७२. मुनि नथमल - जैन न्याय का विकास, पृ. ५९, ६०
७३. (क) तत्वार्थ सूत्र सं. न. ३७  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. ५७
७४. आचारांग वृत्ति, पृ. ५७
७५. आचारांग वृत्ति, पृ. ५७
७६. आचारांग वृत्ति, पृ. ५८, ५९
७७. आचारांग वृत्ति, पृ. ६४ से ७९ तक
७८. आचारांग वृत्ति, पृ. ७५ से ७७ तक
७९. षड्दर्शन समुच्चय, पृ. ४०
८०. वही, पृ. ७८, ७९
८१. वही पृ. १५४
८२. आचारांग वृत्ति, पृ. २३
८३. आचारांग सूत्र २/१
८४. आचारांग वृत्ति, पृ. २५
८५. वही, पृ. २३
८६. विस्तार के लिए देखें—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृ. ४३१ से ४९१
८७. आचारांग वृत्ति, पृ. ६१
८८. आचारांग वृत्ति, पृ. ६१
८९. आचार्य समन्तभद्र वृहत् स्वयम्भूस्तोत्र, पृ. ६३
९०. आचार्य धर्मकीर्ति प्रमाण वार्तिक ३
९१. न्याय वार्तिक
९२. शास्त्री कैलाशचन्द्र जैन न्याय, पृ. ४५
९३. आचारांग वृत्ति, पृ. ४४

१४. आचारांग वृत्ति, पृ. १२३
१५. तत्त्वार्थ सूत्र १/११-१२
१६. जैन न्याय, पृ. ११०
१७. आचारांग वृत्ति, पृ. ४४
१८. वही, पृ. २४
१९. वही, पृ. १३
१००. सूयगडो १२/१९ “जे आततो परतो वा वि सच्चा ।”
१०१. आचारांग वृत्ति, पृ. ३०
१०२. आचारांग वृत्ति, पृ. २
१०३. (क) मालवणिया-दलसुख—आगम युग का जैन दर्शन, पृ. २२६  
(ख) अनुयोग द्वार सूत्र ५९
१०४. आचारांग वृत्ति, पृ. २
१०५. वही, पृ. २
१०६. आचारांग वृत्ति, पृ. २
१०७. दिवाकर सिद्धसेन - सम्भहसुत्तं गाथा ३-४
१०८. आचार्य कुन्दकुन्द समयसार गाथा ३१-६६
१०९. आचारांग वृत्ति, पृ. १४९
११०. आचारांग वृत्ति, पृ. ५३
१११. आचारांग वृत्ति, पृ. २
११२. वही, पृ. २
११३. (क) तत्त्वार्थ सूत्र १/५,  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. ३
११४. वही, पृ. २
११५. वही, पृ. ९
११६. वही, पृ. ९
११७. आचारांग वृत्ति, पृ. ५५
११८. वही, पृ. ५६
११९. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग ३, पृ. १९६
१२०. वही पृ. १९६-१९७
१२१. आचारांग वृत्ति, पृ. ११
१२२. आचारांग सूत्र १ से ६
१२३. आचारांग सूत्र ५/३
१२४. आचारांग वृत्ति, पृ. ३७५
१२५. आचारांग सूत्र, पृ. ३७५-३७६
१२६. (क) आचारांग सूत्र ५/५,  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. १४७



१२७. आचारांग सूत्र ८/१ "अत्थिलोए नत्थिलोए, धुवे लोए अधुवे लोए आदि ।"  
१२८. जैन न्याय, पृ.  
१२९. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग ४, पृ. ४९७  
१३०. सूयगङ्गो १/१४/२२  
१३१. कषायपाहुड भाग १, पृ. २८१  
१३२. आचारांग वृत्ति, पृ. २१५  
१३३. व्याख्या प्रज्ञप्ति १२/२१९



## आचारांग-वृत्ति में प्रतिपादित जैन धर्म और दर्शन

धर्म तत्त्व वस्तुस्वरूप के भेद-विज्ञान को प्रस्तुत करता है, उचित-अनुचित पक्ष को प्रतिपादित करता है एवं नीति तत्त्वों का उपदेश देता है। धर्म दर्शक पक्ष उस चिन्तन को नई दिशा प्रदान करता है जिससे एक ही पक्ष के नाना स्वरूप प्रतिपादित किये जाते हैं। धर्म और दर्शन मानवीयता का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

### जैन परम्परा की ऐतिहासिकता—

भारतीय संस्कृति के दो ऐतिहासिक पक्ष हैं—प्रथम श्रमण संस्कृति पक्ष और द्वितीय वैदिक संस्कृति। श्रमण संस्कृति में जैन और बौद्ध धर्म की ऐतिहासिकता की गणना की जाती है। इस परम्परा की ऐतिहासिकता अतिप्राचीन है। कुलकर नाम से प्रसिद्ध यह परम्परा कल्पयुग की यशोगाथा का गुणगान करती है। इसके आद्य प्रवर्तक अन्तिम कुलकर नाभिराय के पुत्र आदिपुरुष ऋषभदेव माने गये हैं।

इतिहासवेत्ताओं ने गंभीर चिन्तन करके आदिपुरुष से लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीर और उसके पश्चात् की परम्परा का किसी न-किसी रूप में उल्लेख किया है। कालक्रम से कई परिवर्तन हुए, अनेक युग भी प्रारम्भ हुए। एक ऐसा युग भी प्रारम्भ हुआ जिसे कल्पयुग कहा गया। युग की व्यवस्था को संक्षिप्त में निम्न प्रकार से कर सकते हैं—

१. कुलकर परम्परा	१४ कुलकर
२. तीर्थंकर युग	२४ तीर्थंकर
३. गणधर युग	११ गणधर
४. आचार्य परम्परा	भद्रबाहु आदि

महावीर के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम थे। वे महान प्रतिभासम्पन्न थे। जो स्थान उपनिषद् में उद्दालक के समक्ष श्वेतकेतु का है, गीता में कृष्ण के समक्ष अर्जुन का है, बुद्ध के समक्ष आनन्द का है, वही, स्थान महावीर के समक्ष इन्द्रभूति गौतम

का है। वे महान जिज्ञासु थे। उन्होंने हजारों प्रश्न किये जिनका अनेकान्त शैली से महावीर ने उत्तर प्रदान किया था।

### महावीर के पश्चात्—

महावीर के पश्चात् आर्य सुधर्मा उनके पट्ट पर आसीन हुए और उनके पश्चात् आर्य जम्बूस्वामी पट्टधर बने। आर्य जम्बू का जीवन बड़ा ही अनूठा और प्रेरणाप्रद रहा, जो उनके त्याग तथा वैराग्य की गौरवगाथा को जनमानस के सामने प्रस्तुत करता है। वह वर्तमान अवसर्पिणी काल के अन्तिम केवली थे। उनके बाद कोई केवलज्ञानी नहीं हुआ। यहाँ तब प्रवर्तित आचार और विचार की सहज निर्मलता काल प्रभाव से शनैः-शनैः क्षीण होने लगी। उनके पश्चात् दस बातें विच्छिन्न हो गई—

१. मनः पर्यवज्ञान, २. परमावधिज्ञान, ३. पुलाकलब्धि, ४. आहारक शरीर, ५. क्षपक श्रेणी, ६. उपशम श्रेणी, ७. जिनकल्प, ८. संयमत्तिक (परिहार विशुद्धि चारित्र, सूक्ष्म संपराय चारित्र यथाख्यात चारित्र), ९. केवलज्ञान और, १०. सिद्ध पद।

भगवान महावीर के पश्चात् श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में अनेक ज्योतिर्धर आचार्य हुए जिन्होंने विपुल साहित्य का सृजन कर अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। उन सभी का यहाँ परिचय देना सम्भव नहीं है। हम केवल दोनों ही परम्पराओं के कुछ प्रमुख नामों का ही संकेत करेंगे—आचार्य भद्रबाहु स्वामी, आर्य स्थूलभस, आर्य वज्रस्वामी, आर्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण, आचार्य उमास्वाति, आचार्य शीलान्क, आचार्य हरिभद्र, आचार्य मलयगिरि, आचार्य अभयदेव, उपाध्याय यशोविजय, समयसुन्दर, आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य समन्तभद्र, आचार्य जिनसेन, आचार्य यति वृषभ, आचार्य शुभचन्द्र, नेमीचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, अकलंक देव, विद्यानन्द, पूज्यपाद आदि अनेक विद्वान, प्रभावक और अध्यात्म योगी आचार्यों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार जैन धर्म भगवान ऋषभदेव से लेकर वर्तमान युग तक अखण्ड रूप से चल रहा है। वर्तमान में श्वेताम्बर और दिगम्बर—ये दो मुख्य रूप हैं। श्वेताम्बरों में मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापंथी—ये तीन भेद हैं। मूर्तिपूजकों में मूर्ति पूजा का विधान है और अन्य दो अमूर्तिपूजक हैं। दिगम्बरों में मूल संघ में सात गण विकसित हुए—देवगण, सेलगण, देशीगण, सुरस्थगण, बलात्कारगण, कालूरगण और निगमान्वयगण। यापनीय संघ, द्राविड संघ, काष्ठा संघ, माथुर संघ, तेरहपन्थ, बीस पन्थ और तारण पन्थ आदि हैं। दिगम्बरों में भी कुछ मूर्तिपूजक हैं और कुछ अमूर्तिपूजक।

जैन धर्म विविध शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त होने पर भी सभी ने नमस्कार महामंत्र, चौबीस तीर्थकर, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि षट् द्रव्य, नौ या सप्त तत्त्व, अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद, कर्मवाद आदि को मान्य किया है। इस तरह तात्त्विक रूप से और समन्वय दृष्टि से देखा जाये तो इन विविध शास्त्र प्रशाखाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। आचार में अन्तर होने पर भी तात्त्विक विचारों में प्रायः समानता है।

### तत्त्व चिंतन—

मूलतः दो तत्त्वों की प्रमुखता है—१. जीव तत्त्व और २. अजीव तत्त्व। ये दो तत्त्व जैन धर्म और दर्शन के प्राण हैं। आस्रव, बन्ध, संवर; निर्जरा और मोक्ष—इन पाँच तत्त्वों के मिलाने से जैन तत्त्व के सात भेद बन जाते हैं। पुण्य और पाप की दृष्टि से नव तत्त्व हो जाते हैं। जैन जिन्हें पदार्थ भी कहते हैं। आगम एवं सिद्धान्त ग्रन्थों में इन तत्त्वों की सर्वत्र प्ररूपणा की गई है। आस्रव और बन्ध का विवेचन कर्म सिद्धान्त के अन्तर्गत ही किया जाता है जिसका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। संवर और निर्जरा चारित्र्य विषयक हैं जिन्हें आचार मीमांसा का महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना जाता है। मोक्ष तत्त्व जीवन की उत्कृष्टतम अवस्था है जिसमें जन्म और मरण की क्रिया का अभाव हो जाता है। आचारांग वृत्तिकार ने “जीवाजीवास्रव-बंध-पुण्य-पाप-संवर निर्जरा मोक्षाख्या नव पदार्था” सूत्र के माध्यम से नव पदार्थों का विवेचन प्रस्तुत किया है।

### तत्त्व विवेचन—

**जीव तत्त्व—** जीव का लक्षण चेतना है। इसके दो उपयोग हैं—(१) ज्ञानोपयोग और (२) दर्शनोपयोग। प्राण की दृष्टि से जीव चार प्राणों से प्राणधारी है। यह अतीन्द्रिय है, अमूर्त है, ज्ञान स्वरूप है, जीता है, जीता था और जीवित रहेगा। प्राण, भूत, जीव और सत्व—ये चार शब्द जीव के ही वाचक हैं। प्राण—दस प्रकार के प्राणयुक्त होने से प्राण है। भूत—तीनों कालों में रहने से भूत है। जीव—आयुष्य कर्म के कारण जीता है अतः जीव है। सत्व—विविध पर्यायों का परिवर्तन होते हुए भी आत्म द्रव्य की सत्ता में कोई अन्तर नहीं आता अतः सत्व है। इस तरह से जीव का दार्शनिक दृष्टिकोण अध्याय ३ में प्रस्तुत कर दिया गया है।

जीव चेतनायुक्त है, यह सभी दार्शनिक स्वीकार करते हैं। वृत्तिकार ने जीव की एक परिभाषा इस प्रकार दी है—जो जीता है, जीता था और जिएगा वह जीव है। जीव के भेद-प्रभेद आदि का विस्तृत विवेचन अध्याय ३ में कर दिया गया है।

## धर्म द्रव्य—

जीव और पुद्गल द्रव्यों को गति प्रदान करने में सहायक धर्म द्रव्य होता है। यह अरूपी द्रव्य है, जो समस्त लोक में व्याप्त है। वृत्तिकार ने 'धर्म' का प्रयोग किया है।

## अधर्म द्रव्य—

जो द्रव्य जीव और पुद्गल को स्थिति प्रदान करता है, वह अधर्म द्रव्य है। अर्थात् अधर्म द्रव्य चलायमान पदार्थों के रुकने में सहायक होता है। यह द्रव्य अरूपी है, और समस्त लोक में व्याप्त है। वृत्तिकार ने अधर्म का प्रयोग किया है।

## आकाश द्रव्य—

जो द्रव्य पदार्थों को अवगाह प्रदान करता है, वह आकाश द्रव्य है। आकाश जीव, अजीव आदि द्रव्यों को अवकास/स्थान प्रदान करता है। पदार्थों को आश्रय देता है। आकाश अनन्त है, परन्तु जितने आकाश में जीवादि अन्य द्रव्यों की सत्ता पाई जाती है वह लोकाकाश है, वह सीमित है। लोकाकाश से परे जो अनन्त शुद्ध आकाश है उसे अलोकाकाश कहा गया है।

## काल द्रव्य—

परिवर्तन का नाम काल है। एक-एक काल प्रदेश समस्त पदार्थों में व्याप्त है। वे परिणमन/पर्याय/परिवर्तन क्रिया करते हैं। परिवर्तन की दृष्टि से काल के दो भेद हैं—

१. निश्चय काल—यह अपनी द्रव्यात्मक सत्ता रखता है। वह धर्म और अधर्म द्रव्यों की तरह समस्त लोकाकाश में व्याप्त है।

२. व्यवहार काल—इस काल का एक समय है। घड़ी, घण्टा, दिन, सप्ताह, महीना, आवली, उच्छ्वास, स्तोक, लव, नाली, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, पूर्वांग, पूर्वा, न्युतांग, नयूत, आदि काल की विभिन्न अवस्थाएँ हैं।

## आस्रव तत्त्व—

कर्मों के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं।<sup>१</sup> अर्थात् जिन परिणामों से पुद्गल द्रव्य कर्म रूप बनकर आत्मा में आते हैं, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म पुद्गल परमाणु आत्मा से चिपट जाते हैं। मन, वचन और काय के परिस्पन्दन से नाना प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। उन क्रियाओं से कषायादिक भाव मनोविकार आदि उत्पन्न होते हैं यही आस्रव कहलाता है। कर्म पुद्गलों का ग्रहण करना आस्रव है, जैसे—नदी में पड़ी हुई नौका के छिद्र से पानी का आगमन होता रहता है उसी तरह से कर्म परमाणुओं का आगमन होता है।

## आस्रव तत्त्व के प्रकार—

१. द्रव्यास्रव और २. भावास्रव ।

## आस्रव के कारण

१. मिथ्यात्व, २. अवरति, ३. प्रमाद, ४. कषाय और ५. योग ।

## बन्ध तत्त्व—

कर्म परमाणुओं का आत्म प्रदेशों के साथ सम्बन्ध हो जाना बन्ध है। बन्ध का अर्थ है जुड़ना।<sup>३</sup> जीव के प्रत्येक कर्म द्वारा किसी न किसी प्रकार की ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है जो अपना कुछ न कुछ प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहती और साथ ही जीव की स्वतन्त्रता भी कुंठित नहीं होती है। आत्मा के साथ पुद्गलों का यह मेल दूध और पानी की तरह एकाकार है। जैसे—दूध और पानी एक दूसरे में मिल जाते हैं, उनको पृथक् कर पाना कठिन होता है, इसी तरह आत्मा और पुद्गल पृथक् होते हुए भी एक दूसरे से इतने मिल जाते हैं कि उन्हें पृथक् करना संभव नहीं है।

वृत्तिकार ने बन्ध को कई दृष्टियों से प्रतिपादित किया है। उसी दृष्टि को ध्यान में रख कर कुछ संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

## बन्ध के कारण—<sup>४</sup>

१. मिथ्यात्व, २. अवरति, ३. प्रमाद, ४. कषाय और ५. योग ।

## बन्ध तत्त्व के भेद

१. प्रकृति बन्ध, २. स्थिति, ३. अनुभाग और ४. प्रदेश बंध ।

वृत्तिकार ने बन्ध, उदय और सत्ता की अपेक्षा से बन्ध के सप्त भंग इस प्रकार किये हैं—

१. नीच गोत्र का बन्ध—नीच गोत्र का उदय और नीच गोत्र की सत्ता ।
२. नीच गोत्र का बन्ध—नीच गोत्र का उदय और उभय की सत्ता ।
३. नीच गोत्र का बन्ध—उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता ।
४. उच्च गोत्र का बन्ध—नीच गोत्र का उदय और उभय की सत्ता ।
५. उच्च गोत्र का बन्ध—उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता ।
६. बन्धाभाव—उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता ।
७. बन्धाभाव—उच्च गोत्र का उदय और उच्च की सत्ता ।

## बन्ध के अन्य भेद<sup>५</sup>

१. शुभ और २. अशुभ ।

## ज्ञानावरणीय कर्म बन्ध के हेतु

१. ज्ञान और ज्ञानवान् की निन्दा करना।
२. जिस ज्ञानी से ज्ञान सीखा है, उसका नाम छिपा कर स्वयं ज्ञानी बनने का प्रयत्न करना।
३. ज्ञान की आराधना में विघ्न डालना।
४. ज्ञानीजनों पर द्वेष रखना।
५. ज्ञान और ज्ञानी की आशातना करना और
६. ज्ञानी के साथ विसंवाद करना।

## दर्शनावरणीय कर्म बन्ध के हेतु—

१. सुदर्शनी की निन्दा करना।
२. जिसके द्वारा दर्शन प्राप्त हुआ है, उसके नाम का गोपन करना।
३. दर्शन की आराधना में विघ्न डालना।
४. सुदर्शनी पर द्वेष रखना।
५. दर्शन और दर्शनी की आशातना करना और
६. सुदर्शनी के साथ विसंवाद करना।

## वेदनीय कर्म के दो भेद—

१. सातावेदनीय और
२. असातावेदनीय।

## सातावेदनीय के बन्ध के कारण—

१. द्वीन्द्रिय आदि प्राणियों की अनुकम्पा करना।
  २. वनस्पति आदि भूतों की अनुकम्पा करना।
  ३. पञ्चेन्द्रिय जीवों की अनुकम्पा करना।
  ४. पृथ्वीकाय आदि सत्वों की अनुकम्पा करना।
  ५. प्राणियों को दुःख नहीं पहुँचाना।
  ६. शोक नहीं करना।
  ७. झुराना नहीं।
  ८. पीड़ा नहीं पहुँचाना।
  ९. परितापना नहीं देना।
- असातावेदनीय के बन्ध के कारण इनसे विपरीत समझने चाहिए।

## मोहनीय कर्म के बन्ध के हेतु—

केवली भगवान का वीतराग प्ररूपित शास्त्र का, धर्म का, संघ का और देवों का अवर्णवाद करना दर्शन मोहनीय का कारण है। तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ से चारित्र मोह का बन्ध होता है।

## आयुष्य कर्म के चार भेद—

१. नरकायु, २. तिर्यचायु, ३. मनुष्यायु और ४. देवायु।

## नाम कर्म के दो भेद—

१. शुभ नाम और २. अशुभ नाम।

## गोत्र कर्म के दो भेद—

जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ और ऐश्वर्य का घमण्ड करने से और अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करने से नीच गोत्र बँधता है। आठ मद स्थानों का अभिमान न करने से दूसरों का गुणानुवाद और आत्मनिन्दा करने से उच्च गोत्र का बन्ध होता है।

## अन्तराय कर्म के बंध के कारण—

१. दान देते हुए के बीच में बाधा डालना, २. किसी को लाभ हो रहा हो उसमें बाधा डालना, ३. भोजन पान आदि भोग की प्राप्ति में बाधा डालना, ४. वस्त्र शयनादि उपभोग योग्य वस्तु की प्राप्ति में रुकावट करना, ५. कोई जीव अपने पुरुषार्थ को प्रकट कर रहा हो तो उसके प्रयत्न में बाधा डालना।

## पुण्य और पाप तत्त्व—

पुण्य और पाप—ये दो तत्त्व बन्ध तत्त्व के ही भेद हैं, जिसे शुभ और अशुभ भी कहते हैं। शुभ अर्थात् अच्छे कर्मों के कारण से पुण्य बन्ध होता है और अशुभ कर्मों के कारण से पाप बन्ध होता है। आचारांग सूत्र के सम्यक्त्व अध्ययन में इन तत्त्वों का विवेचन हुआ है। इसी विवेचन में वृत्तिकार ने कहा है कि उपयोगपूर्वक की हुई क्रियाओं से पाप कर्म का बन्ध नहीं होता है। उपयोगपूर्वक क्रियाओं को करने वाला पाप कर्म का भागी नहीं होता है। अनुपयोग से कोई भी काम करने वाला पाप कर्म का भागी है। अतएव प्रत्येक कार्य उपयोगपूर्वक करना चाहिए। उससे पाप से लिप्त नहीं होते हैं।

असत्प्रवृत्ति, ही पाप कर्म है और पाप का परिणाम ही दुःख है। अतएव दुःखों का अत्यधिक क्षय करने के लिये आरम्भ (असत्प्रवृत्ति) का त्याग करना चाहिए असत्प्रवृत्ति, के त्याग के द्वारा सत्य को जीवन में उतारना चाहिए। असत् प्रवृत्ति, का त्याग करते हुए अगर शरीर शुश्रूषा को छोड़ना पड़े तो भी सत्य का शोधक उसके प्रति किंचित भी ध्यान नहीं देता है। सत्य के सामने देह का क्या मूल्य हो सकता है।<sup>१</sup>



वृत्तिकार ने लोक विजय अध्ययन के द्वितीय उद्देशक में पाप की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है। “पातयातितीवापाप” अर्थात् जिससे पतन होता है, उसे पाप कहते हैं। इस तरह पुण्य और पाप के विवेचन को भी आचारांग वृत्ति, में प्रतिपादित किया गया है।<sup>१०</sup>

### संवर तत्त्व—

आस्रव के निरोध को संवर कहते हैं।<sup>११</sup> मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग—इन पाँच कारणों से कर्मों का आगमन होता है, उनको निष्क्रिय बना देना संवर है।<sup>१२</sup>

### संवर के कारण<sup>१३</sup>—

१. गुप्ति—मन गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति।
२. पञ्च समिति—ईर्या-भाषा-एषणा आदान-निक्षेपण और प्रतिष्ठापण समिति।
३. धर्मसाधना—क्षमा-मार्दव-आर्जव-सत्य-शौच-संयम-तप-आकिंचन भी और ब्रह्मचर्य।
४. अनुप्रेक्षा—बारह अनुप्रेक्षा।
५. परीषह—सहिष्णुता।<sup>१४</sup>
६. सम्यक्चारित्र।
७. तप—१. बाह्य तप और २. आभ्यन्तर तप।

### संवर के भेद—

१. सम्यक्त्व, २. व्रत, ३. अप्रमाद, ४. अकषाय और ५. योग विग्रह।

### निर्जरा तत्त्व—

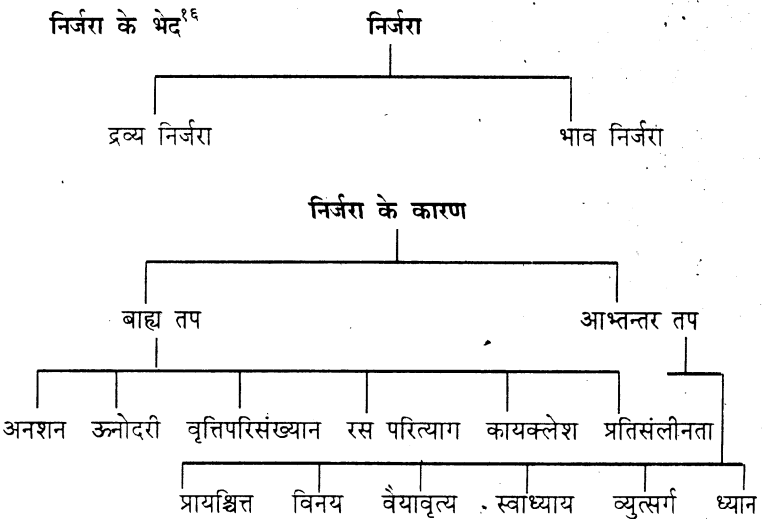
संसार का कारण आस्रव है और मोक्ष का कारण निर्जरा है। संवर द्वारा नवीन कर्मों के आगमन को क्रमशः क्षीण करना निर्जरा है। सूत्रकार ने सम्यक्त्व अध्ययन के द्वितीय उद्देशक में निर्जरा तत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि जो कर्म के आने के मार्ग हैं, वे ही कर्म की निर्जरा के निमित्त बन जाते हैं। और जो कर्म की निर्जरा के निमित्त हैं, वे ही कर्म के आस्रव के निमित्त बन जाते हैं। मिथ्या दृष्टियों के लिये जो पाप के कारण हैं, वे ही तत्त्वदर्शी के लिये कर्म निर्जरा के कारण हो जाते हैं।<sup>१५</sup>

वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में सम्यक्त्व को आधार बना कर यह भी कथन किया है कि साधु समाचारी का अनुष्ठान निर्जरा का कारण है, परन्तु अध्यवसायों की मलिनता और कपट के कारण वे ही कर्म बन्धन के कारण हो जाते हैं। जिस

प्रकार उदयन राजा को मारने के लिये एक नाई ने कपटपूर्वक साधुत्व अधिकार किया था। ऐसा कपटपूर्ण संयम और अध्यवसायों की विकृति के कारण संवर के स्थान भी आस्रव के स्थान हो जाते हैं।<sup>१७</sup>

आस्रव, संवर और निर्जरा का मुख्य आधार चित्त वृत्ति, पर—मानसिक परिणामों की धारा पर निर्भर है। कर्मों के आस्रव के कारण और निर्जरा के कारण जानकर संसार के कर्म बन्धनों से मुक्त होने का उपाय करना चाहिए।<sup>१८</sup>

तप से निर्जरा होती है, इसलिये दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ तप में प्रवृत्ति, करना चाहिए।



### मोक्ष—

षट्काय के जीवों के वध में कर्म बन्धन और वध से निवृत्ति, करने से मोक्ष होता है। वृत्तिकार ने कहा है कि बाह्य संसार और आभ्यन्तर संसार पर विजय प्राप्त करना लोक विजय है। कर्म बन्ध और कर्म क्षय के कारण को मोक्ष कहा जाता है। अर्थात् जहाँ समस्त कर्मों का अभाव हो जाता है, वहाँ मोक्ष होता है। मोक्ष अर्थात् मुक्त अवस्था। संसार के जन्म-मरण के अभाव का नाम मोक्ष है। वृत्तिकार ने लोक विजय अध्ययन के प्रथम उद्देशक में मोक्ष की चर्चा की है। उन्होंने इस अध्ययन में यह कथन किया है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप मोक्ष है। आत्मा के हित का नाम मोक्ष है। चारित्र का अनुष्ठान मोक्ष है या अपर्यवसान का नाम मोक्ष है।

वृत्तिकार ने सच्चे विमुक्त पुरुष की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जो अनेक प्रकार के स्वजन, धन सम्पत्ति, विषय कषाय आदि से मुक्त हैं, वे विमुक्त हैं, वे ही निर्ममतत्त्व के पारगामी हैं। मोक्ष संसार रूपी समुद्र का किनारा है।

### मोक्ष के कारण—

ज्ञान, दर्शन और चरित्र—ये मोक्ष के कारण हैं। जो इनका पालन करते हैं वे प्रशस्त भावों में रमण करते हैं। ज्ञान, दर्शन और चरित्र की प्रधानता से शील गुण को प्राप्त होता है। वास्तव में वे मुक्त पुरुष ही पारगामी हैं, जो सतत का पालन करते हैं, निलोभ वृत्ति से रहते हैं, काम-भोगों की इच्छा नहीं करते हैं तथा कर्म से रहित होकर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बनते हैं।<sup>१९</sup>

### कर्म मीमांसा—

कर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं, जैसे—कर्म, कारक, क्रिया और जीव के साथ बंधने वाले विशेष जाति के पुद्गल स्कन्ध। इस संसार में मनुष्यों के लिये जो दुःख के कारण कहे गये हैं, वे कर्म हैं।<sup>२०</sup> कर्म लीक के संयोग का नाम भी है। अज्ञाता भी कर्म है। वृत्तिकार ने लोक विजय नामक अध्ययन के छोटे उद्देशक में इस तरह के विवेचन करने के उपरान्त यह भी कथन किया है कि मनुष्यों को यह विचारना चाहिए कि दुःख क्या है? दुःख के कारण क्या हैं? अगर इस प्रश्न का समाधान जान लिया तो वह अपने ही कर्मों द्वारा दुःखी हो रहा है ऐसा वह जान सकता है। मनुष्य के अशुभ कर्तव्य ही उसके दुःखों के जनक हैं। अतः अपने अशुभ कर्मों के प्रत्याग से ही वह दुःख से मुक्त हो सकता है। ज्ञानावरणादि आठ कर्म बन्ध के कारण हैं।<sup>२१</sup>

### कर्म बन्ध कैसे होता है?

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के कारण से कर्मबन्ध होता है। जीव के इच्छा, द्वेष इसी से उत्पन्न होते हैं।<sup>२२</sup>

### कर्म के भेद—

१. द्रव्य कर्म और २. भाव कर्म।

### बन्ध के अन्य प्रकार—<sup>२३</sup>

१. प्रकृति, २. स्थिति, ३. अनुभाग और ४. प्रदेश-बन्ध।

### प्रकृतियाँ—

१. मूल प्रकृति और २. उत्तर-प्रकृति

## मूल प्रकृतियाँ—<sup>२४</sup>

१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ५. नाम, ७. गोत्र और ८. अन्तराय ।

## कर्म बन्ध की अवस्थायें—

१. बन्ध कर्मों का आत्मा के साथ बँधना ।
२. उत्कर्षण—बद्ध कर्मों की काल मर्यादा और फल वृद्धि होना ।
३. अपकर्षण—काल और फल में शुभ कर्मों के कारण न्यूनता होना ।
४. सत्ता—कर्म बन्ध होने और फलोदय होने के बीच आत्मा में कर्म की सत्ता (अस्तित्व) होना ।
५. उदय—कर्म का फल दान ।
६. उदीरणा—समय से पूर्व कर्म को जल्दी उदय में ले आना ।
७. संक्रमण—सजातीय कर्मों में संक्रमण होना ।
८. उपशम—कर्मों को उदय में आने के लिये अक्षम बना देना ।
९. निधत्ति—कर्मों का संक्रमण और उदयन हो सकना ।
१०. निकाचना—कर्मों का प्रगाढ़ बंधन ।

कर्म सम्बन्धी विवेचन वृत्तिकार ने अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है। राग-द्वेष के कारण विषय उत्पन्न होते हैं, जो विष-तुल्य हैं। विषय संसार के कारण हैं, जिनके कारण जीव सदैव कर्म बन्ध करता रहता है। राग के बन्धन के कारण माता-पिता पत्नी, पुत्र आदि में ममत्व करता है। वाद्द धन सम्पत्ति में आसक्ति रखता है। इस तरह यह प्राणी अनन्त कर्मों का बन्धन करता है। वृत्तिकार ने कर्म बन्ध के आठ, सात, छः और एक भेद भी गिनाया है। बन्ध, बन्ध के प्रकार, बन्ध की प्रकृतियाँ, बन्ध की स्थितियाँ, बन्ध के अनुभाग और बन्ध के प्रदेशों का लोक विजय अध्ययन में विस्तार से वर्णन किया है।

वृत्तिकार ने कुछ दृष्टान्तों द्वारा समझाया है कि परशुराम ने अपने पिता के अनुराग से द्वेष के कारण क्षत्रियों का सात बार नाश किया। शुभूम ने इसका बदला लेने के लिये २१ बार ब्राह्मणों का विनाश किया। अपनी स्त्री के कहने से चाणक्य ने नन्द वंश का नाश किया। कंस के मारे जाने पर उसका श्वसुर जरासन्ध अपने बल का अभिमान करके कृष्ण से युद्ध करता है और मारा जाता है। अर्थात् राग बन्धन के कारण प्राणी क्या-क्या अकृत्य करता है?

## आचार मीमांसा—

तीर्थकरों की दिव्य देशना द्वादशांग वाणी के रूप में निःसृत हुई। गणधरों ने सर्वज्ञ कथित अर्थ को सूत्र रूप में ग्रंथित किया और आगम रूप में आचारांग सूत्र को सर्वप्रथम स्थान दिया गया। यही सूत्र ग्रन्थ आचार के सभी पक्षों को प्रतिपादित करने वाला आगम ग्रन्थ है। वृत्तिकार ने कहा है कि सब तीर्थकर तीर्थ प्रवर्तन के आरम्भ में प्रथम आचार का निरूपण करते हैं। इसके अनन्तर क्रमशः अन्य आगम ग्रन्थों का प्ररूपण किया गया।<sup>२५</sup>

“आच्यर्यते आसेव्यत इत्याचारः” अर्थात् जो आचरण या सेवन किया जाना है उसे आचार कहते हैं। आचार ही प्रवचन का सार है। यही मोक्ष का साधन है। इससे चारित्र प्रकट होता है और इसी से अक्षय पद की प्राप्ति होती है।

## आचार के नाम—

आयार, आचाल, आगाल, आगरा, आसास, आयरिष, आइण्णा, आमोक्ख।<sup>२६</sup>

## आचार के भेद<sup>२७</sup>—

१. नाम आचार—ज्ञ-शरीर और भव्य शरीर, २. द्रव्याचार—द्रव्यों का जानना, ३. भावाचार—लौकिक और लोकोत्तर।

## अन्य प्रकार—

ज्ञानाचार—१. काल, २. विनय, ३. बहुमान, ४. उपधान, ५. अनिद्वव, ६. व्यंजन, ७. अर्थ और व्यंजन अर्थ।

## दर्शनाचार<sup>२८</sup>—

१. निःशक्ति—जिन और जिनागम में वर्णित सिद्धान्तों पर किसी भी प्रकार का संदेह नहीं होना, यह आस्था ज्ञानपूर्वक होती है।

२. निःकाक्षित—सांसारिक वैभव को प्राप्त करने की इच्छा न होना।

३. निर्विचिकित्सा—स्वभावतः मलिन शरीर में जुगुप्सा का भाव तथा आत्म गुणों में प्रीति की उत्पत्ति।

४. अमूढ-दृष्टित्व—मिथ्या दृष्टियों की न प्रशंसा करना और न उनकी अनुकम्पा करना।

५. उपगूहनत्व—धर्म को दूषित करने वाले निन्दात्मक तत्त्वों का विसर्जन करना और दूसरे के दोषों को उद्घाटित न करना।

६. स्थितिकरण—मार्गच्युत व्यक्ति को पुनः मार्ग पर आरूढ़ कर देना।

७. वात्सल्य—स्वधर्मी बन्धुओं से निश्चल, सरल तथा मधुर व्यवहार करना और इतर धर्मावलम्बियों से द्वेष न करना।

८. प्रभावना—दान, तप आदि द्वारा जैन धर्म की प्रभावना करना।

**चारित्राचार**—तीन गुप्ति और पाँच समिति रूप हैं।<sup>३१</sup>

**तपाचार**<sup>३०</sup>—बारह तप, विशेष हैं—१. बाह्य-तप और २. आभ्यन्तर-तप।

**बाह्य-तप**—१. अनसन ऊनोदरीका, वृत्ति, संक्षेपण, रसत्याग, कायक्लेश, संलीनता।

**आभ्यन्तर-तप**—प्रायश्चित्त, विनय वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

**वीर्याचार**<sup>३१</sup>—अनेक प्रकार का है। इस तरह आचार के कई भेद गिनाये गये हैं। आचार आत्मशुद्धि का साधन है और मुक्ति का रहस्य है।

### साधक की दृष्टि से आचार—

श्रमण संस्कृति की उदात्त भावना रही है। इस संस्कृति में जो आध्यात्मिक चिंतन दिया है, वह आचार तत्त्व को भी महत्त्व देता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र—ये तीन अंध्यात्म पद के साधन हैं, जिनका सर्वत्र विवेचन किया गया है। “आचारांग सूत्र” में कहा गया है कि महावीथी (मोक्षमार्ग) पर अनेक वीर नमीभूत हुए हैं। इसलिये यह मार्ग शंका से रहित है।<sup>३२</sup> जिनके द्वारा यह अनुभूत एवं पराक्षित है वे निर्भय हैं।

जैन आगमों में सच्ची निर्भयता से युक्त व्यक्ति को अनगार कहा जाता है। अनगार जैसा विचारता है, वैसा ही बोलता है। जैसा बोलता है, वैसा आचरण करता है। वह जीवन के प्रपञ्चों से मुक्त गृह त्यागी अनगार अन्तःकरण से सरल होता है तथा जो निरन्तर ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करता है। वह पवित्र आचरण करने वाला अनगार साधक होता है। साधक का एक रूप व्रतों के एक अंश को त्याग करने वाले श्रावक भी<sup>३३</sup> आचार के पालक होते हैं। इसलिये जैन आगमों में यत्र-तत्र श्रावक के आचार के विविध पक्षों का निरूपण हुआ है। उपासकदशा में श्रावकों के आचार सम्बन्धी विश्लेषण को व्यवस्थित रूप में प्रतिपादित किया गया है।<sup>३४</sup> साधना के उत्कृष्ट अवस्था तक पहुँचने के लिए श्रावक और श्रमण दोनों ही आचार-विचार, व्रत, यम, नियम आदि का पालन करते हैं। उसी दृष्टि से उनके दो भेद हैं—१. श्रावकाचार, २. श्रमणाचार।

### श्रावकाचार—

श्रावक को श्रमणोपासक, सागार गार्हस्थ्य, गृहस्थ्य भी कहते हैं। आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में गाथापति, गाथा कुल आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। श्रावक शास्त्र अध्ययन, धर्म उपदेश, मनन-चिंतन आदि से शुभ आचरण की ओर प्रवृत्त होता है। श्रावकों के ३५ गुणों का उल्लेख किया जाता है।<sup>३५</sup> श्रावक व्रती होता है, वह

हिंसादि के साधनों पर भी अंकुश लगाता है। उसका व्यवसाय हिंसायुक्त होते हुए भी ऐसी हिंसा से शून्य होता है जो अधिक हिंसा को उत्पन्न करे।

**श्रावक के भेद**—१. पाक्षिक, २. नैष्ठिक और ३. साधक श्रावक।

**श्रावक के व्रत**—१. पाँच अणु व्रत, २. तीन गुण व्रत और ३. चार शिक्षाव्रत।

**पाँच अणुव्रत**—१. अहिंसाणु व्रत, २. सत्याणुव्रत, ३. अचौर्याणु व्रत, ४. ब्रह्मचर्याणु व्रत और, ५. परिग्रह परिमाणणु व्रत।

**तीन गुण व्रत**—१. दिग्व्रत, २. देशव्रत और ३. अनर्थदण्ड व्रत।

**शिक्षा व्रत**—

१. सामायिक व्रत, २. पौषधोपवास व्रत, ३. उपभोग-परिभोग-परिमाण और ४.

अतिथि संविभाग व्रत।

**श्रावक की प्रतिमाएँ**—

१. दर्शन-प्रतिमा, २. व्रत-प्रतिमा, ३. सामायिक-प्रतिमा, ४. प्रोषध-प्रतिमा, ५. सचित-त्याग-प्रतिमा, ६. रात्रि-भुंक्ति-त्याग-प्रतिमा, ७. ब्रह्मचर्य-प्रतिमा, ८. आरम्भ-त्याग-प्रतिमा, ९. परिग्रह-त्याग-प्रतिमा, १०. अनुमति-त्याग-प्रतिमा, ११. उद्दिष्ट-त्याग-प्रतिमा।

**श्रावक के आवश्यक कार्य**—

१. पूजा, २. वार्ता, ३. दान, ४. स्वाध्याय, ५. संयम और ६. तप।

**श्रमणाचार**—

आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में मुनि चर्या से सम्बन्धित विवेचन पर्याप्त रूप में हुआ है। द्वितीय श्रुत-स्कन्ध को आचारांग या आचार चूला कहा गया है। वृत्तिकार शीलांक-आचार्य ने आचारांग सूत्र की आचार चूला पर विस्तार से विवेचन किया है। इसके पाँच चूलिकायें हैं। उनमें से चार चूलिकायें आचारांग के अन्तर्गत आती हैं। पाँचवीं चूला आचारांग से पृथक् कर दी गई है, जो निशीथ सूत्र के रूप में विख्यात है। आचारचूला, आचार कल्प, आचार प्रकल्प आदि इसी के सूचक हैं। आचारांग की चूलिका का संक्षिप्त परिचय श्रमणाचार की दृष्टि से इस प्रकार है—

**प्रथम चूला**—

नाम	उद्देशक	विषय
१. पिण्डैषणा	११	आहार शुद्धि का प्रतिपादन।
२. शय्यैषणा	३	संयम साधना के अनुकूल स्थान शुद्धि।
३. ईर्यैषणा	३	गमनागमन का विवेक।

**आचारसङ्ग-शीलाङ्कवृत्ति : एक अध्ययन**

१६९

४. भाषाजातैषणा	२	भाषा शुद्धि का विवेक।
५. वस्त्रैषणा	२	वस्त्रग्रहण सम्बन्धी विविध मर्यादायें।
६. पात्रैषणा	२	पात्र ग्रहण सम्बन्धी विविध मर्यादायें।
७. अवग्रहैषणा	२	स्थान आदि की अनुमति लेने की विधि।

### द्वितीय चरण—

१. स्थान सप्तिका—आवास योग्य स्थान का विवेक।
२. निषीधिका सप्तिका—स्वाध्याय एवं ध्यान योग्य स्थान गवैषणा।
३. उच्चार प्ररक्षण सप्तिका—शरीर की दीर्घ-शंका एवं लघु-शंका निवारण का विवेक।
४. शब्द सप्तिका—शब्दादि विषयों में राग, द्वेष रहित रहने का उपदेश।
५. रूप सप्तिका—रूपादि विषय में राग-द्वेष रहित रहने का उपदेश।
६. परक्रिया सप्तिका—दूसरों द्वारा की जाने वाली सेवा आदि क्रियाओं का निषेध।
७. अन्योन्य क्रिया सप्तिका—परस्पर की जाने वाली क्रियाओं में विवेक।

### तृतीय चूला—

१. भावना

### चतुर्थ चूला—

इस चूलिका में सिर्फ ग्यारह गाथाओं का एक अध्ययन है। इसमें विमुक्त वीतराग आत्मा का वर्णन है।

### श्रमणों के प्रकार—

श्रमण, महान, अतिथि, त्रिपण, बनी पक।<sup>३६</sup> श्रमण अष्टादश दोषों से रहित ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करते हैं।<sup>३७</sup>

### श्रमण के गुण—

पञ्च महाव्रत,<sup>३८</sup> पञ्च समितियाँ, पञ्च इन्द्रिय-विजय, छः आवश्यक, केशलुंचन, अचेलकता,<sup>३९</sup> अस्नानता, भूशयन, स्थिति भोजन, अदन्तधावन, आदि श्रमण के गुण हैं।

### श्रमण के अन्य गुण—

पिण्डैषणा, शंयैषणा, ईर्ष्या, भाषाजात, वस्त्रैषणा, पात्रैषणा, अवग्रह, सप्त सप्तिका, पञ्च-महाव्रत और उसकी पञ्च भावनार्यें, दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षार्यें, २२ परिषह,<sup>४०</sup> बारह



तप, तीन योग, भिक्षु प्रतिमा, समाचारीता आदि श्रमणों के धारण करने योग्य क्रियायें हैं।

### श्रमण—

वल्मज्ज, मात्रज्ज, क्षणज्ज, विनज्ज, समयज्ज, अपरिग्रहज्ज, अप्रतिज्ज, कालज्ज, क्षेत्रज्ज, खेदज्ज आदि के रूप में संयम की साधना करता हुआ विचरण करता है।<sup>४१</sup> विमोक्ष अध्ययन में साधु की क्रियाओं का, साधु के चारित्र का, साधु की शुद्धता एवं अन्य कई क्रियाओं का उल्लेख है। साधक—श्रमण शिथिलता के दोषों से रहित समस्त कष्टों को सहन करता हुआ समस्त क्रियाओं को करता है। वृत्तिकार ने अध्ययन की वृत्ति, में यह कथन किया है कि श्रमण रागादि से रहित क्षुधा-पिपासा आदि परिषहों से मुक्त प्राणी के प्रति अनुकम्पा करता हुआ संयम के अनुष्ठान में प्रवृत्त होता है।<sup>४२</sup>

### श्रमण के उपकरण—

१. पात्र, २. पात्र बन्धक, ३. पात्र स्थापन, ४. पात्र के शरीका (पुंजनी), ५. पटल, ६. रजस्त्राण, ७. गोच्छक।<sup>४३</sup>

निर्ग्रन्थों के अचेलकता—१. अल्पप्रतिलेखन, २. वेश्वसिक रूप, ३. तप की प्राप्ति, ४. लाभ प्रशस्त, ५. विपुल इन्द्रिय निग्रह।<sup>४४</sup>

### अभिग्रहधारी श्रमण के कल्प—

१. स्थविर-कल्पी, २. जिन-कल्पी।

### ग्रहिहार विपुद्धि चारित्र वाले श्रमणों की प्रतिमाएँ<sup>४५</sup>

१. पहली प्रतिमा में भिक्षु साधक एक मास तक एक दत्ति (दाता) आहार ले और एक दत्ति पानी ले।

२. दूसरी प्रतिमा में दो मास तक दो दत्ति आहार और दो दत्ति पानी को ग्रहण करे, अधिक नहीं।

३. तीसरी प्रतिमा में तीन मास तक तीन दत्ति आहार और तीन दत्ति पानी ग्रहण करे।

४. चौथी प्रतिमा में चार मास तक चार दत्ति आहार और चार दत्ति ही पानी ले।

५. पाँचवीं प्रतिमा में पाँच माह तक पाँच दत्ति आहार और पाँच दत्ति पानी पर निर्वाह करे।

६. छठी प्रतिमा में छः मास तक छह दत्ति आहार और छः दत्ति पानी ग्रहण करे।

७. सातवीं प्रतिमा में सात मास तक सात दत्ति आहार और सात दत्ति पानी पर निर्वाह करे।

८. आठवीं प्रतिमा में सात दिन तक चौविहार एकान्तर उपवास करे। दिन में सूर्य की आतापना ले और रात्रि में नग्न रहे। रात्रि में एक ही करवट से सोवे अथवा चित्त ही सोवे। करवट बदले नहीं।

९. नवमीं प्रतिमा में दण्डासन, लगुडासन या उत्कटासन लगाकर रात्रि व्यतीत करे।

१०. दसवीं प्रतिमा में समस्त रात्रि गोदुहासन या वीरासन में स्थित होकर व्यतीत करना चाहिए।

११. ग्यारहवीं प्रतिमा में षष्ठभक्त (बेला) करना चाहिए। दूसरे दिन ग्राम से बाहर आठ प्रहर तक कार्यात्सर्ग करके खड़ा रहे।

१२. बारहवीं प्रतिमा में अष्टम भक्त (बेला) करना चाहिए। तीसरे दिन श्मशान में अथवा वन में कार्यात्सर्ग करके खड़ा रहना चाहिए और उस समय जो भी उपसर्ग हो उन्हें स्थिर चित्त से वहन करना चाहिए।

### श्रमण के ग्रासैषणा की शुद्धि के पञ्च दोष—

१. संयोजना—जिह्वा की लोलुपता के कारण आहार को स्वादिष्ट बनाने के लिए दूसरे पदार्थों से मिला कर खाना, जैसे—दूध में शक्कर मिलाना आदि।

२. अप्रमाण—प्रमाण से अधिक भोजन करना।

४. इडोल—नीरस आहार करते हुए वस्तु की अथवा दाता की तारीफ करते हुए खाना।

४. धूम—नीरस आहार करते हुए पदार्थ की अथवा दान की निन्दा करते हुए अरुचिपूर्वक आहार करना।

५. अकारण—क्षुधा वेदनीय आदि छः कारणों में से किसी भी कारण के बिना आहार करना।

इस तरह श्रमण के आचार क्षेत्र के विस्तृत विवेचन को प्रस्तुत करते हुए उनके संस्कारक समाधिमरण आदि पर भी विचार किया गया है। विमोक्ष अध्ययन के उद्देशकों में भक्त परिज्ञा इंगितमरण और पादपोगमन करने का विधान किया गया है। विमोक्ष अध्ययन के अष्टम उद्देशक में दीक्षा अङ्गीकार करना, शिक्षा प्राप्त करना, सूत्र और अर्थ का ज्ञान प्राप्त करना, बाह्य एवं आध्यन्तर तप में लीन होना तथा निर्जरा प्रेक्षी<sup>४६</sup> की भावना से युक्त होकर विचरण करना श्रमण की महत्त्वपूर्ण आचार संहिता है।

श्रमण को तपोमय जीवन के लिये चारित्र के साथ ज्ञान और दर्शन का अवलम्बन लेना पड़ता है। इससे साधक रत्नत्रय के समीप बना रहता है। साधक

जो समीप में रखता है, वह उपधान कहलाता है। वो उपधान दो प्रकार का है—१. द्रव्य उपधान और २. भाव उपधान।<sup>५९</sup> शंयादि पर सुखपूर्वक शयन करने के लिये सिर के सहारे के लिये जो तकिया रखा जाता है वह द्रव्य उपधान है। चारित्र के लिये ज्ञान, दर्शन और तपश्चरण का अवलम्बन भाव उपधान है। भाव उपधान आत्म-शुद्धि का कारण है। यह कर्मग्रन्थी को अपूर्वकरण से भेदने वाला अनिवृत्तिकरण से सम्यक्त्व में स्थापन करने वाला, कर्म प्रकृति को संक्रमण से, अन्य प्रकृति के रूप में बदलने वाला, शैलेषी अवस्था में सर्वस्था कर्मों का अभाव करने वाला, कर्मों को रोकने वाला, कर्मों को छेदने वाला और कर्मों को भेदने वाला भी है। इसलिये उपधा में सदैव प्रत्यनशील रहना चाहिए।<sup>६०</sup>

इस तरह संयमी साधक निर्ग्रन्थ भाव से युक्त अनुकूल एवं प्रतिकूल उपसर्गों में समभाव रखता है। परीषहों को सहन करता है। बाह्य संसार की ओर लक्ष्य न करके आत्मविशुद्धि को लक्ष्य बनाता है। वह भावना, उपयोग आदि से संयम की साधना में रत रहता है।

### ज्ञान-मीमांसा—

ज्ञान का भारतीय दर्शन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें ज्ञान, स्वरूप, ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान की क्रिया, ज्ञान की सीमा, ज्ञान की परिस्थितियाँ, ज्ञान के भेद, ज्ञान के विषय आदि पर प्रकाश डाला जाता है। दार्शनिक विश्लेषण में ज्ञान, आत्मा आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है। यहाँ ज्ञान की विस्तृत जानकारी न देकर ज्ञान सम्बन्धी कुछ वैचारिक पक्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

जिन जीवों की विशिष्ट संज्ञा होती है वे अपनी विशिष्ट जाति स्मरण आदि ज्ञानयुक्त बुद्धि से या तीर्थंकर के कहने से अथवा अन्य उपदेशकों से सुन कर या जान लेते हैं कि मैं पूर्व दिशा से या अन्य किसी विदिशा से आया हूँ,<sup>६१</sup> यह ज्ञान भी आत्मा का विषय है। इससे मालूम होता है कि आत्मविकास के लिये, आत्मचिंतन की सतत आवश्यकता होती है। सतत आत्मचिंतन के द्वारा जीवों में वह शक्ति-स्फूर्ति हो जाती है, जिसके द्वारा उन्हें आत्मज्ञान विशद् रूप से होने लगता है। वे आत्मा के भूत और भावी पर्यायों को जानने में समर्थ हो जाते हैं। आत्मा की पर्यायों को जानने के तीन साधक हैं—

१. सहसन्मति या स्वमति, २. परव्याकरण, ३. अन्य अतिशय ज्ञानियों के वचन।<sup>६२</sup>

आत्मा के साथ हमेशा रहने वाली सद्बुद्धि के द्वारा कोई-कोई जीव आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है और अपने विशिष्ट दिशा-विदिशा के आगमन को जान लेता है। यद्यपि सामान्य रूप से मतिज्ञान सभी प्राणियों को होता है किन्तु सन्मति या स्वमति

सब जीवों को नहीं होती है। अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान और जातिस्मरणज्ञान सम्मति या स्वमति के अन्तर्गत आते हैं। विशिष्ट ज्ञान का बोध और उनका ज्ञेय भी होता है। ज्ञेय तत्त्व के चार भेद किये गये हैं—<sup>५३</sup> १. अवधिज्ञान, २. मनःपर्यवज्ञान, ३. केवलज्ञान और ४. जातिस्मरणज्ञान

वृत्तिकार ने मति और श्रुत इन दो ज्ञानों की कोई व्याख्या नहीं की है। अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान और जातिस्मरण ज्ञान की व्याख्या इस प्रकार की है<sup>५४</sup>

### १. अवधिज्ञान—

इन्द्रिय और मन की सहायता की अपेक्षा रखे बिना ही सभी द्रव्यों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। अवधिज्ञान संख्यात या असंख्यात भवों को जान लेता है।

### २. मनःपर्यवज्ञान—

मन वाले प्राणियों के मन की पर्यायों को जानने वाला ज्ञान मनःपर्यायज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान संयम की शुद्धि से उत्पन्न होता है। इस ज्ञान के द्वारा भी संख्यात या असंख्यात भवों को जाना जा सकता है।

### ३. केवलज्ञान—

लोक के रूपी-अरूपी सकल द्रव्यों की सकल पर्यायों को जानने वाला ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है। इसके द्वारा अनन्त भवों का ज्ञान हो सकता है।

### ४. जातिस्मरणज्ञान—

मतिज्ञानावरण के विशिष्ट क्षयोपशम के कारण आत्मा में ऐसे संस्कार जागृत हो जाते हैं जिनके कारण पूर्व भव का स्मरण हो जाता है। यह स्मरण जातिस्मरणज्ञान कहलाता है। इस ज्ञान के द्वारा नियमतः संख्यात भव जाने जा सकते हैं।<sup>५५</sup>

आत्मा और मति का तादात्म्य सम्बन्ध अर्थात् आत्मा का स्वभाव ज्ञान रूप है। ज्ञान आत्मा का गुण है और ज्ञान गुण का गुणी आत्मा है। गुण और गुणी से तादात्म्य सम्बन्ध होता है। वैशेषिक दर्शन गुण और गुणी को भिन्न-भिन्न मान कर समवाय सम्बन्ध के द्वारा उनका सम्बन्ध होना मानते हैं। इसका निराकरण करने के लिये सह शब्द दिया गया है, जो यह सूचित करता है कि मतिज्ञान सदा आत्मा के साथ रहता है। अतः आत्मा के साथ हमेशा ज्ञान के रहने पर भी ज्ञानावरण कर्म के प्रबल आवरण के कारण विशिष्ट ज्ञान नहीं हो पाता है। वृत्तिकार ने स्वमति और सहसम्मति की विशेषता को समझाने के लिये एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया है।

असन्तपुर नगर में जितशत्रु नाम का राजा था। धारिणी नाम की उसकी पत्नी थी। उनके धर्मरुचि नामक पुत्र था। किसी समय राजा का चित्त वैराग्य में रंग गया और वह तापसी दीक्षा ग्रहण करने के लिये उद्यत हुआ। उसने अपने पुत्र को सिंहासन पर आरूढ़ करने का निश्चय किया। राजकुमार ने अपनी माता से पूछा कि पिताजी राज्यश्री का त्याग क्यों कर रहे हैं? इसके उत्तर में माता ने कहा कि राज्यलक्ष्मी चंचल है। इसमें अनेक कूट-कपट की चालें चलनी पड़ती हैं। यह स्वर्ग और अपवर्ग के साधन में अर्गला भूत है। राज्य के लिये घोरतम पाप भी किये जाते हैं। इससे आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता। इससे शाश्वत सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये उस सुख को प्राप्त करने के लिये वे राज्य का परित्याग कर रहे हैं।

माता का यह कथन सुन कर धर्मरुचि बोला—माता, क्या मैं पिता को अनिष्ट हूँ जो यह पापमय राज्यलक्ष्मी मुझे दे रहे हैं? जिस राज्य को अहितकर और दुःखवर्धक जान कर वे छोड़ रहे हैं उसे मैं क्यों ग्रहण करूँ? मैं भी सुख का अभिलाषी हूँ। अतः मैं भी पिता के साथ ही आश्रम में जाऊँगा।

माता-पिता के बहुत समझाने-बुझाने पर भी राजकुमार ने राज्य सिंहासन पर बैठना स्वीकार नहीं किया और वह अपने पिता के साथ ही तापसों के आश्रम में चला गया। वहाँ वे पिता-पुत्र तापसों की क्रियाओं का पालन करने लगे। किसी समय अमावस्या के एक दिन पहले किसी बड़े तापस ने सूचना की कि कल अमावस्या है इसलिये अनाकुट्टि (कन्दमूल लता आदि का छेदन नहीं करना) होगी। अतः आज ही फूल, कुश, कन्दमूल, फल, ईधन वगैरह ले आना चाहिए। यह सुनकर धर्मरुचि ने अपने पिता से पूछा कि “अनाकुट्टि” क्या चीज है? पिता ने समझाया—कल पर्व दिन है। पर्व के दिनों में कन्दमूल आदि का छेदन नहीं किया जाता; क्योंकि इनका छेदन करना सावध है।

यह सुनकर धर्मरुचि ने विचार किया कि यदि हमेशा ही अनाकुट्टि रहे तो कैसा अच्छा हो, दूसरे दिन तपोवन के मार्ग से विहार करते हुए जैन साधुओं के दर्शन का उसे अवसर मिला। उसने उन साधुओं से पूछा कि क्या आज अमावस्या के दिन भी आपके अनाकुट्टि नहीं है जो आप जंगल में जा रहे हैं? उन साधुओं ने कहा कि हमारे लिये तो सदा ही अनाकुट्टि है। हमने सदा के लिये हिंसा का त्याग कर दिया है। यह कह कर वे साधु चले गये।

उन साधुओं के वचनों को सुनकर और उन पर ऊहापोह करते हुए उसे जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया कि मैंने जन्मान्तर में दीक्षा लेकर देवलोक के सुख का अनुभव किया और वहाँ से च्यव कर यहाँ उत्पन्न हुआ है।

राजकुमार को यह विशिष्ट दिशा से आगमन का ज्ञान उत्पन्न हुआ सो जातिस्मरणज्ञान के द्वारा होने वाले आत्मज्ञान का उदाहरण है।

### पर व्याकरण—

तीर्थकर के कहने से किसी जीव को अपने विशिष्ट दिशा-विदिशा से होने वाले आगमन का ज्ञान होता है। पर शब्द का अर्थ उत्कृष्ट है। तीर्थकरों के अतिरिक्त अन्य कौन उत्कृष्ट हो सकता है? अतः पर से तीर्थकर का ग्रहण करना चाहिए। तीर्थकर देव के उपदेश से बहुत से जीवों को अपनी पूर्व स्थिति का ज्ञान हुआ और अन्य अतीन्द्रिय बातों का ज्ञान होता है। इसके लिए भी वृत्तिकार ने एक दृष्टान्त दिया है।<sup>49</sup>

श्री गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा—हे भगवन्! मेरे हाथों से दीक्षित किये गये शिष्यों को केवलज्ञान हो गया और मुझे अब तक नहीं हुआ, इसका क्या कारण है? भगवान ने कहा—हे गौतम! मुझ पर तुम्हारा अतीव राग है। अतः तुम्हें कैवल्य उत्पन्न नहीं होता है। गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—हे भगवन्! आप पर मुझे इतना राग क्यों है? तब भगवान ने उनके पहले के कई भवों का वृत्तान्त सुनाकर कहा—“चिर संसिद्धोसि मे गोयमा। चिर परिचिओसि मे गोयम”। अर्थात् हे गौतम! तू मेरा चिर-परिचित है। तेरा और मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध है।

भगवान के इस कथन के द्वारा गौतम स्वामी को अपने कई भवों का ज्ञान हुआ। यह ज्ञान परव्याकरणज्ञान है।

### अन्य अतिशय ज्ञानियों के वचन—

अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, या केवलज्ञानी के उपदेशों के द्वारा जो पूर्व भव का ज्ञान होता है, वह अतिशय ज्ञानियों के वचन रूप है। जैसे अन्य व्याकरण ज्ञान भी कहते हैं।<sup>50</sup> इसके लिये भी वृत्तिकार ने मल्लिनाथ का दृष्टान्त दिया है।

मल्लिनाथ भगवान ने विवाह के लिये आये हुए छः राजकुमारों को अपने अवधिज्ञान के द्वारा उनके पूर्व भवों को जान कर उन्हें प्रतिबोध देने के लिये कहा कि “हमने जन्मान्तर में एक साथ संयम मार्ग अङ्गीकार किया था। उसके फलस्वरूप देवलोक के जयन्त विमान में हमने जन्म लिया था, क्या वह सब भूल गये?” इस प्रकार मल्लिस्वामी के पूर्व भव का कथन करने से उन राजपुत्रों को अपने विशिष्ट दिशागमन का ज्ञान हो गया।

इस तरह जैन आगमों की प्रथम अङ्ग ग्रन्थ आचारांग में ज्ञान की विविध रूपों में व्याख्या प्रस्तुत की गई है। वृत्तिकार ने प्रत्येक अध्ययन में ज्ञान की व्याख्या करने के लिये नय पद्धति और निक्षेप पद्धति को आधार बनाया है। आगम साहित्य में ज्ञान की चर्चा विस्तार से की गई है। आचारांग सूत्रकार ने आत्मवादी, विवेचन

में आत्मा को जिस रूप से प्रस्तुत किया उसमें ज्ञान की प्रमुखता है। जीव के उपयोगों में ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ये दो उपयोग आते हैं। उसी सन्दर्भ में ज्ञान की व्याख्या करते हुए यह कथन किया है कि ज्ञान जीव के स्व और पर विचार में भेद विज्ञान को उत्पन्न करने वाली है।<sup>५९</sup>

ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रमाण रूप भी है। सम्यक्त्व के अध्ययन में दर्शन के साथ ज्ञान का वर्णन किया है। ज्ञान की विवेचना आचारांग सूत्र में कई रूपों में की गई है। वृत्तिकार ने उस पर सरलतम व्याख्या प्रस्तुत करते हुए ज्ञान को अधिक स्पष्ट किया है। ज्ञान और सम्यक्त्व सहभावी है। जहाँ सम्यक्त्व है, वहाँ ज्ञान है और जहाँ ज्ञान है वहाँ विरक्ति है; क्योंकि ज्ञान का फल विरति (चारित्र) कहा गया है। ज्ञान के होने से दर्शन सम्यक् दर्शन है और सम्यक् दर्शन होने से ज्ञान सुज्ञान, सम्यज्ञान, सम्यक् ज्ञान है। ज्ञान का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जाता है परन्तु ज्ञान के वर्गीकरण से सम्बन्धित यह रेखाचित्र ही पर्याप्त है।<sup>६०</sup>

इस तरह धर्म और दर्शन से सम्बन्धित विवेचन ज्ञान की सम्यक् व्याख्या करता है। आचारांग वृत्ति, में जो सैद्धान्तिक विवेचन है वह धर्म और दर्शन के रहस्य को प्रतिपादित करता है। छः प्रकार के जीवों की रक्षा में जहाँ सिद्धान्त के स्वरूप पर आधारित करके उन्हें बचाया गया है वहीं दार्शनिक पक्ष ने प्रत्येक जीव के अस्तित्व को सिद्ध किया है। वृत्तिकार शीलंक आचारांग ने एक-एक शब्द को धर्म और दर्शन की कसौटी पर कसकर संकेत कर दिया कि धर्म मानवीय मूल्यों की जितनी अधिक विवेचन करता है उससे कहीं अधिक प्राणीमात्र के मूल्यों की स्थापना में सहयोग देता है। अतः धर्म और दर्शन जीवन-मूल्य की स्थापना के एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। धर्म प्राण-तत्त्व है और दर्शन उस तत्त्व का व्याख्याकार है।

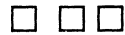
□ □ □

## सन्दर्भ ग्रन्थ

१. आचारांग वृत्ति, पृ. ११
२. वही, पृ. ६०
३. आचारांग वृत्ति, पृ. ६०
४. वही, पृ. ६०
५. आचारांग वृत्ति, पृ. ६०
६. वही, पृ. ७८, ७९, ८०
७. वही, पृ. १३२
८. आचारांग वृत्ति, पृ. २९८
९. आचारांग वृत्ति, पृ. ३१५
१०. आचारांग वृत्ति, पृ. ९८
११. आचारांग वृत्ति, पृ. १५३
१२. आचारांग वृत्ति, पृ. १५७
१३. वही, पृ. १५७
१४. आचारांग वृत्ति, पृ. १६२
१५. आचारांग सूत्र-४/२
१६. आचारांग वृत्ति, पृ. ११७ से ११९
१७. आचारांग वृत्ति, पृ. ११८
१८. वही, पृ. १२२
१९. आचारांग वृत्ति, पृ. ७६, "विमुक्ता हुवे जणा जे जणा पारगामिणो, लोभलोभेण दुगुण्णमाणे लद्धे कामे नाभिगाहइ"
२०. आचारांग वृत्ति, पृ. ९७
२१. वही, पृ. ९७
२२. आचारांग वृत्ति, पृ. ६०
२३. आचारांग वृत्ति, पृ. ६१
२४. आचारांग वृत्ति, पृ. ६३, ६४
२५. आचारांग वृत्ति, पृ. ४  
"सब्बेसि आयारो तित्थस्स पवत्तणे पढमयाए ।  
सेसाइं अङ्गाइं एक्कारस आणुपव्वीए ॥"
२६. वही, पृ. ३
२७. वही, पृ. ३
२८. वही, पृ. ३
२९. आचारांग वृत्ति, पृ. ३



३०. वही, पृ. ३
३१. वही, पृ. ४
३२. आचारांग सूत्र-१/३ "पणया वीरा महाविहीं । लोगंच आणाये अभिसमेच्चा अकुओभयं ॥"
३३. आचारांग वृत्ति, पृ. ४६
३४. शास्त्री देवेन्द्र मुनि—जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप, पृ. १०६
३५. भाष्कर भागचन्द—जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास,—पृ. २५५
३६. आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. १८
३७. आचारांग वृत्ति, पृ. ५४
३८. वही, पृ. ५४
३९. वही, पृ. १८५
४०. आचारांग वृत्ति, पृ. १८५
४१. वही, पृ. १८४
४२. वही, पृ. १८५
४३. वही, पृ. १८६
४४. आचारांग वृत्ति, पृ. १८६
४५. आचारांग वृत्ति, पृ. १८७
४६. वही, पृ. १८७
४७. आचारांग वृत्ति, पृ. १८९
४८. आचारांग वृत्ति, पृ. ८/८ गाथा ५
४९. वही, पृ. १९८
५०. आचारांग वृत्ति, पृ. १८९
५१. आचारांग सूत्र १/१
५२. आचारांग वृत्ति, पृ. १३
५३. वही, पृ. १३
५४. आचारांग वृत्ति, पृ. १३-१४
५५. आचारांग वृत्ति, पृ. १४
५६. आचारांग वृत्ति, पृ. १४
५७. आचारांग वृत्ति, पृ. १४
५८. वही, पृ. १४
५९. आचारांग वृत्ति, पृ. ४६
६०. आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि—शब्दों की गागर में आगम का सागर, पृ. ७५



## आचारांग-वृत्ति का सांस्कृतिक अध्ययन

आचारांग सूत्र की वृत्ति पर वृत्तिकार ने अनेक तरह से विश्लेषण प्रस्तुत किया है। आगम के मूल विषय को दृष्टि में रखते हुए वृत्तिकार शीलंक आचार्य ने श्रमण-श्रमणियों के आचार-विचार एवं विहार आदि की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की है। उसी के अन्तर्गत अनेक प्रकार की सांस्कृतिक सामग्री का विवेचन भी हुआ है। शीलंक आचार्य ने सांस्कृतिक विचारधारा को विकसित करने के लिये शब्द विश्लेषण के साथ जो विवेचन प्रस्तुत किया है उसमें तीर्थकर, गणधर, चक्रवर्ती, राजा, राजपुत्र, जनपद, नगर, ग्राम आदि का विवेचन भी मिलता है।

राज, राज्य, शासन-व्यवस्था आदि का विस्तृत विवेचन नहीं है, परन्तु कुछ राज्य एवं राजाओं का वर्णन है। इसमें भूगोल, खगोल, इतिहास, संगीत, नृत्य, चिकित्सा-पद्धति, रोग और रोग के प्रकार का भी वर्णन है। सामाजिक-धार्मिक चित्रण के साथ इसमें प्राणि-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान आदि कई प्रकार के विषयों का विवेचन भी हुआ है।

भौगोलिक सामग्री कला और विज्ञान, वाणिज्य-व्यापार, रीति-रिवाज, शिक्षातत्त्व, नीति आदि के संकेत भी इसमें हैं। यह अवश्य विचारणीय है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ श्रमण चर्या पर आधारित होते हुए भी इसमें सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक आदि विश्लेषण को भी इसमें देखा जा सकता है। इसी आधार पर कुछ महत्वपूर्ण चिंतन यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो इसकी सांस्कृतिक धरोहर को प्रकट कर सकेंगे।

### ऐतिहासिक पक्ष—

आचारांग वृत्तिकार ने वृत्ति के प्रारम्भ में “ॐ नमः सर्वज्ञाय” इस विवेचन से सभी सर्वज्ञों को नमन किया है। अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सभी साधुओं को नमन किया गया है तथा श्री सुधर्मा स्वामी केवली, भद्रबाहु स्वामी जैसे ऐतिहासिक पुरुषों की जानकारी इससे मिलती है।<sup>१</sup> इसी क्रम में ज्ञात कुल के प्रमुख नायक वीर प्रभु का भी स्मरण किया है। तीर्थ, तीर्थकर तीर्थकृत, गणि, चतुर्दश पूर्वधारी आचार्य,<sup>२</sup> तीर्थ प्रवर्तक, गणधर,<sup>३</sup> केवली, श्रुत केवली आदि के नामों का उल्लेख है। सूरेश्वर चक्रवर्ती,<sup>४</sup> माण्डलिक,<sup>५</sup> ऋषभ,<sup>६</sup> पार्श्वनाथ,<sup>७</sup> केशी गौतम, अरिष्ट-नेमी,<sup>८</sup> वीर,<sup>९</sup> वर्धमान,<sup>१०</sup> महावीर<sup>१०</sup> आदि तीर्थकरों आदि के नाम एवं नागार्जुन<sup>११</sup> जैसे विशिष्ट

आचार्य, जिन-कल्प्य और स्थविर,<sup>१२</sup> स्थविर भगवन्त,<sup>१३</sup> अर्हन्त-भगवन्त,<sup>१४</sup> श्रमण-भगवन्त,<sup>१५</sup> सुधर्मास्वामी, जम्बूस्वामी,<sup>१६</sup> स्कन्ध,<sup>१७</sup> (स्वामी कार्तिकेय), मुकुन्ध,<sup>१८</sup> रूद्र<sup>१९</sup> आदि ऐतिहासिक पुरुषों का उल्लेख है।

आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के १५वें अध्ययन में महावीर के पञ्च कल्याणकों की ऐतिहासिक दृष्टि है। इसमें गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान, और निर्वाण इन पाँच कल्याणकों का उल्लेख है। देवा-नन्दा ब्राह्मणी का भी उल्लेख है। महावीर के प्रचलित नाम—१. वर्धमान, २. सन्मति, ३. महावीर का भी उल्लेख है। भगवान् के परिजन, माता, पिता आदि की भी चर्चा इस अध्ययन में की गई है। वृत्तिकार ने सैद्धान्तिक दृष्टि को महत्त्वपूर्ण बनाते हुए श्रमण-श्रमणियों की भावना को आदरस्वरूप में प्रस्तुत किया है। वृत्तिकार ने प्रत्येक भावना पर विचार करते हुए पञ्च महाव्रत सम्बन्धी २५ भावनाओं के सार को महत्त्व देते हुए कहा है कि जो व्यक्ति पाँच महाव्रतों की २५ भावनाओं को यथा-श्रुत, यथा-कल्प और यथा-मार्ग इनका भली-भाँति कीर्तन करता है, पालन करता है और भगवान् की आज्ञानुसार चलता है, वह कृत-कृत होता है।<sup>१०</sup>

इस तरह आचारांग वृत्ति में वृत्तिकार ने तीर्थंकर, अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु जैसे महत्त्वपूर्ण तीर्थ प्रवर्तकों के प्रवर्तन का जहाँ उल्लेख किया है, वहाँ उनके शिष्यों आदि का भी इसमें उल्लेख है। मूलतः मात्र उल्लेख ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उनकी जीवन पद्धति, जीवनचर्या आदि कैसी थी? उसको भी वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में महत्त्व दिया है।

### धार्मिक व्यवस्था—

धर्म की दृष्टि से सम्पूर्ण समाज को दो भागों में विभक्त किया जाता है—

१. श्रमण समाज, २. गृहस्थ समाज।

### १. श्रमण समाज—

श्रमण, संयत, तपस्वी, साधु, ऋषि, वीतराग, अणगार, भदन्त, यति, प्रज्ञावन्त, अचेलक, निर्गन्थ, भिक्षु, वीरा, अप्रमत्त, यम आदि कई श्रमण के नाम हैं। वृत्तिकार ने श्रमण की परिभाषा करते लिखा है—“जो सदैव प्रयत्नशील होता है, वह श्रमण कहलाता है।”<sup>२२</sup> “वह समभाव में स्थित साधना की क्रिया में लीन रहता है।” श्रमण सम्बन्धी विवेचन आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में किया गया है। श्रमण या श्रमणी, भिक्षु या भिक्षुणी साधना के क्षेत्र में प्रवेश करते ही भाव शुद्धि को प्रमुख आधार बनाते हैं। अर्हत शासन में उन्हें वृत्ति या अणगार कहते हैं। अणगार की व्याख्या करते हुए लिखा है—“जो आगार, अर्थात् गृह के आधिपत्य को छोड़ देता है, वह अणगार कहलाता है।”<sup>२३</sup> अणगार का जीवन शुद्ध एवं निरासक्त होता है। वे

जो कुछ भी यत्न करते हैं वह उत्कृष्ट होता है, इसलिये वे यति हैं।<sup>२४</sup> उन्हें वीर/पराक्रमी, साधना में आने वाले समस्त विघ्नों पर विजय पाने वाला भी कहा जाता है। वे इन्द्रिय और मन को विवेक द्वारा निग्रह करते हैं, इसलिये संयमी हैं। सदा जागृत एवं विषयों की प्रवृत्ति पर रहित होते हैं। इसलिये वे अप्रमत्त हैं। वे खेदज्ञ (निपुण—निजस्वरूप को जानने वाले) हैं।<sup>२५</sup>

श्रमण को मुमुक्षु<sup>२६</sup> और मुनि भी कहते हैं। जो कर्म समारम्भ/हिंसा के कारण है, इन्हें जो जान लेता है, वही, परिज्ञातकर्मा है, मुनि है।<sup>२७</sup> मुनि की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि जो जगत की त्रिकाल अवस्था को जानते हैं, उसका मनन-चिन्तन करते हैं, वे मुनि है। “मुनि परिज्ञा. है।” परिज्ञात कर्मा हैं। प्रत्याख्यान के ज्ञाता हैं।<sup>२८</sup> वे सम्यक् प्रकार से उत्थान, शयन, चक्रमण आदि क्रियाओं में सतत संयत हैं।<sup>२९</sup>

विमोक्ष अध्ययन में साधक भिक्षु की प्रत्यनशीलता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। वे सदैव यत्नपूर्वक विचरण करते हैं, खड़े होते हैं, बैठते हैं, सोते हैं, और अन्य सभी क्रियाएँ भी सावधानीपूर्वक करते हैं। वे सदैव सभी प्रकार के सावद्य कारणों से युक्त प्रतिज्ञा रूपी मन्दिर (उच्च शिखर, उच्च आसन, उच्च पद) पर स्थित भिक्षाशील भिक्षु हैं।<sup>३०</sup> वे भिक्षु कालज्ञ हैं, उचित और अनुचित के ज्ञायक हैं। ध्यान में लीन, अध्ययन, अध्यापन, शास्त्र श्रवण करने वाले तथा उनके रहस्य को प्रतिपादित करने वाले हैं, वे श्रान्त हैं तथा जो सदैव श्मशान, शून्यग्रहों और पर्वतों की गुफा में निवास करते हैं। इस प्रकार से वृत्तिकार की वृत्ति में भिक्षु, साधु, मुनि आदि की व्याख्याएँ कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं।

### श्रमणों के प्रकार—

मूलतः आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये तीन श्रमणों के भेद विशेष उल्लेखनीय हैं। वृत्तिकार ने आचार्य को अनुयोग को धारण करने वाला कहा है। उपाध्याय को अध्यापक की संज्ञा दी है। साधुओं को यथा-योग्य श्रमणोचित आचरण एवं वैयावृत्ति करने वाला बतलाया है। स्थितिकरण से स्थित स्थविर है। गच्छों के अधिपतिगणी हैं। आचार्य की देशना को गम्भीरता से आदेशपूर्वक ग्रहण कर पृथक् रूप से साधु समूह से विचरण करते हैं, वे गणधर हैं तथा गण अर्थात् गच्छ के कार्य के चिन्तक जो हैं वे श्रमण हैं<sup>३१</sup> (१) आर्य, (२) आर्यप्रज्ञ, (३) आर्यदर्शी—ये तीन श्रमण के विशेषण दिये गये हैं। आर्य का अर्थ है—श्रेष्ठ आचरण वाला अथवा गुणी। आचार्य शीलांक के अनुसार जिसका अन्तःकरण निर्मल हो वह आर्य है। जिसकी बुद्धि परमार्थ की ओर प्रवृत्त हो, वह आर्यप्रज्ञ है। जिसकी दृष्टि गुणों में सदा रमण करे वह अथवा न्याय मार्ग का दृष्टा आर्यदर्शी है।<sup>३२</sup> श्रमण के अन्य भेद हैं—१. निर्गन्थ (जैन), २. शाक्य (बौद्ध), ३. तापस, ४. गैरिक और ५. आजीवक (गोशालक मतीय)।<sup>३३</sup>

आचारांग वृत्ति में श्रमणों के स्वरूप, भेद एवं उनके द्वारा ग्रहण करने योग्य उपकरणों आदि का भी उल्लेख किया गया है। श्रमण निर्गन्थ वैराग्य के कारण दीक्षा विधि, निष्क्रमण, श्रमण संघ, व्रत, नियम, तपस्या, जिन कल्प, स्थविर कल्प, निर्गन्थ श्रमणों के आहार, आहार-दोष, उपसर्ग, गमनागमन, उपाश्रय, स्थान आदि का भी आचारांग वृत्ति में विवेचन हुआ है। इसमें श्रमण के निषिद्ध योग्य कर्मों आदि का भी विवेचन है। आचारांग सूत्र के नवें उपधान सूत्र में विहार क्षेत्र के मार्ग में होने वाले विविध प्रकार के उपद्रवों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुत स्कन्ध में श्रमण-श्रमणियों की सम्पूर्ण आचार व्यवस्था का विधिवत उल्लेख करते हुए वृत्तिकार ने श्रमण की आहार शुद्धि, स्थान, गति, भाषा, आदि के विवेक एवं आचार विधि की परिशुद्धि का विस्तार के साथ उल्लेख किया है।<sup>३४</sup> इस तरह श्रमण समाज का विवेचन वृत्तिकार की दृष्टि से आचार की महत्वपूर्ण भूमिका को स्थापित करने वाला है, क्योंकि आचार/चरण/क्रिया ज्ञान गुण है और मोक्ष का साधन है।<sup>३५</sup>

## २. गृहस्थ समाज—

आर्य और अनार्य—इन दो भागों में विभक्त गृहस्थ समाज था। अनार्य अनाचारी थे। वे हिंसक प्रवृत्ति वाले थे।<sup>३६</sup> वे अलग-अलग जनपदों में विभक्त थे। आर्य सज्जन प्रवृत्ति वाले थे, जो सदैव जीवों की रक्षा करते थे। आचारांग सूत्र में गृहस्थ को गाहावही, (गाथापति) शब्द से अभिहित किया गया है। वृत्तिकार ने उसे गृहस्थ नाम दिया है। गृहस्थों में गाथापति की पत्नी, गाथापति की बहिन, गाथापति का पुत्र, गाथापति की पुत्री, गाथापति की पुत्र-वधु, धाई, दास, दासी, कर्मकार, आदि को रखा गया है।<sup>३७</sup>

गृहस्थ को आगार, सागार भी कहा जाता है।<sup>३८</sup> गृहस्थ भी विविध कुलों में विभक्त थे। उच्च कुल और नीच कुल। इसके अतिरिक्त गाथापति के कुलों का भी निर्देश है।<sup>३९</sup> गाथापति कुल श्रावक के व्रतों को पालन करते थे। वह श्रमणोचित क्रियाओं को जानते थे। उनकी व्यवस्था एवं उनके संरक्षण में सदैव प्रत्यनशील रहते थे। आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में जहाँ भिक्षु एवं भिक्षुणी का उल्लेख हुआ है वहाँ गाथापति और गाथापति के कुल का भी उल्लेख किया गया है। वे पाँच अणुव्रत, तीन ग्रुण-व्रत, चार दिशा-व्रत। इन बारह व्रतों का पालन करते हुए गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते थे।<sup>४०</sup> गृहस्थ को श्रावक भी कहते हैं।<sup>४१</sup> देश, काल एवं कुल की मर्यादाओं के साथ वे सुख का अनुभव करते हैं।

## शासन-व्यवस्था—

आचारांग सूत्र में आचार सम्बन्धी सूत्रों की तरह शासन-व्यवस्था सम्बन्धी सूत्रों का उल्लेख नहीं है। परन्तु आचारांग सूत्र के वृत्तिकार ने कुछ दृष्टान्तों के

अन्तर्गत राजा, राजपुत्र, रानी, उनके वंश, परिजन, कुटुम्ब, राजप्रासाद, अन्तःपुर, मंत्री, मंत्रीपुत्र, नगर सेठ, दूत, अस्त्र, शस्त्र, यान, आदि का कुछ न कुछ उल्लेख अवश्य होता है। उसी आधार पर यहाँ निर्देश मात्र ही किया जा रहा है। आचारांग में निम्न शासन प्रणालियों का उल्लेख है—

१. अराजक राज्य— शासन प्रणाली से मुक्त राज्य
२. गणराज्य— विशुद्ध शासन प्रणाली
३. यौवराज्य—राजा के होते हुए राजपुत्र को राज्य
४. द्वे राज्य—दो राजाओं का शासन
५. वैराज्य—राजा विहीन शासन प्रणाली
६. विरुद्ध राज्य—एक-दूसरे के राज्य में गमनागमन निषिद्ध

### राजा—

राजा श्रेणिक, राजा सिद्धार्थ,<sup>४२</sup> राजा जितशत्रु,<sup>४३</sup> भीमसेन,<sup>४४</sup> सत्यभामा,<sup>४५</sup> सिंहसेन,<sup>४६</sup> उदयसेन,<sup>४७</sup> चन्द्रगुप्त<sup>४८</sup> आदि राजाओं के नामों का उल्लेख है।

### राजपुत्र—

राजपुत्र को युवराज कहा जाता है। युवराज<sup>४९</sup> का उल्लेख वृत्तिकार ने किया है। जब तक राज्याभिषेक न किया जाए, तब तक वह युवराज कहलाता है।<sup>५०</sup> राजा उदयसेन के दो पुत्र वीरसेन और सूरसेन, भीमसेन का पुत्र भीम और सत्यभामा का पुत्र भामा जैसे युवराजों का उल्लेख है। उज्जैनी के राजा जितशत्रु के दो राजपुत्रों का उल्लेख है जिसमें प्रथम पुत्र धमघोष के नाम का उल्लेख करते हुए वृत्तिकार ने कहा है कि उसने संसार की असारता को जानकर वैराग्य धारण कर लिया था।<sup>५१</sup>

### राजमंत्री—

मंत्री रोहगुप्त<sup>५२</sup> के नाम का ही उल्लेख हुआ है। मंत्री को अमात्य भी कहा जाता है। अमात्य लौकिक पुरुष है।<sup>५३</sup> महत्तर, अमात्य और कुमार के नामों का निर्देश मात्र ही हुआ है।<sup>५४</sup> मंत्री चाणक्य का भी उल्लेख है।<sup>५५</sup>

१. अरायणी—जहाँ का राजा मर गया है, कोई राजा नहीं है।

२. जुवरायाणि—जब तक राज्याभिषेक न किया जाये तब तक वह युवराज कहलाता है।

३. दोरज्जाणी—जहाँ एक राज्य के अभिलाषी दो दावेदार हैं, दोनों कटिबद्ध होकर लड़ते हैं, वह द्विराज्य कहलाता है।

४. वेरज्जाणी—शत्रु राजा ने आकर जिस राज्य को हड़प लिया है, वह वैर राज्य है।

५. विरुद्ध रज्जाणी—जहाँ का राजा धर्म और साधुओं आदि के प्रति विरोधी है। उसका राज्य विरुद्ध राज्य कहलाता है, अथवा जिस राज्य में साधु भ्रान्ति से विरुद्ध (विपरीत) गमन कर रहा है, वह भी विरुद्ध राज्य है।

६. विहं—कई दिनों से पार हो सके, ऐसा अटवी मार्ग।<sup>६६</sup>

इस तरह से राजा के आधीन रहने वाले, राजपुरुषों, मंत्रियों आदि का उल्लेख हुआ है।

### रानियाँ—

राजा, महाराजा, चक्रवर्ती आदि की प्रमुख रानियाँ भी शासन व्यवस्था के सूत्रधार हैं। रानी त्रिशला क्षत्रिय कुल के ज्ञात कुल की प्रमुख रानी थी।<sup>६७</sup> देवी धारणी,<sup>६८</sup> धार्मिक प्रवृत्ति वाली थी। जिसने अपने पिता से धार्मिक भावना प्राप्त की थी। राजाओं की अपेक्षा रानियों का उल्लेख कम ही हुआ है।

वृत्तिकार ने आचारांग के विश्लेषण में राजा, युवराज, महत्तर, अमात्य और कुमार—इन पाँच लौकिक नायकों का कथन किया है। वृत्तिकार ने नायक शब्द का ही प्रयोग किया है।<sup>६९</sup> आचार्य उपाध्याय, प्रभूति, स्थिविर और गणावच्छेदक—इन पाँच स्थानों को लौकोत्तर नायक कहा है।<sup>७०</sup> राजा, राजपुत्र, युवराज आदि के कार्य, सभामण्डप, नगर, वंश, कर्म, नीति, परिषद् आदि भी शासन व्यवस्था के मूल सूत्र हैं।

राज्य की शासन-व्यवस्था में दण्ड व्यवस्था का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। दण्ड को न्याय-व्यवस्था का प्रमुख अङ्ग माना जाता है। परन्तु दण्ड को उस रूप में नहीं लिया गया है क्योंकि यह आचार सम्बन्धी ग्रन्थ आचार शास्त्र की दृष्टि से योग ही दण्ड का परिचायक है, जिसका उल्लेख आचारांग सूत्र के नये अध्ययन उपधान सूत्र में हुआ है। महावीर अनार्य पुरुषों के द्वारा सताये जाते हैं उन पर विविध उपसर्ग होते हैं, पर वे दण्ड की इच्छा नहीं करते हैं। अपितु अपनी इन्द्रिय और मन को वश में करने के लिये यौगिक दण्ड को स्वयं स्वीकार कर लेते हैं।<sup>७१</sup>

न्याय-व्यवस्था में न्यायाधीश द्वारा दण्डित किया जाता है परन्तु यहाँ उसका भी उल्लेख नहीं है।

शासन व्यवस्था के लिये सैनिक व्यवस्था की भी आवश्यकता होती है। युद्ध का उल्लेख आचारांग सूत्र में हुआ है। उसमें भैसों का युद्ध, सांडों का युद्ध, अश्व युद्ध, हस्ति-युद्ध, कर्पिंजर-युद्ध आदि का उल्लेख है।<sup>७२</sup>

### सामाजिक व्यवस्था—

वर्ण, जाति, परिवार, कुटुम्ब, उत्सव, रीति-रिवाज आदि उसके अन्तर्गत आते हैं। शीलंक आचार्य ने अपने युग के अनुसार आचारांग वृत्ति में जो भी विवेचन किया है उसको संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

## वर्ण-व्यवस्था—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, विट और शूद्र—इन चार प्रमुख वर्णों का आचारांग वृत्ति में उल्लेख किया है। इसके प्रारम्भिक अध्ययन के प्रथम उद्देशक में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार नामों का उल्लेख है।<sup>६३</sup> इसी के अन्तर्गत वृत्तिकार ने क्षत्रिय के दो भेद किये हैं—(१) प्रधान क्षत्रिय और (२) शंकर क्षत्रिय।<sup>६४</sup> इसके अनन्तर इसी क्रम में उन्होंने वर्णों के सात भेद और नौ भेद भी किये हैं, जैसे—१. अम्बष्ठ, २. उग्र, ३. निषद, ४. अयोगव, ५. मागध, ६. सूत, ७. क्षता, ८. विदेह, और ९. चाण्डाल।<sup>६५</sup>

उक्त चारों वर्णों की जातियों एवं उपजातियों<sup>६६</sup> को समझाने के लिये निम्न रेखाचित्र भी प्रस्तुत किया गया है—

ब्रह्म पुरुष	क्षत्रिय पुरुष	ब्राह्मण पुरुष	शूद्र पुरुष	वैश्य पुरुष	क्षत्रिय पुरुष
वैश्य स्त्री	शूद्र स्त्री	शूद्र स्त्री	वैश्य स्त्री	क्षत्रिय स्त्री	ब्रह्म स्त्री
अम्बष्ठ	उग्र	निषाद	अयोगव	मागध	सूत
पारासरोवा					
शूद्र पुरुष	वैश्य पुरुष	शूद्र पुरुष			
क्षत्रिय स्त्री	ब्राह्म स्त्री	ब्राह्म स्त्री			
क्षत्रा	वैदेह	चाण्डाल			

उपजातियों की अन्य उपजातियों का रेखाचित्र इस प्रकार है—

अग्र पुरुष	विदेह पुरुष	निषाद पुरुष	शूद्र पुरुष
क्षता स्त्री	क्षता स्त्री	अम्बष्ठी स्त्री	निषाद स्त्री
		शूद्रि स्त्री	
श्वपाक	वैणव	बुक्कस	कुक्कुरक

## उपजातियों का क्रम—

ब्राह्मण पुरुष	वैश्य स्त्री	=	अम्बष्ठ
क्षत्रिय पुरुष	शूद्र स्त्री	=	उग्र
ब्राम्हण पुरुष	शूद्र स्त्री	=	निषाद/पाराशखा
शूद्र पुरुष	वैश्य स्त्री	=	अयोगवं
वैश्य पुरुष	क्षत्रिय स्त्री	=	मागध
क्षत्रिय पुरुष	ब्राह्मण स्त्री	=	सूत
शूद्र पुरुष	क्षत्रिय स्त्री	=	क्षता
वैश्य पुरुष	ब्राह्मण स्त्री	=	वैदेह



शूद्र पुरुष	ब्राह्मण स्त्री	=	चाण्डाल
<b>चार अन्य उपजातियाँ—</b>			
उग्र पुरुष	क्षत्र स्त्री	=	श्वपाक
वैदेह पुरुष	क्षत्र स्त्री	=	वैणव
निषाद पुरुष	अम्बष्ठ स्त्री	=	बुक्कस
शूद्र पुरुष	निषाद स्त्री	=	बुक्कस

इन जातियों के अतिरिक्त अन्य कई जातियों का भी उल्लेख आचारांग वृत्ति में हुआ है, जिसमें चाण्डाल, शवर, भील, किरात, ग्राम कंटक, आदि का उल्लेख भी आता है। चाण्डाल को सोबाक (स्वपाक) शब्द का प्रयोग किया गया है।<sup>६७</sup>

### कुल परिचय—

आचारांग वृत्ति के प्रारम्भ में तीन कुलों का वर्णन है<sup>६८</sup>—

१. पैतृक-कुल, २. ज्ञात-कुल, ३. मातृ-कुल।

इसी क्रम में वृत्तिकार ने गुरुकुल का उल्लेख किया है।<sup>६९</sup> गुरुकुल की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—गुरु के कुल का नाम गुरुकुल है। गुरुकुल अर्थात् गुरु का सान्निध्य एवं उनकी सेवा से युक्त जीवनपर्यन्त गुरु के उपदेशों का जहाँ आचरण किया जाता है, वहाँ गुरुकुल होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुरुकुल गुरु के उपदेशों को जहाँ आचरण कराया जाता है, वह गुरुकुल है।<sup>७०</sup>

१. उग्रकुल—आरक्षिक
२. योगकुल—राज्ञः पूज्यस्थानीय
३. राजन्य कुल—सखि स्थानीय
४. क्षत्रिय कुल—राष्ट्र कूटादय
५. इक्ष्वाकु कुल—ऋषभ स्वाभावशिक
६. हरिवंश कुल—हरिवंशज अरिष्टनेमि आदि
७. एसिअ कुल—गोष्ठ गोपाल ज्ञाति
८. वैश्य कुल—वणिज
९. मण्डक कुल—नापित
१०. कोठगाकुल—काष्ठतक्षक बड़ई या सुथार
११. बोकुशालिय कुल—तन्तुवाय
१२. ग्राम रक्षक कुल<sup>७१</sup>

इन बारह कुलों का उल्लेख इसमें है। इसी प्रकार के अन्य कुलों का भी संकेत किया है। जैसे—चर्मकार, दासी आदि कुल।<sup>१२</sup> इन कुलों को भी दो भागों में विभक्त किया गया है—१. ग्राह्य कुल—अनिन्दित या अगर्हित, २. अप्राह्यकुल—निन्दित या गर्हित।

### कुटुम्ब एवं परिवार—

समाज का गठन परिवार और उनके सदस्यों के गठन से ही होता है। समाज संगठन को सामाजिक संस्था भी कहा जाता है, जिसमें पिता, पुत्र, पुत्री, माता, बहिन, भाई, बन्धु आदि के सदस्य रहते हैं। उनकी जातियाँ परिवार, कुटुम्ब एवं कुटुम्बिक क्रियाएँ जहाँ होती हैं उससे समाज का महत्त्व बढ़ जाता है। समय-समय पर सामाजिक संस्थाएँ विविध प्रकार के कार्यों को करते हैं जिससे समाज के कई रूप हमारे सामने आते हैं, जिनकी संक्षिप्त जानकारी आचारांग सूत्र में भी मिलती है।

### कुटुम्ब परिवार—

परिवार का वृहद् रूप कुटुम्ब है, जिसमें परिवार के सदस्य में एक प्रमुख उत्तरदायी व्यक्ति भी होता है उसमें बालक-बालिका, माता-पिता, भाई-बहिन आदि का समावेश होता है। परिवार में जितने भी सदस्य होते हैं, उनका अपनी-अपनी दृष्टियों से महत्त्व होता है।

आगम साहित्य और उनकी टीकाओं में पारिवारिक सदस्यों का किसी न किसी तरह से उल्लेख हुआ है। आचारांग वृत्ति में माता, पिता, स्वजन, आत्मीयजन, बान्धव, सुहृद् आदि का उल्लेख किया गया है। वे एक दूसरे के सहायक होते हैं। प्राप्त इष्ट मनोरथों के आधार पर भरण-पोषण करते हैं। विपत्तियों की रक्षा के लिये वे सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

आचारांग सूत्र के द्वितीय अध्ययन के प्रथम उद्देशक में माता, पिता, भाई, भगिनी, भार्या, पुत्र, धुआ, धूता (पुत्री), पुत्रवधू, सखी, स्वजन आदि का उल्लेख है।<sup>१३</sup> आचारांग वृत्तिकार ने उक्त सभी की विशेषताओं का उल्लेख किया है।<sup>१४</sup> अन्यत्र भी आचारांग सूत्र में पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू जाति-जन, धाय, राजा, दास-दासी, कर्मचारी, कर्मचारिणी, पाहुन (मेहमान) आदि का भी उल्लेख है।<sup>१५</sup> आचारांग वृत्ति में इस तरह के कई नामों का उल्लेख किया है।<sup>१६</sup>

### सामाजिक नारियाँ—

आचारांग सूत्र में पुत्री, भगिनी, दासी, धाई, कर्मचारिणी, पुत्रवधू, आदि नारियों का उल्लेख है। आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के १५वें अध्ययन में देवानन्दा, ब्राह्मणी, त्रिशलारानी, लालन-पालन करने वाली पांच धाई-माता—(१) क्षीर धातृ, (२) मंजन धातृ, (३) मंडावन धातृ, (४) खेलावण धातृ और (५) अंक धातृ का भी

उल्लेख है।<sup>१८</sup> शेषवती यशोमती या यशस्वती (पुत्री) यशोदा (पत्नी) सुदर्शना (महावीर की बड़ी बहिन) प्रिय दर्शना (पुत्री) विदेह दत्ता (महावीर की माता) आदि के नामों का उल्लेख है। गृहस्थ के नारी पात्रों में गृह पत्नी, पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ, धाई माताएँ, कर्मकारिणी आदि को लिया गया है।<sup>१९</sup> इसी के अन्तर्गत पुरेसथुय (मातृकुल) पच्छसंथुय (सास-ससुर पक्ष) आदि के नाम आए हैं।

### सामाजिक प्रथाएँ—

समाज में कई प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित थीं, जैसे—विवाह, सामाजिक उत्सव, भोज प्रथा, संगीत, नृत्य, हास्य, नाटक, खेल-कूद, भोजन, विविध संस्कार आदि आचारांग की वृत्ति में ये सभी हैं। उत्सव में सभी प्रकार के लोगों को आमंत्रित किया जाता था। कुछ-कुछ उत्सवों में श्रमणों को भी आमंत्रित किया जाता था। द्वितीय श्रुत स्कन्ध के प्रथम उद्देशक में अशन-पान, खाद्य एवं खाद्य के समय पर आहार एषणा के निमित्त श्रमण को आमंत्रित किया जाता था।<sup>२०</sup> इसी में अतिथि, ब्राह्मण के आमंत्रण करने का भी उल्लेख है।

### उत्सव—

उत्सव में कई प्रकार के उत्सव आते हैं। द्वितीय श्रुत स्कन्ध के १५वें अध्ययन में गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण—इन पांच उत्सवों का उल्लेख है।<sup>२१</sup> जन्म उत्सव के बाद नामकरण-संस्कार किया जाता है, जिसका उल्लेख भी आचारांग वृत्ति में है। महावीर के गुणों के आधार पर वर्धमान, सन्मति और महावीर नामकरण किया गया। चूर्णिकार ने वर्धमान, सन्मति और महावीर के शब्दों की विशेषताओं को व्युत्पत्ति के आधार पर प्रस्तुत किया है।<sup>२२</sup> अष्टमी, चतुर्दशी, पोषध्वज, अर्ध मासिक, मासिक, द्विमासिक, त्रय-मासिक, चातुर्मासिक, पञ्च मासिक और षट् मासिक उत्सव, ऋतु सन्धिया और ऋतु परिवर्तनों के उत्सव आदि का भी उल्लेख है।<sup>२३</sup> इन्द्र महोत्सव, स्कन्ध महोत्सव, रुद्र-महोत्सव, मुकुन्द-महोत्सव, भूत-महोत्सव, यक्ष-महोत्सव, नाम-महोत्सव तथा स्तूप, चैत्य, वृक्ष, पर्वत, गुफा, कूप, तालाब, हव (झील), नदी, सरोवर, सागर या आकर (खान) सम्बन्धी महोत्सव एवं अन्य इसी प्रकार के विभिन्न प्रकार के महोत्सव का उल्लेख है।<sup>२४</sup>

### भोजन—

आचारांग सूत्र में कई प्रकार के भोज्य पदार्थों का उल्लेख है। उनमें मूलतः चार प्रमुख आहार हैं<sup>२५</sup>—

१. अशन, २. पान, ३. खाद्य, ४. स्वाद्य।

### असेव्य और अग्राह्य आहार—

असेव्य और अग्राह्य को अप्रासुक और अनेषणीय भी कहा है। अप्रासुक को सचित्त—जीव सहित माना गया है और अनेषणीय को त्रिविध एषणा (गवेषणा,

गहणेषणा, प्रासैषणा) के दोषों से युक्त माना है।<sup>८८</sup> श्रमण एषणीय आहार को ही ग्रहण करता है। अनेषणीय का उन्हें निषेध किया गया है। अनेषणीय अर्थात् दोष से युक्त आहार के बयालीस भेद गिनाये गये हैं।<sup>८९</sup> इसी प्रसंग में अर्ध-पक्व आहार, अति रिच्छछिन्नाओं, तरुणियंवा छिवाडिं, अभज्जियाँ, पिहुयं, भज्जियं, मंथु, बेर<sup>९०</sup> आदि का विवेचन है।

अशन पान आदि के अतिरिक्त भोज्य पदार्थों में फल, पत्र<sup>९१</sup> का भी वर्णन है। आचारांग सूत्र के नवें श्रुतस्कन्ध में सचित सुक्ख (सूखा) क्षीत पिण्ड (शीतल पदार्थ) पुराण, कुर मास (पुराने उड़द), बक्कस, पुलाक, ओदन, मंथु, कूरमास, बोर, कोद्रव, आदि का वर्णन मिलता है आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में पिण्ड, लोय, क्षीर, दही, मक्खन, घृत, गुल्ल, तेल, मधु, मद्य, मांस, सक्कुलि, पाणिय, शिखरिणी, बारह प्रकार के पेय पदार्थों को दर्शाया गया है।<sup>९२</sup> आम रस, कैरी, कपिथ, बिजौरा, मुडिडया, दाख, खजूर, नारियल, केला, बेर, आँवला, इमली और लवंग आदि का भी उल्लेख है।<sup>९३</sup> द्वितीय श्रुतस्कन्ध में भक्ष और अभक्ष पदार्थों का भी वर्णन मिलता है। इस तरह से पानक अशन खाद्य और खाद्य, आहार का वर्णन प्राप्त होता है। आहार को पिण्ड शब्द के रूप में सर्वत्र ग्रहण किया गया है। पिण्डेषणा को ग्यारह उद्देशकों में विविध प्रकार के आहार एवं उनकी विधि-विधान को भी स्पष्ट किया है। आचारांग वृत्तिकार ने “भाए” का अर्थ भात् किया है। इसी तरह से अन्न आहारों के उल्लेख में उनकी विस्तृत विवेचना की है। वृत्तिकार ने गेहूँ, बाजरा, मक्का, जौ को अन्न के रूप में ग्रहण किया है। दोदल वालों को दालों में ग्रहण किया है। “मंथू” शब्द से गेहूँ आदि के चूर्ण को ग्रहण किया है।<sup>९४</sup>

## पान—

पान अर्थात् पीने योग्य पदार्थों में दूध, दही, घी एवं विविध प्रकार के रस लिये जाते हैं। आचारांग सूत्र में प्रायः चारित्र शुद्धि से युक्त श्रमणों के पेय पदार्थों की चर्चा के साथ यह कथन किया गया है कि जिन पेय-पदार्थों से जीव के लिये वाधा न पहुँचे ऐसे पदार्थ ही लेने योग्य हैं, महावीर चर्या में यह कथन किया गया है कि साधु सम्पूर्ण विशुद्धता से युक्त पदार्थों को ग्रहण करे। आहार एषणा के समय में मन, वचन, काया के योगों को संयत करके, साधक आसक्ति रहित होकर पेय पदार्थों को ग्रहण करे।<sup>९५</sup> आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में जो पिण्ड एषणा नामक अध्ययन है, उसमें गौरस का उल्लेख किया है।<sup>९६</sup> इसी अध्ययन के सूत्र नं. ३४० से ३४२ तक में संखड़ी का उल्लेख किया है। संखड़ी में सभी तरह के परिजन उपस्थित होते हैं। वे जहाँ पर रस से युक्त मद्यपान आदि करते हैं इसे सोंड शब्द के रूप में दिया गया है। इसका अर्थ मद्य होता है।<sup>९७</sup> वृत्तिकार ने पाणक जाय अर्थात् पाणक जात (पीने योग्य दाक्षा पान) का उल्लेख किया गया है। इसी प्रसंग

में द्राक्षा, कोल, बदर आम्लीक, पेय पदार्थों का उल्लेख किया है।<sup>१८</sup> द्वितीय श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक में खीर, दही, नवनीत, घृत (गुड़), तेल्ल (तेल), मद्य, मांस, जलेबी, गुड़ राव, पूएँ, शिखणी आदि पेय पदार्थों का उल्लेख किया है।<sup>१९</sup> उक्त प्रत्येक शब्द की वृत्तिकार ने विस्तृत व्याख्या की है। जैसे—गूल्ल, अर्थात् जल से द्रवीकृत पेय पदार्थ गुड़ है।<sup>१००</sup>

### खाद्य—

जो खाया जाये वह पदार्थ खाद्य कहलाता है, जैसे—रोटी, मोदक, आदि।

कुछ खाद्य पदार्थ इस प्रकार हैं—१. मूल—आलू, अदरक, लस्मन, हल्दी। २. कन्द—कमल की जड़, इसे जलज कन्द भी कहा जाता है, पलास कंद, वैदारिका कन्द, स्थलज कन्द आदि भी कन्द हैं, ३. स्कन्ध, ४. त्वचा, ५. शाखा, ६. प्रवाल, ७. पत्र, ८. पुष्प, ९. फल, १०. बीज।

आचारांग वृत्ति में वृत्तिकार ने इसकी विस्तार से चर्चा की है।<sup>१०१</sup> शालूक (अपक्व) वैरालिक, सरसप्प, पीपली, मंथू, बूकनी, आमक्ख दूरक, सागु बीज, ईक्षु, मेरक, अङ्क करेलुक, अग्र बीज, मूल; खंद बीज, स्कन्ध बीज, पोरबीज, काणक, अङ्गारीक (मुर्झाया हुआ), संमिश्र वेनताग्र, लसून, चोयक, आमडाक इत्यादिक खाद्य पदार्थों का उल्लेख किया गया है।<sup>१०२</sup> आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में मूंग, मोठ, चौले, तरवूज, कंकड़ी, सीताफल, पपीता, नींबू, बैल, अनार, अनन्नास आदि-आदि का उल्लेख करके खाद्य पदार्थों की विशेषताओं को गिनाया है।<sup>१०३</sup>

### खाद्य-पदार्थ—

खाद्य अर्थात् ऐसे पदार्थ जिसके सेवन करने से मुख शुद्धि हो। जैसे—इलायची, लौंग, सुपारी आदि। आचारांग वृत्तिकार ने वृत्ति के अन्तर्गत खाद्य पदार्थों की विशेष विवेचना नहीं की है। खाद्य पदार्थ का केवल उल्लेख मात्र है खाद्य योग्य पदार्थ में कर्पूर लवांगादि को ग्रहण किया है।<sup>१०४</sup>

आहार कई प्रकार के थे और जातियाँ भी कई प्रकार की थीं। अनार्य-जाति के लोग रूखा-सूखा भोजन करते थे। उनका भोजन कोदों बेर-चूर्ण एवं कुलथ था। आचारांग वृत्ति में वृत्तिकार द्वारा वर्णित भोज्य पदार्थों का निम्न प्रकार से वर्णन किया है। मूँग और चना आदि की गीली दाल को पीस कर तेल में तल कर तैयार किये गये हींग और जीरे आदि से संस्कृत व्यंजन आदि से युक्त तक्र या छाछ आदि का वर्णन हुआ है। इसका अर्थ दहीबड़ा, रायता, या करम्ब भी किया जा सकता है।<sup>१०५</sup>

इसमें आहार से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी प्रतिपादित की गई कि आहार तत्कालीन समाज में उष्ण रूप में करने की प्रथा थी। अधिक उष्ण भोजन होने पर लोग पंखे, पत्ते, ताल पत्र, शाखा, पक्षी के पंख, मोरपंख, कपड़ा, हाथ या मुँह

आदि से सहायता लेते थे।<sup>१०६</sup> भोजन के लिये थाली एवं कटोरी आदि का भी प्रयोग होता था। भोजन ऊँचे स्थान पर रखा जाता था और भोजन के लिये संचित और अचित्त जल का प्रयोग किया जाता था।<sup>१०७</sup>

श्रमण के आहार आदि का विस्तार से उल्लेख है प्रत्येक अध्ययन में किसी न किसी रूप में श्रमण शिक्षा का विवेचन है। नहीं करने योग्य कार्यों का भी उल्लेख है। आहार के दोषों में सोलह उद्गम के सोलह उत्पादन तथा दस एषणा सम्बन्धी आहार के दोषों का वृत्तिकार ने वर्णन किया है।<sup>१०८</sup>

द्वितीय श्रुतस्कन्ध के प्रारम्भिक विवेचन में आहार की जिस विधि का विवेचन किया गया है उस पर स्वतन्त्र रूप से विस्तृत समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। कण (धान्यकण) कणकुण्डक कणो सक मिश्रित चोकर, कण कुशालि (कणों से मिश्रित रोटी), चाऊल (चावल), चाऊलिपिठ (चावलों का आटा) तेल (तिलपीठ) तिल पप्पडक (तिल पपड़ी) आदि।<sup>१०९</sup>

## भोज—

अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य—इस प्रकार के चार भोज्य पदार्थों का वर्णन आचारांग सूत्र एवं आचारांग वृत्ति में भी किया गया है। इन भोज्य पदार्थों को विशेष आयोजनों पर देने की व्यवस्था का भी उल्लेख है। विशेष भोज में पारिवारिक सदस्यों, कुटुम्बीजनों, इष्ट-मित्रों, दास-दासी, नौकर-चाकर, राजपुरुष, राज कर्मचारी आदि को निमंत्रित किया जाता था और अधिक दूरी पर रहने वाले कुटुम्बीजनों और मित्रों आदि को भोज्य पदार्थ भेजे जाते थे। भोज्य-पदार्थों में आमंत्रित किये जाने वाले व्यक्तियों के लिये भोजन सात्विक एवं संध्या काल के पूर्व ही कराया जाता था। अर्थात् इससे यह स्पष्ट होता है कि अधिकतर विशिष्ट भोज संध्याकाल में ही होते थे।<sup>११०</sup>

आचारांग में दो प्रकार की भोज व्यवस्था का उल्लेख है—

१. **आहेणं**—विवाह के बाद जब नववधू गृह प्रवेश करती थी, उस समय वर पक्ष के लोग जो भोज देते थे, वह आहेणं कहलाता था।

२. **पहेणं**—विवाह में या बाद में वधू को लेने के लिये गये अतिथियों के सम्मान में जो भोज दिया जाता था, वह पहेणं भोज कहलाता था। इसके अतिरिक्त मरण भोज को हिंगोल भोज कहा जाता था। उत्सव विशेष पर या ऋतु आदि प्रारम्भ होने पर भी भोज कराया जाता था। ऋतु भोज में अर्थात् तपस्या आदि की पारणा में व्रत उद्यापन में या अन्य किसी धार्मिक प्रसंग के आयोजनों में विशेष रूप से श्रमणों, ब्राह्मणों तथा अतिथियों को भी निमंत्रित किया जाता था।<sup>१११</sup> भोज पदार्थ प्रायः धृष्ट प्रकृति वाले होते थे। कई प्रकार के उदर रोग भी हो जाते थे।<sup>११२</sup> धृष्ट

एवं रसज्ञ भोजनों में श्रमण आसक्त नहीं होते थे। इस तरह उस समय में भोज व्यवस्था का उल्लेख हमारी संस्कृति और सभ्यता का आदर्श कहा जा सकता है।

### आवास—

आवास को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—१. श्रमणावास और २. श्रावकावास।

### श्रमणावास—

उपधान सूत्र के नवें अध्ययन में श्रमणों के आवासों का उल्लेख किया गया है। श्रमण मूलतः आवेषण, सभा गृह, प्याऊ, पण्णशाला, (दुकान) पलित-स्थान (लौहार, सुधार, सुनार आदि के कर्म स्थान (कारखाने) पलाल पुँज, आगन्तार (यात्रीगृह, धर्मशाला) आरामागार (आरामगृह, विश्रामगृह) ग्राम या नगर के एकान्त स्थान, श्मशान, शून्यागार, वृक्ष मूल आदि आवासों में रहते थे। आचारांग में आवास या वास शब्द का प्रयोग ही किया है। वृत्तिकार ने इसकी विस्तार से व्याख्या की है उन्होंने भी साधु के ठहरने योग्य स्थानों को “वास” कहा है। आवास के लिये शयन शब्द या वसति शब्द का प्रयोग भी किया है।<sup>११३</sup>

### श्रावकावास—

ग्राम, नगर, खेड़ा, कंमवड़ (करवट), भडम्ब, पाहण (पत्तन), द्रोण मुख, आगर, आश्रम, सन्निवेश, निगम, जनपद, राजधानी, देश आदि गृहस्थों के आवास आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में आवासों की पृथक्-पृथक् पहचान का भी विवेचन किया है। जैसे—मंचमाल (प्रतीत) प्रासाद द्वितीय भूमिका—एक माले से अधिक हरमतल (भूमि गृह)<sup>११४</sup> शान्ति कर्मगृह, ( जहाँ पर शान्ति कर्म किया जाता है ऐसा गृह) गीरिगृह (पर्वत के ऊपर स्थित गृह) कन्दर (गिरिगुफा) शैलोप प्रस्थापन (पाषाण मंडप)<sup>११५</sup> इत्यादिक ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, पट्टन वेश आदि का विवेचन किया है।<sup>११६</sup>

### गृह—

गृह अर्थात् मकान कई प्रकार के होते थे, जिन्हें मठ, प्रासाद, हमंतल, आरामागार, अन्तागार कहते हैं। घर प्रायः बड़े एवं विशाल परिजनों से युक्त होते थे। गृहस्थों के घरों को मायापति कुल के नाम से जाना जाता था।<sup>११७</sup> इससे यह विदित होता है कि उस समय घर बनाने की कला विकसित थी। इसलिये छोटे-बड़े घरों का उल्लेख आचारांग वृत्ति में किया गया है। मकान में वातायन (खिड़की<sup>११८</sup>), (आलोक स्थान), दरवाजे, एक के ऊपर एक मंजिले आदि भी मकानों के बनाये जाते थे। मकान जर्जर होने पर उन्हें ठीक करवाया जाता था या छोड़ दिया जाता था। ऐसे स्थान निर्जन स्थान या एकान्त स्थान की संज्ञा प्राप्त कर लेते थे। आगन्तार, पथिक-शाला, आराम गृह, एकान्त स्थान के लिये प्रचलित हैं। वृत्तिकार ने पाँच प्रकार के व्यक्तियों का उल्लेख किया है। जैसे—देवेन्द्र, राजा, गृहपति, सामारिक और साधर्मिक। अर्थात्

इन व्यक्तियों के अनुसार ही उनके मकान होना आवश्यक है, जिसे वसति शब्द के रूप में उल्लेखित किया है।<sup>११९</sup>

### वस्त्राभूषण—

श्रमण एवं गृहस्थों की अपेक्षा विविध प्रकारों को समझा जा सकता है। भिक्षु छः प्रकार के वस्त्रों की गवेषणा कर सकता है। जैसे—१. जंगिय (जागमिक), २. भंगिय (भांगिक), ३. साणय (सानिक), ४. पोत्तग (पोत्रक), ५. खोमिय (लोकिक) और ६. तूलकड (तूलकृत)।<sup>१२०</sup>

वृत्तिकार ने निक्षेप की दृष्टि से दो भेद भी किये हैं—द्रव्य वस्त्र और भाव वस्त्र। द्रव्य वस्त्र के तीन भेद किये हैं—१. एकेन्द्रिय निष्पन्न (कपास कृत वस्त्र), २. विकलेन्द्रिय निष्पन्न (चीनांसू वस्त्र), ३. पञ्चेन्द्रिय (निष्पन्न) कम्बल रत्न आदि। भाववस्त्र शील की अपेक्षा से अठारह हजार बतलाये गये हैं जिन्हें दिशायें या आकाश के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कौशेय, कंबल, कार्पासिक, क्षौम (अलसी की छाल से बना) शाणज (सन से बना), भंगज (भंग की छाल से बना हुआ) वस्त्र। इसके अतिरिक्त—कृष्ण, मृगचर्म, रूस (मृग विशेष), चर्म एवं छाग—चर्म, सन का वस्त्र, क्षुपा (अलसी) एवं मेष (भेड़) के लोम से बना वस्त्र।<sup>१२१</sup>

वस्त्रों की तरह आभूषणों का भी विवेचन किया गया है। आभूषण मूलतः सोने एवं चाँदी के होते थे। विविध प्रकार के रत्न, मणियों एवं मुक्ताओं से अलंकृत किये जाते थे। वृत्तिकार ने कनक रस, कनक कांति कनक पट्ट, कनक स्पष्ट शब्द के द्वारा यह संकेत किया है कि प्रायः आभरण सोने के बनते थे। इसके अतिरिक्त विविध प्रकार के आभरणों का उल्लेख किया है। उसमें व्याध चर्म से बने हुए वस्त्र का भी उल्लेख है।<sup>१२२</sup>

कुछ आभूषण धागे से गुँथे हुए भी थे, जैसे—कुंडल, रत्नावली हार<sup>१२३</sup> आदि सभी आभूषण या आभरण बहुमूल्य होते थे। उनके खो जाने पर चिन्ता भी गृहस्थ को होती थी। उन पर विविध प्रकार के बेल-बूटे, फूल-पत्ती आदि भी बनाये जाते थे। वस्त्र या आभूषण का प्रतिवेदन श्रमण अवश्य करता था। क्योंकि बहुमूल्य वस्तुओं में दोष अवश्य होता है इसलिये उनका प्रतिलेखन साधु करता था। परन्तु स्वयं के लिये उचित वस्त्रों को धारण करता था। आभूषण धारण करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। साज-सज्जा से युक्त विलासता पूर्ण वस्त्र साधु जीवन में सर्वथा वर्जनीय थे।<sup>१२४</sup> आभूषणों में हार (अठारह लड़ी वाला), अर्धहार (नौ लड़ी का) वक्षस्थल का आभूषण (गले का आभूषण) मुकुट, लम्बी माला, स्वर्ण सूत्र आदि का भी उल्लेख है।<sup>१२५</sup>



## रोग-उपचार—

आचारांग सूत्र के छठे अध्ययन में सोलह प्रकार के रोगों का उल्लेख किया गया है।<sup>१२६</sup>

१. गंडी—चात, पित्त, श्लेष और सन्निपात—ये चार गंडी रोग हैं। इसे माला रोग भी कहा जाता है अर्थात् गंडमाला नाम भी प्रसिद्ध है।

२. कोढ़ी—अर्थात् कुष्ठी, कुष्ठ रोगी, इस रोग के अठारह भेद गिनाये गये हैं। इनमें से सात महाकुष्ठ रोग हैं, जैसे—अरुण, उदुम्बर, निश्य, जिन्ह, कपाल, कापनाद, पौण्डरीक और ददु। ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ रोग हैं, जैसे—स्थूलारुस्क, महाकुष्ठ, ककुष्ठ, चर्मदल, परिसर्प, विसर्प, सिध्म, विचचिका, किटिभ, पामा और शवारुक आदि।

३. राजसी—राजसी, राजांसी, राजयक्ष्मा, दमा।

४. अपस्मात—वात, पित्त, श्लेष्म और सन्निपातज की अपेक्षा से चार प्रकार का है। इसमें व्यक्ति सत् और असत् के विवेक से रहित हो जाता है तथा भ्रम मुर्च्छा काम अवस्था का अनुभव करने लगता है। भ्रम के आवेश से संशरण करने लगता है। दोष युक्त होकर स्मृतिहीन हो जाता है।

५. काणिक—अक्षी रोग

६. झिमिय—जड़ता

७. कुणिय—गर्भ रोग

८. खज्जिय—कुबड़ापन

९. उदरि—जलोदर आदि रोग

१०. मूय—गूंगा

११. सूणीय—सूनत्व (अवयवों का शून्य हो जाना)

१२. गिलासणी—भस्मक व्याधि

१३. बेबई—कम्पन

१४. पीठसप्पि—जन्तु गर्भ दोष

१५. सिलिवष—स्त्रीपद (कठोर पैर)

१६. मह मेहणि—मधुमेह, प्रमेय

इस तरह के रोगों का उल्लेख आचारांग में किया गया है। उन रोगों के निदान के लिये कई प्रकार के उपचारों का उल्लेख किया गया है। जैसे—श्वास रोग के रोगी के लिये द्रव्य औषधी की अपेक्षा गात्र का (शरीर के) संशोधन, शोधन और विरेचन की आवश्यकता होती है। शरीर को पुष्ट करने के लिये सहस्र पाक तेल की

मालिश का उल्लेख है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिये स्निग्ध पदार्थों की अपेक्षा रुक्ष पदार्थों पर विशेष बल दिया गया है। कोद्र, ओटन, मंथू, कुलमास आदि जैसे धान्य बलवर्धक हैं।<sup>१२८</sup>

चिकित्सा पद्धति का प्रयोग चिकित्सक किया करते थे।<sup>१२९</sup> चिकित्सक विविध प्रकार की औषधियों के अतिरिक्त शरीर को स्वस्थ रखने के लिये विरेचन, संशोधन, संवर्धन, स्नान, संवाहन, आदि पर बल देते थे। रोगी के उपचार के लिये चिकित्सक विविध प्रकार के क्वाथ (काठे) रक्तवर्धन औषधियों, भस्मों एवं चूर्ण आदि का प्रयोग करते थे। कई एक रोगों के उपचार के लिये चिकित्सक शारीरिक लेप पर भी बल देते थे। लेप में भी चन्दन, हल्दी आदि के लेप प्रमुख थे।<sup>१३०</sup>

चिकित्सा पद्धति में चिकित्सक शुद्धता और अशुद्धता को ध्यान में रखकर वचन बल से एवं मंत्र आदि के सामर्थ्य से भी रोग निदान करता था।<sup>१३१</sup>

### मनोरंजन के साधन—

हजारों वर्ष पूर्व की संस्कृति में भी हर्ष युक्त शब्द, कर्ण प्रिय शब्द, कर्ण कटु शब्द, निन्दा, गाली आदि का प्रचलन था। व्यक्ति अपने मनोरंजन के लिये जहाँ ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की श्रेष्ठता का गुणगान करता था; गुरु के प्रति श्रद्धावन्त होता था; दीन-दुःखी जीवों के प्रति करुणा भाव एवं श्रमणों के प्रति स्थितिपरक शब्दों का प्रयोग करता था; वहाँ लौकिक व्यवहार में अपनी-अपनी भंगिमाओं के अनुसार विविध प्रकार के वाद्यों, संगीत आदि के माध्यमों से मनोरंजन करता था।

वृत्तिकार ने मूलतः दो प्रकार की शब्द शक्तियों को अङ्कित किया है—१. द्रव्य शब्द और २. भाव शब्द। द्रव्य शब्द में मृदंग आदि के शब्दों को रखा है और भाव शब्द में अहिंसक विचारों को रखा है। अहिंसक भाव कीर्ति युक्त होते थे। उसमें उप अतिशयों से युक्त भगवन् जिनेन्द के गुणों का गुणगान किया जाता था।<sup>१३२</sup>

मनोरंजन के लिये कथानक (आख्यायिका कथा), नृत्य, गीत, नाटक आदि का प्रयोग किया जाता था।<sup>१३३</sup> कुछ युद्ध आदि भी होते थे, उनमें महीप युद्ध (भैंसे का युद्ध), वृषभ युद्ध (बैल का युद्ध), अश्व युद्ध (घोड़ों का युद्ध) और कपिजल युद्ध आदि प्रसिद्ध थे।<sup>१३४</sup>

वाद्य यंत्रों में मृदंग, नदी, जलरी, वीणा, विषंची, बधीशक्त, तूनक, ढोल, तुम्बवीणा, ढन्कुल, कंसताल, लतिका, घोदिका, शंख, वेणु, बाँस (बाँसुरी), खरमूही, किरकिरी, तोहाडीको, पीरिपरिय, कौलियक आदि प्रसिद्ध थे।<sup>१३५</sup>

मूलतः ये मनोरंजन ग्रामों, नगरों के तिराहों, चौपालों, चौराहों, चतुर्मुख स्थानों, अट्टालिकाओं, राजमार्गों, नगर द्वारों, आरामगारों, उद्यानों, वनों, उपवनों, देवालियों, सभाओं

आदि में किये जाते थे। मनोरंजन को देखने के लिये सभी तरह के लोग उपस्थित होते थे तथा वे अपनी शक्ति, भक्ति या वाद्य कला का प्रदर्शन भी करते थे।

विवाह मण्डपों में अश्व युगल स्थानों में और हस्ति युगल स्थानों में भी मनोरंजन होते थे, कथा करने के स्थान पर घुड़-दौड़, कुश्ती, प्रतियोगिता या अन्य बड़े-बड़े स्थानों पर विशेष महोत्सवों के अवसर पर नृत्य गीत, वाद्य, तंत्री, तल, ताल, तुटित् वाद्य एवं अन्य मनोरंजन को प्रदान करने वाले साधनों का उपयोग किया जाता था। मनोरंजन के समय में स्त्रियाँ पुरुष, बुद्ध, डहर (बालक) एवं युवक विशेष आभूषणों से युक्त होकर गीत गाते हैं। वाद्य बजाते हैं, नाचते हैं, हँसते हैं, रमण करते हैं, एक दूसरे को मोहित करते हैं, बहुत से अशन, पान और खाद्य का उपयोग भी करते हैं। परस्पर उन पदार्थों को बाँटते हैं, परोसते हैं, परित्याग करते हैं, और कभी-कभी तिरस्कार भी करते हैं।<sup>१३६</sup>

## वाणिज्य—

वाणिज्य कर्म विशेष रूप से प्रत्येक युग में होते रहे हैं, वाणिज्य कर्म को करने वाले व्यक्ति के लिये वैश्य या वणिक कहा जाता है। वैश्य के समुदाय को वैश्य कुल कहा गया है। वैश्य १५ प्रकार के व्यापार को करता था जिसे आगमों की भाषा में कर्मादान कहा गया है। ये कर्मादान इस प्रकार हैं—

१. इगालकम्मे (अंगार-कर्म), २. वणकम्म (वन-कर्म), ३. साड़ी-कम्म (साठी का कर्म), ४. भाड़ी-कम्म (भाटी-कर्म), ५. फोड़ी-कम्म (फोटी-कर्म), ६. दंत-वाणिज्य (दन्त-वाणिज्य), ७. लख-वाणिज्य (लाख-वाणिज्य), ८. रस-वाणिज्य (रस-वाणिज्य), ९. केस-वाणिज्य (केश-वाणिज्य), १०. विस-वाणिज्य (विश-वाणिज्य), ११. जंत-पीलण-कम्मे (यंत्र पीलण कर्म), १२. निललछण-कम्म (निल्लछन कर्म), १३. दवगिगदावणया (दावागि कर्म), १४. सरदहतलाय सोसणया (सरदहतलाय शोषणता), १५. असईवण पोसणया (असति जन पोषण)।

कर्म-समारम्भ अर्थात् विविध प्रकार की क्रियाओं को वणिक करते थे। क्षेत्र, वस्तु, धन, धान्य, त्रणिक, काष्ठ-संचय, यान,<sup>१३७</sup> वाहन, भोजन, पान, पात्र, कम्बल, स्वर्ण, रजत, माणिक्य आदि वस्तुओं का क्रय एवं विक्रय किया जाता था।

व्यापार में मनुष्य और पशु दोनों को ही सेवक रूप में रखा जाता था। तुला आदि नापने के साधन भी थे।<sup>१३८</sup> व्यापार के लिये व्यापारी आपणक अर्थात् दुकान भी रखते थे। इसे पणशाला भी कहा जाता था तथा पणियशाला भी इसे कहा गया है।<sup>१३९</sup> वस्तुओं की खरीद के लिये दीनार नामक मुद्रा का प्रचलन था।<sup>१४०</sup>

कई प्रकार के व्यापारों में पशु व्यापार तथा दास, दासी, नौकर, चाकर आदि का व्यापार भी प्रचलित था। घी, दूध, दही, मक्खन, वस्त्र आदि का व्यापार भी होता था।<sup>१४१</sup> उस समय में जो मुद्राएँ प्रचलित थीं उन मुद्राओं में कुछ ऐसी मुद्राएँ भी प्रचलित थीं जिनमें खोटे सिक्के को स्थान भी दिया जा सकता है। अर्थात् क्रय करने वाले व्यक्ति वस्तुओं के खरीदने के लिये जिन सिक्कों का प्रयोग करता था, उनमें नकली सिक्के भी प्रचलित हो गये थे।

## कृषि—

वन, उपवन, आदि की व्यापकता के साथ कृषि कर्म की व्यापकता भी थी। गृहस्थ अपनी आजीविका के लिये विविध प्रकार के धान्यों की उपज करते थे और उससे निश्चित ही अपनी आजीविका चलाते रहे होंगे। इसलिये वृत्तिकार ने कृषि सेवा का प्रयोग किया है।<sup>१४२</sup> "जंतपिलणकम्म दवग्गीदावणिया कम्म" कृषि से सम्बन्धित ही कर्म हैं। कृषि कर्म करने वाले किसानों के खेतों में जो मचान होते थे, वे पलालपुंज के बनाये जाते थे।<sup>१४३</sup> कृषक कृषि कर्म के साथ-साथ दूध, दही, मक्खन एवं पशु-पालन आदि क्रियाओं को भी करते थे।<sup>१४४</sup>

## मान्यताएँ—

आचारांग में आचार-विचार सम्बन्धी विवेचन पर्याप्त रूप में हुआ है परन्तु कुछ ऐसी प्रथाएँ हैं जो सामाजिक चिंतन के लिये महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। आचारांग के धूतवाद का व्याख्यान कई प्रकार की मान्यताओं को प्रस्तुत करता है, जैसे—अभिषेक, अभिसम्भूत, अभिसंजात, अभिनिश्चय, अभिसम्बुद्ध, अभिसम्बद्ध, आक्रन्दन,<sup>१४५</sup> आतुर लोक<sup>१४६</sup>, विद्युत कल्पी,<sup>१४७</sup> भातृ सम्मान, आचार्य भक्ति, स्नेह भाव, सहिष्णुता<sup>१४८</sup> आदि मान्यताओं का उल्लेख है। धरोहर प्रथा, ईमानदारी, एक दूसरे के प्रति विश्वास का भी उल्लेख है। मृतक देह का विसर्जन करने के लिये श्मशान भूमि का वर्णन है। वृत्तिकार ने श्मशान को पितृवन कहा है<sup>१४९</sup> धर्मचक्र प्रवर्तन चैत्य निर्माण<sup>१५०</sup> और स्तूप<sup>१५१</sup> बनवाने की प्रथा भी प्रचलित थी।

पुत्र-जन्मोत्सव, भक्ति, पूजा, गुरु-उपासना, सेवाभाव, आत्म-प्रशंसा, मंत्र-सिद्धि, यज्ञ, देवी-देवताओं के चैत्य, पर्वत, गुफाएँ, तालाब, नदी आदि बनवाने की प्रथाएँ भी प्रचलित थीं। विविध उत्सवों के साथ गाथापति, गाथापति-कुल एवं अन्य परिजनों आदि के विचारों का उल्लेख है। अन्य कई मान्यताएँ भी प्रचलित थीं, जैसे—मुण्डन संस्कार, कर्ण छेदन, भेदन आदि।

नभोदेव, गर्ज देव, विद्युत देव, प्रविष्ट देव, निविष्ट देव, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, अग्नि, जल, समुद्र, पृथ्वी, वायु आदि प्रकृति की सम्पदाओं को देवता मानने जैसी प्रथाएँ भी थीं।

## पशु-पक्षी—

आचारांग में विविध प्रकार के जीवों का विवेचन है। त्रसकाय जीवों में मनुष्य तथा पशु-पक्षी आते हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक जीव त्रस होते हैं। वे अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदन, संमूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक—इस तरह आठ प्रकार के जीवों में कई श्रेणियाँ आ गई हैं। उत्पत्ति स्थान की दृष्टि से उन जीवों का विस्तार जानना आवश्यक है। इसलिये उनका विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार से किया जा रहा है—

१. अंडज—अंडों से उत्पन्न होने वाले मयूर, कबूतर, हंस आदि।

२. पोतज—पोत अर्थात् चर्ममय थैली। पोत से उत्पन्न होने वाले पोतज, जैसे—हाथी, वल्गुली आदि।

३. जरायुज—जरायु का अर्थ है गर्भ-वेष्टन या वह झिल्ली, जो जन्म के समय शिशु को आवृत किये रहती है। इसे “जैर” भी कहते हैं। जरायु के साथ उत्पन्न होने वाले जैसे—गाय, भैंस आदि।

४. रसज—छाछ, दही आदि रस विकृत होने पर इनमें जो कृमि आदि उत्पन्न हो जाते हैं, वे रसज कहे जाते हैं।

५. संस्वेदन—पसीने से उत्पन्न होने वाले, जैसे—जू, लीख आदि।

६. संमूर्च्छिम—बाहरी वातावरण के संयोग से उत्पन्न होने वाले, जैसे—मक्खी, मच्छर, चींटी, भ्रमर आदि।

७. उद्भिज्ज—भूमि को फोड़कर निकलने वाले, जैसे—टीड, पतंगे आदि।

८. औपपातिक—“उपपात” का शाब्दिक अर्थ है—सहसा घटने वाली घटना। आगम की दृष्टि से देवता शंखा में, नारक कुम्भी में उत्पन्न होकर एक मुहूर्त के भीतर ही पूर्ण युवा बन जाते हैं, इसलिये वे औपपातिक कहलाते हैं।<sup>१५६</sup>

पशुओं में मृग, शूकर, चित्रक, मूषक, वारड्डाट (हाथी), वराहा<sup>१५७</sup>, सिंह, श्वान<sup>१५८</sup> कुत्ता, मार्जरी,<sup>१५९</sup> रीछ, गो, महिष, बैल, कुक्कुट<sup>१६०</sup> आदि पशुओं का उल्लेख मिलता है।

## दण्ड-व्यवस्था—

समाज में कई प्रकार के दोष व्याप्त थे। व्यक्ति विविध प्रकार के बलों का प्रयोग करते थे अर्थ के लोभ की प्रवृत्ति थी। इसलिये चोर या लुटेरे भी व्याप्त थे। इसलिये कई प्रकार की दण्ड व्यवस्था थी। आचारांग में आठ कार्य ऐसे हैं जिनके लिये दण्ड भी दिया जाता था। वृत्तिकार ने उनकी विस्तार से चर्चा की है दण्ड क्रिया में दण्ड समादान शब्द का प्रयोग हुआ है<sup>१६३</sup>—

१. शरीर-बल—शरीर की शक्ति को बढ़ाने के लिये मद्य, मांस आदि का सेवन करता है।

२. ज्ञाति-बल—स्वयं अजेय होने के लिये स्वजन सम्बन्धियों को शक्तिमान बनाता है स्वजन वर्ग की शक्ति को भी अपनी शक्ति मानता है।

३. मित्र-बल—धन प्राप्ति तथा प्रतिष्ठा सम्मान आदि मानसिक तुष्टि के लिये शक्ति को बढ़ाता है।

४. प्रेत्य-बल

५. देव-बल—परलोक में सुख पाने के लिये तथा देवता आदि को प्रसन्न कर उनकी शक्ति पाने के लिये यज्ञ, पशुबलि, पिण्डदान आदि करता है।

६. राज-बल—राजा का सम्मान एवं सहारा पाने के लिये कूटनीतिक चालें चलता है, शत्रु आदि को परास्त करने में सहायक बनता है।

७. वीर-बल—धन प्राप्ति तथा आतंक जमाने के लिये चोर आदि के साथ गठबन्धन करता है।

८. अतिथि-बल

९. कृपण-बल

१०. श्रमण-बल—अतिथि-मेहमान, भिक्षुक आदि, कृपण (अनाथ, अपंग, याचक) और श्रमण—आजीवक, शाक्य तथा निर्ग्रन्थ इनको यश, कीर्ति और धर्म पुण्य की प्राप्ति के लिये दान देता है।

चोर एवं दस्यु मकानों में सेंध लगाकर चोरी भी करते थे। दण्ड के रूप में अपराधी के लिये कारागार में डालने की व्यवस्था थी। अपराध के अनुसार अन्न छेदन की प्रथा भी थी।

प्रस्तुत समग्र विवेचन समाज की सामाजिक परिस्थितियों एवं समाज की व्यवस्थाओं का प्रतिपादन करने वाला है। समाज और समाज की संस्कृति का लेखा-जोखा विस्तार से आचारांग वृत्ति में प्रतिपादित किया गया है। उसी के अनुसार कुछ पक्षों को देखने का प्रयास समाज और संस्कृति के पक्ष को प्रतिपादित कर सकेगा। मूलतः आचारांग का समाज श्रमण समाज और गृहस्थ समाज है। श्रमण जो कुछ भी समाज में घटित होता है, उनके समाधान के लिये न्यायाधीश नहीं बन जाते हैं, वे तो सदैव समभाव की प्रवृत्ति को लिये हुए धार्मिक जीवन से आगे बढ़ते हैं, समाज को भी यही दृष्टि प्रदान करते हैं जिससे समाज का सामाजिक वर्ग अच्छे-बुरे का परिज्ञान करके सात्विक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो सके, ऐसा प्रयत्न करते हैं।

सांस्कृतिक मूल्यों में नगर, नदी, पर्वत, न्याय व्यवस्था, राजनीति व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, दण्ड व्यवस्था आदि सब कुछ हमारी संस्कृति के पूर्व में विद्यमान

पक्षों की समीक्षा करते हैं। आचारांग वृत्ति के वृत्तिकार शीलांक आचार्य ने श्रमण धर्म के इस बहुमूल्य एवं सर्वप्रथम आचार सिद्धान्त की विवेचना करने वाले आचारांग सूत्र ग्रन्थ में जो कुछ भी कथन थे, उस पर सम्यक् रूप से विवेचन किया। उसमें सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि जितने भी पक्ष थे, उन पक्षों पर प्रकाश डालना सहज कार्य नहीं है फिर भी यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री को समेट कर समाज के स्वरूप का एक सांस्कृतिक पक्ष अपने आप में महत्त्वपूर्ण होगा।

इसमें ऐतिहासिक सामग्री, धार्मिक व्यवस्था, श्रमण समाज, गृहस्थ समाज, शासन व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, कुटुम्ब एवं परिवार प्रथाएँ, उत्सव, भोजन, आवास, गृह, वस्त्राभूषण, रोग-उपचार, मनोरंजन के साधन, वाणिज्य, कृषि, प्रथाएँ, पशु-पक्षी, दण्ड व्यवस्था आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।



## सन्दर्भ ग्रन्थ

१. आचारांग वृत्ति, पृ. १
२. वही, पृ. ३
३. वही, पृ. ४
४. वही, पृ. ९७
५. वही, पृ. २१८
६. वही, पृ. १७१
७. वही, पृ. २१८
८. वही, पृ. ८६
९. वही, पृ. १७१
१०. (क) आचारांग सूत्र २/३६८  
(ख) आ. वृत्ति २१०
११. वही, पृ. १३४
१२. वही, पृ. १८७
१३. आचारांग सूत्र २/२९८
१४. आचारांग वृत्ति, २०१
१५. वही, पृ. २०१
१६. वही, पृ. २०५
१७. आचारांग वृत्ति, पृ. २१९
१८. वही, पृ. २१९
१९. वही, पृ. २१९
२०. आचारांग वृत्ति, पृ. २८६
२१. आचारांग सूत्र १/३
२२. आचारांग वृत्ति, पृ. १३५ "श्राम्यतीति श्रमणो"
२३. आचारांग वृत्ति, पृ. २४
२४. (क) आचारांग सूत्र १/४, पृ. २१  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. ३६, ३७
२५. वही, पृ. ३५
२६. आचारांग वृत्ति, पृ. ३५
२७. वही, पृ. १८
२८. आचारांग वृत्ति, पृ. १८



२९. वही, पृ. २३
३०. वही, पृ. १८०, १८२
३१. आचारांग वृत्ति, पृ. २३६
३२. आचारांग वृत्ति, पृ. ७९
३३. (क) आचारांग वृत्ति, सूत्र २, पृ. १८  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. २१५
३४. आचारांग वृत्ति, पृ. २१३
३५. वही, पृ. २८८
३६. आचारांग वृत्ति, पृ. २०७
३७. वही, पृ. २१९
३८. आचारांग वृत्ति, पृ. २०१
३९. वही, पृ. २१६
४०. आचारांग वृत्ति,
४१. वही, पृ. ५९
४२. आचारांग वृत्ति, पृ. २८१
४३. वही, पृ. १४
४४. वही, पृ. ११८
४५. वही, पृ. ११८
४६. वही, पृ. १२५
४७. वही, पृ. ११८
४८. वही, पृ. १७०
४९. आचारांग वृत्ति, पृ. ५९
५०. वही, पृ. २५२
५१. आचारांग वृत्ति, पृ. १६५, १६६
५२. वही, पृ. १२५
५३. वही, पृ. ५९
५४. वही, पृ. ५९
५५. वही, पृ. १७०
५६. वही, पृ. २५२
५७. आचारांग वृत्ति, पृ. २८१
५८. वही, पृ. १४
५९. वही, पृ. ५९
६०. वही, पृ. ५९
६१. वही, पृ. २००, २०६

६२. आचारांग वृत्ति, पृ. १११  
 ६३. वही, पृ. ६  
 ६४. वही, पृ. ६  
 ६५. आचारांग वृत्ति, पृ. ६  
 ६६. आचारांग वृत्ति, पृ. २१०  
 ६७. आचारांग वृत्ति, पृ. २१०  
 ६८. आचारांग वृत्ति, पृ. २  
 ६९. वही, पृ. ८  
 ७०. वही, पृ. १३५  
 ७१. आचारांग वृत्ति, पृ. २१८  
 ७२. वही, पृ. २१८  
 ७३. आचारांग वृत्ति, पृ. ७२  
 ७४. आचारांग सूत्र २/१, पृ. ४०  
 ७५. आचारांग वृत्ति, पृ. ६७  
 ७६. आचारांग सूत्र २/५, पृ. ५९  
 ७७. आचारांग वृत्ति, पृ. ८७  
 ७८. आचारांग सूत्र द्वि, पृ. १५/३७०  
 ७९. (क) आचारांग सूत्र द्वि. श्रु. ४/४६  
 (ख) आचारांग वृत्ति, पृ. २२४  
 ८०. वही, पृ. २२४  
 ८१. आचारांग सूत्र द्वि. श्रु. १/५  
 ८२. वही, २/१/१६  
 ८३. आचारांग सूत्र २/१५/३६२  
 ८४. आचारांग वृत्ति, पृ. २८१  
 ८५. आचारांग सूत्र २/१/२२  
 ८६. आचारांग सूत्र २/२६  
 ८७. आचारांग वृत्ति, पृ. २३१  
 ८८. आचारांग वृत्ति, पृ. २३१  
 ८९. वही, पृ. २३०, २३१, २३२  
 ९०. आचारांग वृत्ति, पृ. २३२  
 ९१. आचारांग वृत्ति, पृ. ४०  
 ९२. वही, पृ. २२४  
 ९३. वही, पृ. २३२  
 ९४. आचारांग वृत्ति, पृ. २१५

१५. आचारांग सूत्र—नवम् अध्ययन, उपधान सूत्र
१६. (क) आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुत स्कन्ध, पृ. २२  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. १७७ “द्राक्षा पान आदि”
१७. आचारांग सूत्र, पृ. ३२-३३
१८. आचारांग वृत्ति, पृ. २३१
१९. आचारांग सूत्र—द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. २४६
१००. आचारांग वृत्ति, पृ. २२४
१०१. आचारांग वृत्ति पृ. १७७
१०२. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. २४७, २४८  
(ख) दशवैकालिक चूर्णि, पृ. १३८  
(ग) दशवैकालिक टीका, पृ. १३९
१०३. आचारांग वृत्ति, सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. १०२, १७७
१०४. आचारांग वृत्ति, पृ. १७७ और १८७
१०५. आचारांग सूत्र—एक अध्ययन, पृ. १०४
१०६. आचारांग वृत्ति, पृ. २३०
१०७. वही, पृ. २३०
१०८. आचारांग वृत्ति, पृ. ८८
१०९. वही, पृ. २३३
११०. आचारांग वृत्ति, पृ. ४१
१११. आचारांग वृत्ति, पृ. २३३ से २३७ तक
११२. आचारांग वृत्ति, पृ. २३७
११३. आचारांग वृत्ति, पृ. २३९
११४. आचारांग वृत्ति, पृ. १४१
११५. वही, पृ. २४४
११६. वही, पृ. २३५
११७. आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. २, १०
११८. आचारांग वृत्ति, पृ. २७७
११९. आचारांग वृत्ति, पृ. २६८
१२०. आचारांग वृत्ति, पृ. २६२
१२१. आचारांग वृत्ति, पृ. २६२, २६३
१२२. आचारांग वृत्ति, पृ. २६३
१२३. वही, पृ. २६३
१२४. आचारांग वृत्ति, पृ. २६४, २६५
१२५. आचारांग सूत्र द्वि श्रु, पृ. ३५१
१२६. आचारांग वृत्ति, पृ. १५५
१२७. आचारांग वृत्ति, पृ. १५६, १५७

१२८. आचारांग वृत्ति, पृ. २०९
१२९. वही, पृ. ९२, ९३
१३०. (क) आचारांग सूत्र द्विश्रु, पृ. ५१, ५२  
(ख) आचारांग वृत्ति, पृ. २७७
१३१. आचारांग वृत्ति, पृ. २७८
१३२. आचारांग वृत्ति, पृ. २७५
१३३. वही, पृ. २७५
१३४. आचारांग सूत्र द्वि श्रु. पृ. ३३३
१३५. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. २७५  
(ख) स्थानांग स्थान—२  
(ग) निशीथ चूर्णि
१३६. आचारांग वृत्ति, पृ. २७५
१३७. आचारांग वृत्ति, पृ. २४४
१३८. आचारांग वृत्ति, पृ. ५१
१३९. आचारांग वृत्ति, पृ. २४४
१४०. वही, पृ. २४२
१४१. वही, पृ. २४६, २४७, २४८
१४२. आचारांग सूत्र—एक अध्ययन, पृ. ११०
१४३. आचारांग वृत्ति, पृ. १२६
१४४. वही, पृ. २०४
१४५. आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध, पृ. ३४५
१४६. आचारांग वृत्ति, पृ. १५६, १५७, १६०
१४७. वही, पृ. १६०
१४८. वही, पृ. १६२
१४९. वही, पृ. १६६
१५०. वही, पृ. १७९
१५१. वही, पृ. २५५
१५२. आचारांग वृत्ति, पृ. २५५
१५३. वही, पृ. २५९
१५४. वही, पृ. २५९
१५५. (क) आचारांग वृत्ति, पृ. ४७  
(ख) वही, पृ. ४५ विस्तार के लिये देखें
१५६. आचारांग वृत्ति, पृ. ४५
१५७. वही, पृ. ४६
१५८. वही, पृ. १६५

१५१. वही, पृ. २४२  
१६०. वही, पृ. २१०  
१६१. वही, पृ. ४६  
१६२. वही, पृ. २२७  
१६३. आचारांग वृत्ति, पृ. ७६, ७७  
१६४. आचारांग वृत्ति, पृ. २२७



## आचारांग-वृत्ति का भाषात्मक अध्ययन

आचारांग का सम्पूर्ण विवेचन सूत्रात्मक शैली में है; जिसमें अर्थ प्रतिपादक महावीर के वचनों को पञ्चम गणधर सुधर्मा स्वामी ने सूत्रबद्ध किया। अर्थरूप में जो कुछ भी प्रतिपादन किया गया उसी को गणधरों ने तत्कालीन भाषा में सूत्रबद्ध किया। आचारांग के सभी सूत्र आर्ष प्राकृत में हैं। भाषा वैज्ञानिकों ने आर्ष प्राकृत के तीन भेद किये हैं—(१) अर्धमागधी (२) शौरसेनी और (३) पाली।

अर्धमागधी और शौरसेनी को महावीर वचन के रूप में जाना जाता है और पाली को बुद्ध वचन के रूप में प्रतिपादित किया गया है।<sup>१</sup> आर्ष प्राकृत से जैन और बौद्ध के आगमों की भाषा का ज्ञान होता है। अर्धमागधी भाषा में आचारांग आदि आगम साहित्य का निर्माण हुआ है। अर्धमागधी आर्ष प्राकृत है। वैयाकरणों ने इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आचार्य हेमचन्द्र ने आर्ष सूत्र<sup>२</sup> के द्वारा इसके महत्त्व को स्पष्ट किया है। अर्धमागधी को ऋषि भासिता भी कहा गया है। समवायांग सूत्र में अर्धमागधी की विशेषताओं का विवेचन किया गया है।<sup>३</sup>

### आचारांग सूत्र की भाषा—

मूलतः जितने भी आगम ग्रन्थ हैं वे सभी प्राकृत में हैं। अङ्ग सूत्र, उपांग सूत्र, छेद सूत्र, मूल सूत्र आदि सभी आगमों की भाषा अर्धमागधी भाषा है। इसकी ऐतिहासिक दृष्टि पर प्रकाश डालें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि भाषा के स्वरूप में सदैव परिवर्तन होता रहा है। आचारांग की भाषा जितनी प्राचीन है उतनी अन्य आगमों की नहीं है। आचारांग के सूत्रों से ही यही विदित होता है। भाषा-विचार की दृष्टि से भी आचारांग की भाषा प्राचीन है। इसके प्रथम श्रुतस्कन्ध की भाषा की अपेक्षा द्वितीय श्रुतस्कन्ध की भाषा कुछ शिथिल एवं सरल है। इसी तरह के क्रम में अन्य आगमों की भाषा को भी भाषागत विशेषताओं के आधार पर समझा जा सकता है।

आगमों की भाषा में परिवर्तन का मुख्य कारण यह भी रहा है कि ये आगम पूर्व में नहीं लिखे गये थे। महावीर के पश्चात् सुदीर्घकाल तक कंठस्थ करने की

परम्परा थी। आगमों की सुरक्षा के लिए समय-समय पर विविध वाचनाएँ की गईं। उन वाचनाओं में भी बहुत अन्तर रहा। इससे भी आगमों की अर्धमागधी भाषा में अन्तर होता गया।

मूल भाषा जो भी थी, उसमें आगमों के विशेषज्ञ आचार्यों द्वारा जो विविध सम्मेलन आयोजित किये गये उनसे भी भाषा परिवर्तन हुआ होगा; क्योंकि वे अलग-अलग प्रान्तों के रहने वाले थे। इसलिए उनसे भी उन प्रदेशों की भाषाओं का प्रभाव पड़ा होगा। मूल भाषा में कई मिश्रण हुए होंगे। भाषा और शैली में भी कई परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। शैली की अपेक्षा गद्य और पद्य दो रूपों में आगमों की सूत्र पद्धति है। सूत्रकारों की अपेक्षा वृत्तिकारों ने जो व्याख्यात्मक पद्धति का प्रयोग किया, उसमें विविध भाषाओं का समावेश हो गया। निर्युक्तिकारों ने सूत्रात्मक शैली पर जो विश्लेषण प्रस्तुत किया वह प्राकृत भाषा में छन्दोबद्ध है भाष्यकारों ने इनमें जो विवेचन प्रस्तुत किया उसमें प्राकृत और संस्कृत दोनों ही भाषाओं का समावेश हो गया, चूर्णिकारों ने भी आचारांग चूर्णि में प्राकृत और संस्कृत को अधिक महत्त्व दिया।

आचार्य शीलांक ने जो वृत्ति लिखी उसमें आचारांग के मूल सूत्र, निर्युक्तिकारों की नियुक्तियाँ और चूर्णिकारों की चूर्णियों का प्रभाव ही स्पष्ट झलकता है। शीलांक आचार्य ने आचारांग की वृत्ति लिखते हुए प्रत्येक विषय को विस्तार से विवेचन किया है। इसकी शैली और भाषा सुबोध एवं सरल है।

वृत्तिकार ने यह वृत्ति मूल सूत्र पर केन्द्रित करके लिखी है। इसमें निर्युक्ति का भी सहारा लिया है। वृत्तिकार ने यत्र-तत्र विषय की गंभीरता को स्पष्ट करने के लिए प्राकृत गाथाओं और संस्कृत के श्लोकों का भी उपयोग किया है।

### शब्द और अर्थ की विशेषता—

शब्द और अर्थ दोनों ही भाषा के महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं। परन्तु शब्द की अपेक्षा अर्थ के सौन्दर्य पर वृत्तिकार ने विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने वृत्ति के प्रारम्भ में ही जो मंगलाचरण प्रस्तुत किया है, उसमें चारों अनुयोगों के विषय को प्रतिपादित करने की प्रतिज्ञा की है। इसी प्रतिपादन में प्राकृत की गाथाओं को और संस्कृत के श्लोकों को प्रस्तुत करते हुए विविध प्रकार की व्युत्पत्तियाँ भी दी हैं। जैसे—  
“श्रुतमितिश्रुतज्ञानम्” या “मां मालयत्यपनयति भवादिति मङ्गलम्”।”

आचारांग वृत्ति में वृत्तिकार ने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विषय को प्रतिपादन करने में लिए तीन प्रकार के कारणों को ध्यान में रखा है। जैसे—(१) अर्थ की सरलता, (२) शब्द की मधुरता और (३) परिभाषा की प्रमुखता।

## अर्थ की विशालता—

वृत्तिकार सूत्र शैली को प्रकट कर उसके अर्थ को अधिक से अधिक स्पष्ट करते हुए ही आगे बढ़ा है। जैसे—अनुयोग शब्द पर विचार करते हुए वृत्तिकार ने अनुयोग का स्वरूप, अनुयोग की व्युत्पत्ति, अनुयोग के भेद, अनुयोग की निक्षेप पद्धति आदि दी है।<sup>५</sup> इसी तरह प्रत्येक स्थल पर वृत्तिकार ने मूल सूत्रों एवं निर्युक्ति युक्त पदों आदि के अर्थ गांभीर्य पर अधिक ध्यान दिया है। यही कारण है कि आचारांग वृत्ति पाठकों के समक्ष नय, निक्षेप आदि को सरल रूप में प्रस्तुत करता है।

## वृत्ति में गद्य और पद्य का मिश्रण—

सम्पूर्ण वृत्ति में गद्य प्रधान है। गद्य की सुकुमारता के लिए वृत्तिकार ने आकर्षक शब्दावलियों, मधुर पदों, विषयगत विवेचन एवं विविध संदर्भों को स्थान दिया। इससे गद्य अधिक प्रभावशाली तथा भावों को जागृत करने वाले बन गए। विषय एवं शब्द अर्थ की प्रस्तुति के लिए जो विविध दृष्टान्त दिये हैं, वे अधिक रोचक एवं अर्थ के सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। अर्थ की अधिकता एवं सौन्दर्यता को लिए हुए वृत्तिकार ने गद्य के अतिरिक्त जो पद्य प्रस्तुत किये हैं वे ज्ञेय तत्त्व से परिपूर्ण हैं। प्राकृत में जितनी भी गाथाएँ दी हैं वे सुबोध एवं सहज रूप में कंठस्थ की जा सकती हैं। इस तरह वृत्तिकार का यह प्रयास गद्य एवं पद्य के मिश्रण से युक्त निश्चित ही सराहनीय है।

## वृत्ति की शैली—

आचारांग वृत्ति की शैली नय और निक्षेप पर आधारित है। वृत्तिकार ने जो कुछ भी विवेचन किया है उसमें नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप और भाव निक्षेप—इन चार निक्षेपों के अतिरिक्त निक्षेप के सात प्रकार भी दिये हैं, जैसे—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, ताप, प्रज्ञापक और भाव रूप।<sup>६</sup> इस निक्षेप पद्धति पर आधारित सम्पूर्ण सूत्र का विषय नाना प्रकार के विवेचन को प्रस्तुत करता है। जैसे—एक जीव तत्त्व को ही लें—वृत्तिकार ने इस जीव तत्त्व पर कथन किया है कि जीव है। जीव क्या जानता है? जीव नहीं जाता है? जीव असत् है? जीव अवतव्य है? जीव नित्य है? इत्यादि। इसी तरह वृत्तिकार ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि के विषय में प्राकृत में ही कहा है, विनय से ज्ञान, ज्ञान से दर्शन, दर्शन से चारित्र, चारित्र से मोक्ष और मोक्ष से अव्यावाध सुख प्राप्त होता है।<sup>७</sup>

आचारांग वृत्ति की शैली में जो भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है, वह अर्थ के रहस्य को खोलता हुआ सूत्र की वास्तविकता को अङ्कित कर देता है। वृत्तिकार ने विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए संक्षिप्त कथाओं का भी सहारा लिया है। जैसे—सहसम्मति पद को समझाने के लिए वृत्तिकार ने दृष्टान्त दिया है—



बसन्तपुर नगर में जितशत्रु नाम का राजा था। धारणी नाम की उसकी पत्नी थी। और धर्मरुचि नामक उसका पुत्र था। इन तीनों के विचारों तथा राजकुमार के जातिस्मरण ज्ञान को सहसम्मति अर्थात् आत्मज्ञान के उदाहरण को प्रस्तुत किया।<sup>१९</sup> वृत्तिकार ने आचारांग सूत्र के मूल सूत्र को समझाने के लिए निम्नलिखित तीन साधन उदाहरण सहित प्रस्तुत किये हैं।<sup>२०</sup> इसी तरह राजगृह नगरी के राजा जितशत्रु का उदाहरण दिया गया है।<sup>२१</sup> १. सहसम्मति या स्वमति, २. पर-व्याकरण, ३. अन्य अतिशय—ज्ञानियों के वचन।

### प्रश्नोत्तर शैली—

आचारांग सूत्र की सूत्रात्मक शैली को पूर्णतः प्रश्नोत्तर रूप में है। कहीं-कहीं पर प्रश्न तो प्रस्तुत किये गये हैं पर उनके उत्तर नहीं दिये गये हैं, जैसे—

“संति पाण्ण पुढोसिया लज्जमाणा पुढो पास”<sup>२२</sup>

सूत्रकार ने प्रश्न के उद्गार को अत्यन्त ही सरल रूप में दिया है। प्रश्न के जितने भी उत्तर हैं, वे सभी बोधगम्य हैं, जैसे—

के गोतावादी? के माणज्जवादी? कंसि वाएगे गिज्जे?<sup>२३</sup>

अर्थात् कौन गौत्रवादी होगा? कौन मानवादी होगा? और कौन एक गोत्र में आसक्त होगा? इसका उत्तर एक सरल रूप में इस प्रकार दिया है कि जो व्यक्ति इनसे मुक्त होकर समभाव को धारण करता है, वह उच्च गोत्र की प्राप्ति पर हर्षित नहीं होता है। और न नीच गोत्र की प्राप्ति पर दुःखित होता है।<sup>२४</sup> ऐसे अनेक प्रश्न हैं और उन अनेक प्रश्नों के समाधान भी सरल ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। पढ़ने वाला या सुनने वाला किसी भी तरह का विकल्प कर सकता था, परन्तु उस विकल्प के पूर्व ही सूत्रकार के सूत्र में उसे समाधान मिल जाता है।

वृत्तिकार ने सूत्रकार की शैली को नये रूप में प्रस्तुत किया है। जिसे वृत्तिकार की दृष्टि से निक्षेप दृष्टि कह सकते हैं। यथा—

१. नीच गोत्र का बन्ध—नीच गोत्र का उदय और नीच गोत्र की सत्ता।
२. नीच गोत्र का बन्ध—नीच गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।
३. नीच गोत्र का बन्ध—उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।
४. उच्च गोत्र का बन्ध—नीच गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।
५. उच्च गोत्र का बन्ध—उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।
६. बन्धाभाव—उच्च गोत्र का उदय और उभय की सत्ता।
७. बन्धाभाव—उच्च गोत्र का उदय और उच्च की सत्ता।<sup>२५</sup>

प्रत्येक प्राणी ने अनेक बार उच्च गोत्र और नीच गोत्र में जन्म ग्रहण किया है। अतः उन पर कैसा अहंकार करे? और किस रूप में विपाद करे? क्योंकि अपने ही किये हुए प्रमाद के कारण से अन्धा, बहरा, गूँगा, लँगड़ा, काना, बोना, कुंभड़ा, काला, चितकबरा आदि होता है और अनेक योनियों में जन्म लेते हैं। इन सभी की वृत्तिकार ने जो प्रश्नोत्तरी प्रस्तुत की है, वह पूर्णतः निक्षेप पद्धति पर आधारित है। इसमें उन्होंने प्राकृत और संस्कृत के समन्वय के रूप को आधार बनाया है।<sup>१६</sup>

### निक्षेप पद्धति—

वृत्तिकार ने सर्वत्र निक्षेप पद्धति को ही अपनाया है। व्याख्या के लिए जिसे उचित कहा जा सकता है, क्योंकि वृत्तिकार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की प्रधानता को लेकर विवेचन प्रस्तुत करता है। उसके इस विवेचन में वस्तु तत्त्व के सभी अभिप्रायों को व्यक्त किया गया है।

१. जीव स्वतः नहीं है, काल से, २. जीव परतः नहीं है, काल से।

इसी तरह के विवेचन को वृत्तिकार ने सर्वत्र प्रस्तुत किया है। सूत्रकार के सूत्र के “अहं आसी” पर निम्न पद्धति वृत्तिकार ने दी है।

१. जीव स्वतः नित्य है, काल से, २. जीव स्वतः अनित्य है, काल से, ३. जीव परतः नित्य है, काल से। ४. जीव परतः अनित्य है, काल से।<sup>१७</sup>

“से आयावादी लोयावादी कम्भावादी किरियावादी”<sup>१८</sup>

इस सूत्र पर वृत्तिकार ने जो विवेचन प्रस्तुत किया है, वह निक्षेप पद्धति पर ही आधारित है। इसके पूर्व के विवेचन में भी वृत्तिकार ने क्रियावादी, अक्रियावादी, ज्ञानवादी, विनयवादी, आत्मवादी और लोकवादी इत्यादि दार्शनिकों के दार्शनिक मत का विवेचन इसी पद्धति पर आधारित है।

### नय पद्धति—

निक्षेप पद्धति की तरह वृत्तिकार ने अपने विवेचन को नय पद्धति पर भी प्रस्तुत किया है। उसमें भी द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय की प्रमुखता है। इसके अतिरिक्त नय की भंग परम्परा को सर्वत्र देखा जा सकता है। जैसे—

१. पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती। २. पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती। ३. नो पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती। ४. नो पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती।<sup>१९</sup>

### व्युत्पत्तिमूलक शैली—

वृत्तिकार की यह प्रमुख शैली है। उन्होंने सर्वत्र शब्द के विश्लेषण को प्रस्तुत करने के लिए शब्द के अर्थ के साथ इस शैली को अपनाया है, जैसे—

दिशतिति दिक् अति सृजति व्यपदिशति द्रव्यं द्रव्यं भागंवेति भावः।<sup>२०</sup>

जीव शब्द की व्युत्पत्ति कई रूपों में की गई है, जैसे—जो आयु कर्म से जीवित है, वह जीव है। जो प्राणों को धारण करता है, वह जीव है।<sup>११</sup>

अणगार (अनगार)	नविघतेऽगारं गृहमे पामित्यनगाराः। <sup>१२</sup>
आत्मा (आत्मा)	अतति-मच्छति सतत गति प्रवृत्त आत्मा जीवोऽस्तीति। <sup>१३</sup>
आयार (आचार)	आचर्यते आसेव्यत इत्याचारः। <sup>१४</sup>
आयावादी (आत्मावादी)	आत्मानं वदितुं शीलमस्येति। <sup>१५</sup>
आवर्तः	यो गुणः शब्दादिकः स आवर्तः आवर्तन्ते परिभ्रमन्ति प्राणिनो यत्र स आवर्तः। <sup>१६</sup>
उपक्रम	उपक्रमो निक्षेपोऽनुगमो नयः। <sup>१७</sup>
औपपातिक	उपपातः प्रादुर्भावो जन्मान्तर संक्रान्तिः उपपाते भव औपपातिक इति। <sup>१८</sup>
कर्मवादी	स एवासुभान् कर्मवादी। <sup>१९</sup>
कषाय	कषायाः कषः संसारः। <sup>२०</sup>
कषाय	संसारस्स उम्मूलं कम्मं तस्सवि हुंति य कसाया। <sup>२१</sup>
कामःकामी	कामान् कामयितुम्—अभिलषितुं शीलमस्येति कामकामी। <sup>२२</sup>
क्रियावादी	तथाय एवं क्रमवादी स एवं क्रियावादी। <sup>२३</sup>
गुण	द्रव्याश्रयिणः सहवर्तिनो निर्गुणा गुणः इति। <sup>२४</sup>
गुरुकुल	गुरोः कुलं गुरुकुलं। <sup>२५</sup>
गोचरी	कर्मणा संसारचक्रेऽनुपरिवर्तमानः पर्यटन्नायत चक्षुषो गोचरी। <sup>२६</sup>
ग्रामः	ग्रसति बुद्धयादीन् गणनितिगम्योवाऽष्टादशज्ञानं करणामिति ग्रामः। <sup>२७</sup>
जीव	जीवितवान् जीवति जीविष्यतीति वा जीवः। <sup>२८</sup>
जीव	तैः कर्मभिः स जीवो। जीवितिमिति जीवन्त्यनेनायुः कर्मणेति जीवितं प्राणधारणम्। <sup>२९</sup>
ज्ञान	चेतयति येन तच्चितं ज्ञानं। <sup>३०</sup>
जीव संयम	जीवेषु संयमा जीवसंयमः। <sup>३१</sup>
तिर्यक्	तिरश्चीनं गच्छन् प्रेक्षते <sup>३२</sup>
त्रस	त्रसाः त्रस्यन्ति। <sup>३३</sup>
द्रव्यभाग	दिशतीति दिक् अतिसुजति व्यपदिशति द्रव्यं द्रव्यभागं वेति भावः। <sup>३४</sup>
नकर	नात्रकरो विद्यत इति नकरं। <sup>३५</sup>
नय	उपक्रमो निक्षेपोऽनुगमो नयः। <sup>३६</sup>

निर्युक्ति	निश्चयेनार्थप्रतिपादिका युक्ति निर्युक्तिः। <sup>५०</sup>
निष्प्रतिकर्मशरीर	मृतार्च्चा-मृतेव-मृतासंस्काराभावादर्च्चा। शरीरं येषां ते तथा, निष्प्रति कर्म शरीरा। <sup>५८</sup>
पाप मोक्ष	पातयति पासयतीति वा पापं। तस्मान्मोक्षः पापमोक्षः इति। <sup>५९</sup>
भिक्षु	भिक्षण शीलो भिक्षुः स भिक्षुः कालज्ञः उचितानुचितावसरतः। <sup>६०</sup>
मोक्ष	ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः। <sup>६१</sup>
लोक	लोगो वहवज्जइ जहय तं पजहि यव्वति, विजितभावलोकेन संयमस्थितेन लोको। <sup>६२</sup>
लोक	लोकयतीति लोकः, लोकः प्राणिगणः। <sup>६३</sup>
लोगविपस्सी लोकविदर्शी	लोकं विषयानुपज्ञावेशात् दुःखातिशयं तथा व्यक्तकामावत् प्रथम सुखं विविधं द्रष्टुं शीलमस्येति लोकविदर्शी। <sup>६४</sup>
वय	वयः कुमारादि अत्येति—अतीव—एति—याति अत्येति। <sup>६५</sup>
वृक्ष	वृक्षयन्त इति वृक्षाः। <sup>६६</sup>
व्यञ्जन	व्यज्यते आविष्यतेऽर्थोऽनेनेति व्यञ्जनं। <sup>६७</sup>
शमित दर्शन	शमितम् उपशमं नीतं दर्शनं, दृष्टिज्ञानमस्येति शमित-दर्शनः। <sup>६८</sup>
शस्त्र	शस्यन्ते-हिस्यन्तेऽनेन प्राणिन इति शस्त्रं शस्यतेऽनेनेति शस्त्रं। <sup>६९</sup>
संप्रेक्ष	संप्रेक्षया पर्यालोचनया एवं संप्रेक्ष्य वा भयात् क्रियते। <sup>७०</sup>
संसार	जंमूलांग स संसार। <sup>७१</sup>
संसार	संसारो जत्थेते संसरीति जिआ संसरन्ति स्वभावः संसारा। <sup>७२</sup>
समित दर्शन	समतामि—गतं दर्शनं—दृष्टिस्त्वेति समितदर्शनः। <sup>७३</sup>
स्वभाव	वस्तुनः स्वत एव तथा परिणति भावः स्वभावः। <sup>७४</sup>
श्रमण	श्राम्यतीति श्रमणो यतिः। <sup>७५</sup>

इस तरह के अनेक निरूक्ति शब्द इसमें समाहित हैं।

### परिभाषात्मक शैली—

वृत्तिकार शीलंक आचार्य ने मूल सूत्रकार के सूत्रों के शब्दों पर जो नाना प्रकार की परिभाषाएँ दी हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। सूत्रकार केवल सूत्र के रूप में जिन शब्दों को प्रस्तुत कर सका, उन शब्दों को लेकर वृत्तिकार ने नाना प्रकार के लक्षण भी प्रस्तुत किये हैं, जैसे—मेधावी, इसका अर्थ कुशल एवं ज्ञानवान किया है। और कहा है, “जो मन, वचन, काय से कर्म बन्धन के हेतु को जानता है वह मेधावी है।”<sup>७६</sup> मोक्षमार्ग के विषय में उन्होंने कहा है कि जहाँ सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन

और सम्यक् चरित्र की संगति होती है वह मोक्षमार्ग है। अन्यत्र भी इसको इस रूप में प्रस्तुत किया है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र युक्त मोक्षमार्ग है।<sup>१७</sup> इसी तरह महावीथी शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि सम्यक् दर्शन आदि रूप मोक्षमार्ग है, यही माहवीथी है।<sup>१८</sup>

१. मोक्षमार्ग—अष्ट प्रकार की कर्म संतति रूप मोक्षमार्ग है।<sup>१९</sup>

२. मोक्ष संघी—ज्ञान, दर्शन और चरित्र प्रधान मोक्षमार्ग में सम्भावात्मक प्रवृत्ति।<sup>२०</sup>

३. अचेल—जिन कल्पित भाव से युक्त निर्ग्रन्थ अवस्था।<sup>२१</sup>

४. समाधिमरण—परमार्थ हेतु उपक्रम।<sup>२२</sup>

५. धीर—परिषह और उपसर्ग रहित।<sup>२३</sup>

### सूक्तियाँ—

आचारांग वृत्ति में सूक्तियों का भंडार है। इसमें प्राकृत और संस्कृत दोनों में ही सूक्तियाँ हैं। कुछेक सूक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं।

### प्राकृत सूक्ति—

१. हयं नाणं कियाहीणं हया अन्नाणओ क्रिया ।  
पासंतो पंगुलो दडो, धावमाणो य अंधवो ॥<sup>२४</sup>
२. गुत्ता गुत्तीहिं सव्वाहिं समिईहिं संजया ।  
जयमाणगा सुविहिया एरिसया हुंति अणगारा ।<sup>२५</sup>
३. पणया वीरा महावीहिं ।<sup>२६</sup>
४. जे गुणे से आवट्टे जे आवट्टे से गुमे ।<sup>२७</sup>
५. संति पाणज्ज पुढो सिया ।<sup>२८</sup>
६. कट्टेण कट्टेण व पाए विद्धस्स वेयणट्टस्स ।<sup>२९</sup>
७. विणया पाणं पाणाउ दंसणं दंसणाहि चरणं तु ।  
चरणाहितो मोक्खो मुखे सुक्खं अणावाहं ॥<sup>३०</sup>
८. खणं जाणाहि पंडिए ।<sup>३१</sup>
९. कामा दुरतिकमा ।<sup>३२</sup>
१०. आगासे गंगसोउव्व ।<sup>३३</sup>
११. बालुगा कवलो चेव, निरासाए हु संजमो ।<sup>३४</sup>
१२. तुममेव तुमं मित्तं कि बहिया मित्तमिच्छसि ।<sup>३५</sup>
१३. जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।<sup>३६</sup>
१४. जे आया से विन्नाया जे विन्नाया से आया ।<sup>३७</sup>

## संस्कृत सूक्तियाँ—

१. कालः पचति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः ।  
कालः सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥<sup>८८</sup>
२. सुखकामो बहुदुःखं संसार मनादिकं भ्रमति ।<sup>८९</sup>
३. वीरभोग्या वसुन्धरे ।<sup>९०</sup>
४. यागो नियागो मोक्षः मार्गः ।<sup>९१</sup>
५. जिनप्रवचने शमनं शान्तिः ।<sup>९२</sup>
६. विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतज्ञानम् ।  
ज्ञानस्यफलं विरतिर्विरतिफलं चाश्रवनिरोधः ।<sup>९३</sup>
७. कामेषु गिद्धा निचियं करन्ति ।<sup>९४</sup>
८. अपकारिणि कोपश्चेत्कोपे कोपः कथं न ते ?<sup>९५</sup>
९. न जायते न प्रियते, नैव छिन्दति शस्त्राणि नैवं दहति षावकः ।<sup>९६</sup>
१०. क्रियैव फलदा पुसां न ज्ञानं फलदं मतम् ।<sup>९७</sup>

वृत्तिकार ने संस्कृत में जो वृत्ति लिखी है, उसमें कई तरह की संस्कृत सूक्तियाँ हैं। परन्तु यहाँ केवल कुछ ही सूक्तियों द्वारा इसकी शैली का विवेचन किया है।

## अनेकार्थवाची शब्द—

१. निजा आत्मीया बान्धवाः सुहृदो<sup>९८</sup>
  २. वयः कुमारः यौवनं ।<sup>९९</sup>
  ३. धी, बुद्धि ।<sup>१००</sup>
  ४. मुनि, मुमुक्षु<sup>१०१</sup>, मुनि, यति, मुक्त<sup>१०२</sup>
  ५. प्राणी, जीव, सत्तवं, भूत<sup>१०३</sup>
  ६. पाणा भूया जीवा सत्ता<sup>१०४</sup>
- इत्यादि कई अनेकार्थवाची शब्द भण्डार इसमें हैं।

## दृष्टान्त (कथात्मक) —

वृत्तिकार ने आचारांग सूत्र की वृत्ति में अनेक दृष्टान्त दिये हैं। इन दृष्टान्तों के आधार पर विषय को सरल बनाया गया है। यहाँ केवल उनके नाममात्र दिये जा रहे हैं।

१. वसन्तपुर नगर में जितशत्रु नाम का राजा था। धारिणी उनकी पत्नी थी। धर्मरुचि नामक पुत्र था। धर्मरुचि ने अनाकुट्टि के लिए सबकुछ त्याग कर दीक्षा लेकर आत्मकल्याण किया।<sup>१०५</sup>

२. मुमुक्षु आत्माओं के लिए परिज्ञा करना सर्वप्रथम आवश्यक है, इसके बिना आगे प्रगति नहीं हो सकती है। जैसे—वर्णमाला में “अ” और अङ्कगणित में “एक” को जाने बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता है।<sup>१०६</sup>

३. जैसे नवीन गर्भ में उत्पन्न हाथी का शरीर कलल अवस्था में द्रव रूप में होता है किन्तु वह सचेतन है उसी तरह द्रव्यात्मक जलकाय को भी सचित समझना चाहिए।<sup>१०७</sup>

४. जैसे देवता का शरीर चक्षु द्वारा नहीं दिखने पर भी चेतना वाला समझा जाता है।<sup>१०८</sup>

अनुराग के कारण परशुराम ने पिता के नाशक वैरी पर द्वेष के कारण सात बार क्षत्रियों का नाश किया।<sup>१०९</sup>

स्त्री कथा, भक्त कथा, देश कथा और राज कथा अनावश्यक बातें हैं। जो कि कथा प्रमाद है, इसे नहीं करनी चाहिए। जो संयम की साधिका न होकर वाधिका है।<sup>११०</sup> भोगांसक्त गणिका<sup>१११</sup> का उदाहरण भी वृत्तिकार ने दिया है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सनतकुमार का उदाहरण भी दिया गया है।<sup>११२</sup>

उदयसेन राजा के वीरसेन व सुरसेन दो पुत्र हैं। वीरसेन अन्धा है, जो सम्यक्त्व में प्रधान है।<sup>११३</sup> भीमसेन, भीम, सत्यभामा, मामा आदि का वर्णन भी बड़ा सुन्दर किया है।<sup>११४</sup>

आठ स्तम्भों, अदृष्ट दिव्य शक्ति, एकधनी सेठ, एक भिखारी को स्वप्न आया, मथुरा के राजा जितशत्रु, एक बड़ा सरोवर, स्वयंभू-रमण, देवाधिष्ठित पारों का, एक विशाल स्तम्भ आदि ये दस दृष्टान्तों से मनुष्य भव की दुर्लभता बताई गई है।

किसी भिखारी को कहीं से थोड़ा दूध प्राप्त हुआ। दही, घी बनाकर पैसे प्राप्त करूँगा, वह इसी कल्पना में डूबा रहा। इसी प्रकार संसारी प्राणी कल्पनाओं में डूबा रहता है।

तिलों में तेल होता है, बालुका में नहीं।

गजसुकुमाल की क्षमा का उदाहरण दिया गया है सोमिल ब्राह्मण ने जलते हुए अङ्गारे सिर पर डाल दिये। लेकिन वो समता-योग से अटल रहे।<sup>११५</sup>

पाँच प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त होती हैं—(१) क्षयोपशमलब्धि, (२) विशुद्धिलब्धि, (३) देशनालब्धि, (४) प्रायोगलब्धि और (५) करणलब्धि।<sup>११६</sup>

अरण्यक श्रावक की निडरता का वर्णन किया गया है। अरण्यक की धर्म-दृढ़ता की प्रशंसा करके और दो कुंडल की जोड़ी भेंट करके देव चला गया।<sup>११७</sup>

विषय-वासना, बिल्ली, कच्चे नारियल, सूर्य की ओर नेत्र, मेघ गर्जना, फूटी हाँडी, चिन्तामणि रत्न आदि उदाहरण दिये हैं।<sup>११८</sup>

नौवां उपधान श्रुतस्कन्ध अध्ययन में महावीर की चर्या, विहार, आसन, तप, आदि दृष्टान्तों से परिपूर्ण हैं।

इसी तरह द्वितीय श्रुतस्कन्धों में दृष्टान्तों की भरमार है।

कुष्ठरोग,<sup>१२१</sup> आहार स्थान,<sup>१२२</sup> भिक्षु प्रतिज्ञा,<sup>१२३</sup> सिंह, व्याघ्र आदि का भी वर्णन किया है।

### ध्वनि परिवर्तन—

ध्वनि परिवर्तन दो प्रकार से होता है—(१) स्वाभाविक और (२) परिस्थितिजन्य। ध्वनि का यह परिवर्तन आदि, मध्य, अन्त्य बलाघात, स्वर भक्ति आदि के रूप में होता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि परिवर्तन के तीन विशेष कारण हैं—(१) स्वर परिवर्तन (२) सरल व्यंजन परिवर्तन और (३) संयुक्त व्यंजन परिवर्तन।

### स्वर परिवर्तन—

यहाँ कुछ ही परिवर्तन दिए जा रहे हैं, जैसे—

अ—आ	समिहि—सामिद्धि, पगड—पागड
अ—इ	अङ्गाई—इंगाल (२१५), सिज्जा (शय्या) (२३९)
अ—उ	गवय—गउओ
अ—ए	सेज्ज (शय्या) (४)
इ का उ	असुपाल—इसुपालं (२६४), उच्छु (इक्षु), दुविह, दुवालस (४), दुवे (२०२)
आ—ओ	आबोगउ (अव्याकृत) (२१३)
ए—इ	निकखेवो—निकखवे (३), खित (६, २३९) इत्थ—एत्थ (७५)
इ—ए	पडिसेहिओ—प्रतिषिद्ध (८६)
ओ—उ	विमुक्खो (विमोक्ष), मुक्ख (मोक्ष) (१७४)
ऋ—अ	तणफासा (१९१) बंध्र (ब्रह्म) (३)
ऋ—इ	धिरं (धृति) (१०८) रड्डी (११९) इसि (२७९) भिगघड
ऋ—उ	उज्जु—ऋजु (१०३)
ऋ—ओ	मृषा—मोसा—(२५६, २५७)
ऐ—ए	वेयावच्चं—(४)
ऐ—अइ	बटूर (वैर)
औ—ओ	ओसहि—(२१५)
औ—अउ	कउहल
अव—ओ	समोयारे—(३) ओगाहंते (२२), ओगाढ (अवगाड) (२२)



स्वर परिवर्तन के आगम तथा लोप, ये दो भेद भी होते हैं। इन दोनों भेदों में आदि आगम, आदि लोप, मध्य आगम, मध्य लोप और अन्त्य आगम और अन्त लोप भी होता है।

### आगम—

१. आदि स्वरागम इत्थी (१००)
२. मध्य स्वरागम चंदमि-सूरिम (११५), समिया (२३) चरिम (१७४), मुदुंग (मृदंग) (२१९)
३. अन्त स्वरागम सरय (शरद), भगवअ (भगवत्) (२०६)

### लोप

१. आदि स्वरलोप रण्ण (अरण्य) (१७९), थी (८५) इत्थी
२. मध्य स्वरलोप एवंपि (एवंअपि) (२०७) सइं पि (२१६) सी उण्ह (८९)
३. अन्त स्वरलोप कसा (कसाअ)

### व्यंजन लोप—

आदि व्यंजन लोप—थीमि (८५) स्त्री, थंभ, थव  
 मध्य व्यंजन लोप—संकिय खलियं—(१०२) सम्मावाओं (११७) सी उण्ह (८९), राउल, कुंमारो  
 अन्त व्यंजन लोप—जाव, ताव (६३)

### व्यंजन लोप के अन्य प्रकार

प्राकृत व्याकरण में क, ग, च, ज, त, द, प, व, य का लोप हो जाता है।<sup>१२४</sup>

क	लोओ (५५) गोच्छओ (गोच्छक) (१८५)
ग	साअर—(सागर) भगवया
च	सुत्तरई (६४), बइगुतोहए—(१८२)
ज	मणुयाउ (६४), राओ (६६), रयत्त (रजत) (१८५)
त	जिअसंजमो (जितसंजमो) (७) हिअकरिं—(७४) सुयं (श्रुतं) (८)
द	निसाएणं—(निषादेन) (६), आइमूलं (५२) आएस (२१२)
प	विडल—(विदुल)
व	दिअह (दिवस)
य	ओदइ—उवएस (५८) कसाओ (कषाय) (६४) चिओगो (१७९)

### व्यंजन परिवर्तन—

क का ग	लोगसार (६), सोबाग (सोपाग) (६)
ख—ह	सुह (सुख) मुह (२१९)

घ—ह	ओह (ओग) (८१)
त—ड	आहड (आहत) (१८७), अभिहड (अभिहत) (१८७)
त—ल	लताग (२१९)
थ—ह	काह (क्रोध) (१८), मेहुण (मैथुन) (८)
थ—द	पढमी (२१२), पुढवी (२४५)
ध—ह	वाही (६९) उवहाण (उपधान) (१९८)
ट—ड	पड़लाई (१८५) (पटल) कड (कटु) (२७८)
ठ—ढ	सढसीलो (६४), पीढ (२६९)
न—ण	णरो (५१), णाणं (१३), नाण (२६)
<b>नोट</b> —अर्धमागधी प्राकृत में न का ण एवं न का न भी बना रहता है।	नाण (२६).
प—फ	फासुग फासुय (२७९)
य—व	उवएस (५८), पावमती (६४), पिवासा (६९)
फ—ह	सुहल (सुफल)
भ—ह	लोह (लोभ) (८), णहचर (२५५)
य—ज	संजम (संयम) (६), अजोग (अयोग) (६)
श, ष, स—स	उसम (५) सेसा (५)

### संयुक्त व्यंजन परिवर्तन—

यहाँ पर कुछ ही संयुक्त व्यंजन परिवर्तन के उदाहरण दिये जा रहे हैं।

क्ष—ह	गुणदेही
क्ष—ख	प्रारंभ में—खेयण (११९) क्षेत्रज्ञ
क्ष—क्ख	लक्खण (२७९) पक्ख (२८३)
त्र—त	पुत्त (पुत्र) (२२४)
त्त—ट्ट	पट्टण (१९०)
त्य—च्च	सच्च (१९०)
न्य—न्न	छिन्न (१९०)
द्ध—ज्झ	बुज्झ (बुद्ध) (१५६), सुज्झइ, सुन्झए (१९८)
ध्य—ज्य	अज्झयण (१९८)
व्य—व्व्	द्रव्य (दवव) (१९८)
द्ध—ड्ड	सड्डा (२४५), बुड्ड (२४९)

प—खिप्त	क्षिप्त (२५३)
ज्ञ—न्न	(००१)
कालन्न	(कालज्ञ) विणयन्न (विनयज्ञ) (८८)
खेयण्ण	(११९)
ध—ज्ज	सज्ज (२७६)
बद—घ	सद्द (२७६)
क्त—त्त	सत्ति (२७६)
त्त—प्प	अप्प (५) (२६)
ने—ण्ण	वण्ण (५), सव्व (५)

नोट:—रेफ युक्त संयुक्त व्यंजन होने पर र का लोप हो जाता है और अवशिष्ट का द्वित्व हो जाता है। जैसे—तित्थ (तीर्थ) (७), सव्व (१०), कम्म (कर्म) (१०)।

### व्यंजन आगम—

१. आदि व्यंजन आगम—रिसह, रिसि
२. मध्य व्यंजन आगम—पुढविक्काए (२२), वाउदेसे (५०), अस्संजमो (१००)
३. अन्त व्यंजन आगम—सत्तग सत्तग (४५), संधियपुव्वं (५१)

### विपर्यय—

स्वर, व्यंजन और अक्षर जब एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होते हैं, तो इनके परस्पर परिवर्तन को विपर्यय कहते हैं। जैसे—तेइच्छ (कित्सक) (९३), वराणसी (बानारसी)।

### दीर्घ का ह्रस्व

समासान्त पद में दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है। कुछ ऐसे भी दीर्घ शब्द होते हैं जो संयुक्त होने पर भी ह्रस्व को प्राप्त हो जाते हैं।

### वीरिय—

विरिओ—(४) यह स्वतंत्र शब्द है, इसका प्रथम दीर्घ शब्द ह्रस्व हो गया। जैसे—जोगिलक्खाओ (१६), पुढविजीवा—(१९), अणुपुत्वेण (१८२, १७३, १७५)।

### ह्रस्व का दीर्घ—

समासान्त पद में ह्रस्व स्वर का दीर्घ हो जाता है। अंडापोअअ (४५), मईमया (२०६)।

## समीकरण—

### १. पुरोगामी समीकरण

निज्जुत्ति (१०१), तिच्च (१०१), निव्वाण (१०१)

### २. पश्चगामी समीकरण

कम्म (९७), सच्च (५), सद (१०४)

### अनुनासिक प्रयोग—

दंसणं (१३)

### घोषीकरण—

लोगागास (२१), विवेग (१७४)।

### महाप्राणीकरण—

अल्प प्राण युक्त ध्वनियाँ कहीं-कहीं पर महाप्राण का रूप धारण कर लेती हैं। जैसे—फासुग—फासुय (२७०)।

### उष्मीकरण—

ख, घ, थ, ध और म के स्थान में “ह” हो जाता है। जैसे—मुह (२१९) ओह (ओग) (८१), वाही (६९), मेहावी (४४), लोह (लोभ) (८)।

### विषमीकरण—

१. पुरोगामी विषमीकरण—वणस्सइ (४४),

२. पश्चगामी विषमीकरण—बंमचेर।

### संज्ञा एवं सर्वनाम शब्द—

अर्धमागधी प्राकृत में पद रचना की दृष्टि से पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग के रूप हैं। अकारान्त इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, अकारान्त के रूप में संज्ञा शब्द प्रचलित है। यहाँ सभी तरह के रूपों को नहीं दिया जा रहा है। अपितु परिवर्तन युक्त रूपों को ही प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसे—

१. अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के प्रथमा विभक्ति के एकवचन में प्रायः “ए” प्रत्यय होता है। जैसे—अणगारे (२८), खेयण्णे (३५), मो, मारे (४८), चेलकण्णे (५०)।

२. वृत्तिकार की वृत्ति में प्रायः “ओ” प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। जैसे—सारो (५), आयारो (५), सो (५), जीवो (७), भावो (७), गुणो (१००), सीयधरो (१००)।

३. तृतीय विभक्ति के एकवचन में कहीं-कहीं पर “सा” प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। जैसे—मणसा, वायसा, कायसा।

४. चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में निम्न प्रत्यय होते हैं—

स्स—सारस्स (१३२), मरमाणरस्स (१०६)।

आय—धम्ममायाय (११३), परिण्णाय (१०९)।

आते—धम्माते

आये—कम्मार्थ

५. पञ्चमी विभक्ति के एकवचन और बहुवचन में आतो, आतु प्रत्ययों की बहुलता है। आ. ओ और आउ प्रत्यय भी प्रयुक्त हुए हैं।

आतो—धम्मातो, आतु—धम्मातु

आओ कम्माओ, आउ मुहाउ (१०६), गाणाउ (५९)।

नोट—पञ्चमी एकवचन में हितो शब्द का भी प्रयोग हुआ है। जैसे—चरणाहितो (५९)।

सप्तमी विभक्ति के एकवचन में सिं प्रत्यय की बहुलता है। इसके अतिरिक्त सिंस्सि, मिं और ए प्रत्यय पाये जाते हैं। जैसे—समणे निग्गंथे (११५), समयंसि (६५), गामंसि (२२१), उयंसि तेयंसि, जंसि (२४३), दंसणमि (११८), तवंमि (११९)।

६. तृतीया के बहुवचन में हि, हिं, हिं, प्रत्यय होते हैं,<sup>१२५</sup> इन प्रत्ययों में से “हि” और हिं प्रत्ययों की बहुलता है। जैसे—दिट्ठेहिं (१२०), एएहिं सरीरेहिं (२०), तेहि गुणेहि जेहिं (२०)।

७. स्त्रीलिंग शब्दों के तृतीया विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति के एकवचन पर्यन्त “ए” प्रत्यय की बहुलता है। जैसे—पेहाए (१२८)।

८. सर्वनाम शब्दों में पुल्लिंग आदि की तरह प्रत्यय लगते हैं। जैसे—अंसि (१६१), सव्वं (१६१), तुमंसि (१६८)।

### क्रिया और उसकी विशेषताएँ—

१. वर्तमान काल प्रथम एकवचन में “ति” प्रत्यय होता है। जैसे—भवति (१७७), अवहरति (८१)।

२. वर्तमान काल प्रथम पुरुष एकवचन में इ और ए प्रत्यय भी होते हैं। जैसे—पसंसिए (९७), समुवेइ (८१)।

नोट—भविष्यतकाल में भविष्यतकाल के प्रतीक प्रत्यय “स्व” और “हि” के पश्चात् वर्तमान काल की तरह प्रत्यय लगाकर रूप बनाये जाते हैं।

३. वर्तमान काल उत्तम पुरुष बहुवचन भविष्यतकाल में इस तरह का प्रयोग भी मिलता है। जैसे—आगमिस्सं (११२), आगमिसा (११९)।

४. विधि एवं आज्ञार्थक में तु और उ प्रथम पुरुष एकवचन में होते हैं। जैसे—होउ (१५१)।

## नोट—

वर्तमानकाल, भविष्यतकाल, विधि एवं आज्ञार्थक में ज्ज और ज्जा प्रत्यय भी होते हैं। जैसे— गच्छिज्जा (१२०), जाणिज्ज (३) (विधि/ आज्ञा) नोवलिपिज्जासि (वर्तमानकाल ७७) परिकहिज्जइ (भवि. १२०) परिक्कमिज्जासि (भवि. १२१)।

५. भूतकाल में इंसु और ऐसु प्रत्यय का प्रयोग पाया जाता है। जैसे—विहरिसु, हिंसि सु (२०१)।

## कृदन्त—

अर्धमागधी में निम्न कृदन्तों के प्रयोगों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैसे—

### १. वर्तमान कृदन्त

(क) न्त—वंहति, वहाविंती, अणुमन्न्ती (२३)

(ख) माण—गवेसमाणा, विहिंसमाणा (२२)

### २. सम्बन्ध कृदन्त

त्ता—वियहिता (२९), हंता, छेत्ता, भेत्ता, विलुंपिता (७२)

तु—बंधिन्तु (२), मोत्तं (८९)

तूण—

टटु—आहट्टु (१८०)

ऊणं—उइऊणं (१३२), दडूण (५१)

इय—पहिलेहिए (१०५)

इत्ताणं

एत्ताणं

इत्तु

च्च

च्चा—अभिसमेच्चा (२९), णच्चा (५०)

ईअ/ईय—लद्धीय (४५)

आय—गहाय (२०७), निहाय (२०७)

टठा—सभुटठा (५२)

### हेत्वर्थ कृदन्त—

उं—जीविउं (५१), सोउं, मज्जिउं (९२)

तु—जीवितुं कुव्वेतुं

विधि कृदन्त—

अव्व—तरिअव्वों (९१), होअव्वं (९६)

यव्व—चवियगवा (९१)

तण्व—हंतण्वा (११९), परिधितण्वा (११९)

अवयव—

तो, को, चिय, ण, य, पि, जिइ, तोह, ता, उ, साहे, सया, जह, णवरं, अन्नया, पुणो, विव, पृ. (५१), सव्वहा (५१) जाव, ताव, णं, वा, नो, (६३) जेणे (६४), अ (६४), एगया (७२), सह (७३), अदुवा (७६), चेव, तत्तिया, जत्तिया, विणा (८), अन्नहा (९०), जहा, तहा (९१), तम्हा (९४), नेव (९४), सिया (९४), ह, प्र (५), जम्हा (९५), सव्वओ (९७), इइ (इति) (९७), सव्वसो (९९), हि (११२), पच्छा (११६), जाइओ (१५५), णं (वाक्यालंङ्कारे) (१५७)।

तद्धित—

ल्ल—माइल्लो/माइल्लो (६४)

इल्ल—थंडिल्ल (२७३)

त्त—अन्धत्तं बहिरत्तं, मूयत्तं, काणत्तं, कुंठत्तं, खुज्जत्तं, बडभत्तं, सामत्तं, सबलत्तं (७९),

य—निदया, दयालुया (१०२), सुत्तया (१०२)

त्तण—णिवत्तण, किवत्तण

संधि—

“सन्धान संधि” अर्थात् मेल का नाम सन्धि है। प्राकृत में स्वर संधि की बहुलता है। कुछ विकल्प संधि व्यवस्था भी है। संधि के तीन भेद हैं—(१) स्वर संधि (२) व्यंजन संधि और (३) अव्यय संधि।

स्वर संधि—

इसके पाँच भेद हैं—(१) दीर्घ संधि, (२) गुण संधि, (३) विकृत वृद्धि संधि, (४) ह्रस्व दीर्घ संधि और (५) प्रकृति भाव संधि।

दीर्घ संधि—

ह्रस्व या दीर्घ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ समान स्वर होने पर दीर्घ संधि हो जाती है। जैसे—वीरियायारो (वीरिय + आयार) पृ. १४, बंधाणुलोमया (बंध + अणुलोमया) पृ. ४, सचित्ताचित (सचित + अचित) पृ. २६८, मुणीस, भाणूदय।

आचाराङ्ग-शीलाङ्कृति : एक अध्ययन

२२५

## गुण संधि—

अ या आ वर्ण से आगे इ और उ हो तो गुण आदेश हो जाता है। जैसे—मोक्खोवाओ (मोक्ख + उवाओ) पृ. ४, चओवचइयं (चअ + उपचइयं) पृ. ४३, महोअही (महाओअही) पृ. ९१, सुद्धोदए पृ. २७।

## विकृत वृद्धि संधि—

ए और ओ से पहले अ और आ हो तो उनका लोप हो जाता है। जैसे—अप्पेगे (अप्प + एगे) पृ. २५, जस्सेते पृ. २६।

## ह्रस्व दीर्घ विधान संधि—

मईमया पृ. २०६, अंडापोअअ पृ. ४५, अणुपुव्वेण पृ. १८२।

## प्रकृति भाव संधि—

मइउगह पृ. २६८, नोइदिय पृ. २६८, तप-आचारो पृ. ३।

## व्यंजन संधि—

प्राकृत में व्यंजन परिवर्तन होते हैं, इसलिए व्यंजन संधि नहीं है।

## अव्यय संधि—

यह सन्धि दो अव्यय पदों में होती है। जैसे—जहउम्हा पृ. ३३, णेव पृ. ३४, सव्वओवि पृ. ३५, वावि पृ. ३५, केवच्चिरं पृ. ३५, अण्णेवा पृ. ३६, णइए इचत्थं पृ. ३६, दंडेत्ति पृ. ३६, जमिणं पृ. ४३१, जेहत्य पृ. ७७।

इन संधियों के अतिरिक्त प्राकृत में स्वर लोप संधि की बहुलता है। आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत व्याकरण में लिखा है कि स्वर के आगे स्वर हो तो शब्द के स्वर का लोप हो जाता है।<sup>१२६</sup> जैसे—एगिंदिय पृ. ४५ (एग + इंदिय), यहाँ एग शब्द में स्थित अ स्वर का लोप हो गया। विगलिदिएसु पृ. ४५, पिंडेसणा पृ. २३८। अणासवा पृ. १२१ (अण + आसवा) यहाँ अ के बाद आ होने पर प्रथम शब्द के स्वर का लोप हो गया। आणाकंखी पृ. १२७, अहावरा पृ. २३८, मूलुत्तर (मूल + उत्तर) पृ. २४६, यहाँ अ के बाद उ होने पर शब्द के अ का लोप हो गया।

यश्रुति—सीयधरो पृ. १०० (सीओ), सीयल दव्व पृ. १००, भूअ पृ. १००।

## अलंकार योजना—

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्त्व अलंकार कहलाते हैं। आचारांग सूत्र गद्य की प्रधानता वाला प्राकृत का सिद्धान्त ग्रन्थ है। आचार्य शीलांक ने इसकी वृत्ति में काव्य की कला को भी प्रस्तुत किया है। काव्य की कला का अलंकरण अलंकार कहलाता है। शब्द और अर्थ से युक्त काव्य शब्दालंकार और अर्थालंकार इन दो



अलंकारों से युक्त है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि को लिया जाता है। अर्थालंकार में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, संदेह, भ्रांतिमान, दृष्टान्त आदि को लिया जाता है। आचार्य शीलांक की आचारांग वृत्ति में अलंकारों का प्रयोग हुआ है। यहाँ कुछ अलंकारों के प्रयोग उदाहरण सहित दिये जा रहे हैं—

### अनुप्रास—

“अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्सय यत्”<sup>१२७</sup> स्वरों की विषमता रहने पर भी शब्दों की समानता को अनुप्रास कहा जाता है। जैसे—लोगागास पएसे इक्किक्कं निक्खिये पुढविजीवं।<sup>१२८</sup>

आउकायं च तेउकायं च वाउकायं च<sup>१२९</sup>

### उपमा—

जहाँ सादृश्यता दिखाई जाती है, वहाँ उपमा अलंकार होता है। जैसे—

बालुगा कवलो चव, निरासाए हं संजमो।

जवालोह मया चव, चावेयत्वा सुदुक्करं॥<sup>१३०</sup>

अंधस्स जह पलिता दीवसत सहस्स कोड़ीवि।<sup>१३१</sup>

### दृष्टान्त—

“दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्”।

अर्थात्—समान धर्म वाले वाक्यार्थ का प्रतिबिम्बन—विशेष अवधान के द्वारा सादृश्य की प्रतीति करना दृष्टान्त कहा जाता है। जैसे—

अड्डी जहा सरीरंमि अणुगयं चयणं खरं दिडुं।

एवं जीवाणु गयं पुढविसरीइं खरं होई॥<sup>१३२</sup>

आचारांग वृत्ति में प्राकृत और संस्कृत इन दो भाषाओं का प्रयोग हुआ है। शीलांक आचार्य ने प्राकृत और संस्कृत दोनों ही भाषाओं के माध्यम से अलंकारिक शैली को प्रस्तुत किया है। दोनों में ही दृष्टान्त, उपमा, रूपक आदि अलंकार को दिया गया है। यहाँ अलंकारों की मात्र सूचना दी जा रही है। संस्कृत के प्रयोगों को नहीं दिया जा रहा है।

अलंकार के अतिरिक्त इसमें सभी तरह के रसों का भी प्रयोग हुआ है। शान्त रस प्रधान यह रचना वीभत्स, वात्सल्य, करुण, रौद्र, वीर, हास्य आदि रसों के उदाहरणों से भी परिपूर्ण है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है—

### शान्त रस—

अरिहंतादिसु भते सुत्तरूई पुयणुमाण गुपेही।

बन्धई उच्चागोयं विवरीए बंधई इयं॥<sup>१३३</sup>

### करुण रस—

मंसाणि छिन्न पुष्पाणि उद्धमियाणया कायं ।  
परीसहाइं लुचिं अदुवा पंसुणा उवकरिंसु ॥<sup>१३४</sup>

### बीभत्स रस—

महुंवा मज्जवामंसं वा सक्कलिं वा फाणियं वा पूयं वा सिहिरिणिं वा ।<sup>१३५</sup>  
इस प्रकार आचारांग वृत्ति में विविध रसों के परिपाक को भी प्रस्तुत किया गया है ।

### छन्द—

प्राकृत में काव्यकारों ने प्राकृत के स्वतंत्र छन्दों के अतिरिक्त संस्कृत के मालिनी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, बसन्ततिलका आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है । आचारांग सूत्र में आचारांग के वृत्तिकार ने वृत्ति लिखते समय गाथा छन्द के अतिरिक्त अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया है । यहाँ कुछ छन्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं ।  
यथा—

### गाथा छन्द भेद

गाथा छन्द के प्राकृत कवियों ने २७ भेद किये हैं ।<sup>१३६</sup>

१. लक्ष्मी, २. ऋद्धि, ३. बुद्धि, ४. लज्जा, ५. विद्या, ६. क्षमा, ७. देवी, ८. गौरी, ९. धात्री, १०. चूर्णा, ११. छाया, १२. कांति, १३. महामाया, १४. कीर्ति, १५. सिद्धि, १६. मानिनी, १७. रामा, १८. मोहिनी, १९. विश्वा, २०. वासिता, २१. शोभा, २२. हरिणी, २३. चक्री, २४. सारसी, २५. कुररी, २६. सिंही और २७. हंसिका ।

### गाथा छन्द—

पढमं बारहमत्ता बीए अड्डारहेहि संजुत्ता ।

जह पढमं तह तीऊं दह पञ्ज विहूसिआ गाहा ॥

अर्थात्—गाथा के प्रथम चरण में १२ मात्राएँ होती हैं, दूसरे में यह १८ मात्राओं से युक्त होती हैं । तीसरे चरण में प्रथम चरण की ही तरह होती हैं । बाकी चरण में गाथा १५ मात्रा से विभूषित होती हैं ।

उदाहरण—सोऊं सोवणकाले मज्जण काले य मज्जिउं लोलो ।

जेमेउं च वराओ जेमण काले न चाइए ॥<sup>१३७</sup>

### गीति छन्द—

अग्गबीया मूल बीया खंध बीया चेव पोरबीया ।

### उपगीति—

बीय रुहा समुच्छिम समासओ वणसई जीवाय ॥

## स्कन्धक छन्द

उदाहरण—अवरेण पुव्व किह से अतीतं किह आगमिस्सं न सरंति एगे ।  
भासन्ति एगे इहमाणवाओ जह स अईअं तह आगमिस्सं ।<sup>१४१</sup>  
तथैव किञ्चिद्गदतः स एव में, पुनातु धीमान् विनयार्पिता गिरः ॥<sup>१४२</sup>

## अनुष्टुप् छन्द—

वर्ण वृत्तों में अनुष्टुप आठ अक्षरों के चरण की एक जाति है। इसके चरणों में गुरू लघु के भेद से अनेक छन्द बनते हैं। अनुष्टुप का जो लक्षण सामान्य रूप से प्रचलित है वह श्रुतबोध के अनुसार है।

उदाहरण—बालुगा कवलो चेव, निरासाए हु संजमो ॥  
जवा लोहमया चेव चावेयव्वा सुदुक्करं ॥<sup>१३८</sup>

गावे वा अदुवा रण्णे, थंडिलं पडिलेहिया ।  
अप्पपाणं तु विन्नाय तणाइं स थरे मुणी ॥

## इन्द्रवज्रा

SS | SS | S | SS = ११

दिज्जे तआरा जुअला पएसुं, अणंतरे दो गुरु जुग सेसं ।

णपेफणिदाधुअइदवज्जा, मत्ता दहा, अट्ट समा सुसज्जा ।

अर्थात् प्रत्येक चरण में दो तगण दिये जायें, अंत में जगण तथा दो गुरु हों, फणीन्द्र कहते हैं कि यह इंद्रवज्रा छंद है तथा इसमें दस और आठ मात्राएँ प्रत्येक चरण में होती हैं। उदाहरण—

भिकखं पविट्ठेण मएऽज्ज दिट्ठं पमयामुहं कमलविसालनेत्तं ।

वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठ नायं, सकुंडलं वा वयणं न वत्ति ।<sup>१३९</sup>

## उपेन्द्रवज्रा

S | SS | S | S S = ११ वर्ण

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ

उदाहरण—फलोदएणं मि गिहं पविट्ठो तत्थासणत्था पमया मि दिट्ठा

वक्खित्त चित्तेण न सुट्ठ नायं, सकुंडलं वा वयणं न वत्ति ।<sup>१४०</sup>

## उपजाति—

समान जाति के दो छन्दों के चरणों का किसी छन्द में संकर (मेल) होने पर वह उपजाति कहा जाता है ।

आचारांग वृत्तिकार ने द्वादशाक्षर उपजाति (वंशस्थ-इन्द्रवंशा) छन्द का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

आचारशास्त्रं सुविनिश्चितं यथा, जगाद वीरो जगते हिताय यः।

तथैव किञ्चिद् गदतः स ए व मे, पुनातु धीमान् विनयार्पिता गिरः॥

आचारांग सूत्र में गाथा, अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, छन्दों को छोड़कर अन्य जितने भी छन्द हैं, वे प्रथम पंक्ति की अपेक्षा द्वितीय पंक्ति में भिन्नता लिये हुए हैं। इससे यह अर्थ नहीं निकलता है कि वे छन्द नहीं हैं। छन्द अवश्य हैं, पर किस तरह के हैं, इस पर स्वतंत्र रूप से अध्ययन अपेक्षित है।

आचारांग सूत्र एवं आचारांग वृत्ति में गद्य की प्रधानता है। पद्य भी गेय प्रधान है, जिन्हें गाया जा सकता है। गद्य में भी गेयात्मकता है। जैसे—

“संति पाणा पुढोसिया लज्जमाणा पुढो पास”

वृत्तिकार ने संस्कृत वृत्ति में प्रायः अनुष्टुप छन्दों का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पर इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा छन्द भी हैं। जैसे—

एक एव हि भूतात्मा, भूते मूले व्यवस्थितः।

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥<sup>१४३</sup>

आचारांग वृत्ति के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में बहुत कम छन्द हैं। जहाँ कहीं भी छन्दों का प्रयोग किया गया है, उनमें प्रायः प्राकृत में गाथा छन्द और संस्कृत में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है। शीलांक आचार्य ने अपनी वृत्ति में अन्यत्र प्रचलित गाथाओं एवं संस्कृत श्लोकों को भी प्रयुक्त करके विषय की पुष्टि की है।

अज्ञो जन्तुरनीशः स्यादात्मनः सुखःदुःखयोः।

ईश्वरप्रेरितो गच्छेच्छुभ्रं वा स्वर्गमेव वा ॥<sup>१४४</sup>

आचारांग वृत्ति के भाषात्मक अध्ययन में सम्पूर्ण विषय को नहीं समेटा गया है। इसके वर्ण विषय गद्य-पद्य शैली संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, कृदन्त, तद्धित छन्द आदि की मात्र सूचना ही दी गई है। आचारांग वृत्तिकार की वृत्ति अर्थ के विस्तार से युक्त है। गद्य-पद्य मिश्रित है। गद्य के प्रयोगों में सुकुमारता है जो काव्य सौन्दर्य को लिये हुए है। आचारांग वृत्ति दुरूह होते हुए भी अपने भाषात्मक प्रवाह के कारण विषय को अधिक स्पष्ट करने वाली है। संक्षिप्त में यदि कहा जाए तो यही कहा जा सकता है कि आचारांग वृत्ति भावों की अनुकूलता के साथ विशेष शैली को लिये हुए है। शीलांक आचार्य ने दार्शनिक दृष्टान्तिक विवेचनात्मक एवं अर्थ गाम्भीर्यपूर्ण शैली का प्रयोग करके भाषा को सरल बनाया है। वृत्ति के सभी विवेचन भाषा सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। छन्द, अलंकार आदि भी इसकी शोभा को बढ़ाते हैं। इस तरह यह वृत्ति भाषा अध्ययन के अनुसंधान को लिये हुए अनुसंधान की अपेक्षा करती है।

□ □ □

## सन्दर्भ ग्रन्थ

१. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ. २४
२. प्राकृत व्याकरण सूत्र १/३
३. समवायांग सूत्र ९८
४. आचारांग वृत्ति, पृ. १
५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १, २
६. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ९
७. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १२
८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १३
९. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १४
१०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १४
११. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ५०
१२. आचारांग सूत्र १/२/१२
१३. आचारांग सूत्र २/३
१४. आचारांग सूत्र २/३
१५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ७८, ७९
१६. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ८०
१७. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ११
१८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १५
१९. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १४०
२०. वही, पृष्ठ ९
२१. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १७
२२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २४
२३. वही, पृष्ठ ११
२४. वही, पृष्ठ ३
२५. वही, पृष्ठ १५ सूत्र ५
२६. वही, पृष्ठ ४२
२७. वही, पृष्ठ २
२८. वही, पृष्ठ ११
२९. वही, पृष्ठ १५ सूत्र ५
३०. वही, पृष्ठ ५५
३१. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ६०
३२. वही, ९१ २/२

३३. वही, पृष्ठ १५ सूत्र ५  
 ३४. वही, पृष्ठ ५७  
 ३५. वही, पृष्ठ १३५  
 ३६. वही, पृष्ठ ९१ २/२  
 ३७. वही, पृष्ठ ६९०  
 ३८. वही, पृष्ठ ६३२  
 ३९. वही, पृष्ठ १७  
 ४०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ४४  
 ४१. वही, पृष्ठ ७  
 ४२. वही, पृष्ठ २०४  
 ४३. वही, पृष्ठ ४८  
 ४४. वही, पृष्ठ ९  
 ४५. वही, पृष्ठ १९०  
 ४६. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २  
 ४७. वही, पृष्ठ ३  
 ४८. वही, पृष्ठ १२६  
 ४९. वही, पृष्ठ ७७  
 ५०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १८०-१८२  
 ५१. वही, पृष्ठ १८  
 ५२. वही, पृष्ठ ७  
 ५३. वही, पृष्ठ २३-२५  
 ५४. वही, पृष्ठ ९१  
 ५५. वही, पृष्ठ ७२  
 ५६. वही, पृष्ठ ३८  
 ५७. वही, पृष्ठ १३५  
 ५८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १७१  
 ५९. आचारांग वृत्ति, पृ. ३१, ३२  
 ६०. वही, पृष्ठ ७७  
 ६१. वही, पृष्ठ ५५  
 ६२. वही, पृष्ठ ६१  
 ६३. वही, पृष्ठ १७१  
 ६४. वही, पृष्ठ १२  
 ६५. वही, पृष्ठ १३५  
 ६६. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २६  
 ६७. वही, पृष्ठ २८  
 ६८. वही, पृष्ठ २९

६९. वही, पृष्ठ १३९  
 ७०. वही, पृष्ठ १३९  
 ७१. वही, पृष्ठ १६३  
 ७२. वही, पृष्ठ १७५  
 ७३. वही, पृष्ठ १२१  
 ७४. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ५३  
 ७५. वही, पृष्ठ २३  
 ७६. वही, पृष्ठ २९  
 ७७. वही, पृष्ठ ४२  
 ७८. वही, पृष्ठ ४८  
 ७९. वही, पृष्ठ ५६  
 ८०. वही, पृष्ठ ५९  
 ८१. वही, पृष्ठ ७३  
 ८२. वही, पृष्ठ ९०  
 ८३. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ९१  
 ८४. वही, पृष्ठ ९१  
 ८५. वही, पृष्ठ ११२  
 ८६. वही, पृष्ठ ११४  
 ८७. वही, पृष्ठ १५१  
 ८८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ११  
 ८९. वही, पृष्ठ १७  
 ९०. वही, पृष्ठ १८  
 ९१. वही, पृष्ठ २८  
 ९२. वही, पृष्ठ ५१  
 ९३. वही, पृष्ठ ५९  
 ९४. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ९९  
 ९५. वही, पृष्ठ १४४  
 ९६. वही, पृष्ठ १५० (गीता की यह पंक्ति)  
 ९७. वही, पृष्ठ २११  
 ९८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ७२  
 ९९. वही, पृष्ठ ७२  
 १००. वही, पृष्ठ ८५  
 १०१. वही, पृष्ठ ८६  
 १०२. वही, पृष्ठ  
 १०३. वही, पृष्ठ २१७  
 १०४. वही, पृष्ठ ११९

१०५. आचारांग सूत्र, पृ. २६-२७
१०६. वही, पृष्ठ ३७
१०७. वही, पृष्ठ ५२
१०८. आचारांग सूत्र, पृ. ८१
१०९. आचारांग सूत्र, पृ. ८९
११०. वही, पृष्ठ १४२
१११. आचारांग वृत्ति, पृ. ९३
११२. वही, पृष्ठ ८४
११३. वही, पृष्ठ ११८
११४. वही, पृष्ठ ११८
११५. आचारांग सूत्र, पृ. १६६
११६. आचारांग सूत्र, पृ. १७३
११७. वही, पृष्ठ २४५
११८. वही, पृष्ठ २८२
११९. वही, पृष्ठ ३३६, ३३७
१२०. वही, पृष्ठ ४०३
१२१. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २२०
१२२. वही, पृष्ठ २२१
१२३. वही, पृष्ठ २३०
१२४. आचार्य हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण आ. १/१७७  
क-ग-च-ज-त-द-प-य-वा प्रायो लुक। ८/१/१७७
१२५. प्राकृत व्याकरण सूत्र ३/७
१२६. प्राकृत व्याकरण सूत्र १/१०
१२७. साहित्य दर्पण
१२८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २१
१२९. वही, पृष्ठ २०३
१३०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ९१
१३१. वही, पृष्ठ २११
१३२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २१
१३३. वही, पृष्ठ ६४
१३४. वही, पृष्ठ २०८
- १३५.
१३६. प्राकृत पैंगलम, पृ. ५६-५७, प्रकाशन—प्राकृत परिषद् वाराणसी सन् १९५९।  
लच्छी रिद्धी बुद्धी लज्जा विज्जा खमा अ देहीआ।  
गोरी धाई चुण्णा छाया कती महामाई।



कित्तो सिद्धी माणी रामागाहिणी विसा अ वासीआ ।  
सोरु हरिणी चक्की सारसि करी सिहो अ हंसीआ ॥

१३७. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ९२  
१३८. वही, पृष्ठ ९१  
१३९. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १२५  
१४०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १२५  
१४१. वही, पृष्ठ ११२  
१४२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १  
१४३. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १२  
१४४. वही, पृष्ठ १२



## वृत्तिकार की आचार सम्बन्धी विवेचना

प्राणीमात्र के जीवन को संरक्षण देने में आचारांग आदि सूत्रों को महत्त्वपूर्ण माना गया है; क्योंकि इनमें विश्वबन्धुत्व की भावना का समावेश है। समस्त जीवों का उपकार इसकी अन्तर अनुभूति है। इसकी आचार-धरा पर अवगाहन करके लोग अनन्त सुख का अनुभव करते हैं।

आचारांग की दिव्य देशना संसार की समस्त जीवों की रक्षा करने में समर्थ है। भगवान की दिव्य देशना को द्वादशांगी के रूप में गणधरों द्वारा सूत्रबद्ध किया गया है। इस द्वादशांगी वाणी में आचारांग सूत्र को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। वृत्तिकार ने आचार के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है—

“सर्व्वेसिं आयारो तित्थस्स पवत्तणे पढमयाए।

सेसाई अङ्गाई एक्कारस आणुपुक्वीए ॥”<sup>१</sup>

अर्थात् सभी तीर्थंकरों के तीर्थ प्रवर्तन के प्रारम्भ में आचार का ही निरूपण किया गया। इसके पश्चात् क्रमशः शेष ग्यारह अङ्गों का प्रतिपादन किया गया। अर्थ रूप में तीर्थंकर वचन प्रतिपादित किये गये। उन्हें गणधरों ने सूत्रबद्ध किया। वृत्तिकार शीलांक आचार्य ने आचार को परम एवं चरम कल्याणकारक मानते हुए कहा है कि “अङ्गों का सार आचार है” आचार का सार उसकी प्ररूपणा है। प्ररूपणा का सार चरण/चारित्र है और चारित्र का सार निर्वाण है।<sup>२</sup> अतः यह स्पष्ट है कि आचार हमारे जीवन का आदर्श है, जो श्रेष्ठतम सुख का कारण है। आचार्य ने आचार-विचार की पृष्ठभूमि पर विचरण करते हुए यह भी कथन किया है कि जो आचार का जानने वाला होता है वह श्रमण धर्म का ज्ञाता होता है। श्रमण धर्म का आधार आचार है।<sup>३</sup> श्रमण आचार गुण के समूह माने जाते हैं। श्रमणों के द्वारा आचार का आचरण किया जाता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आचार श्रमण धर्म का सार है।

वृत्तिकार ने आचार के कई नामों का उल्लेख किया है। जैसे— आचार, आचाल, आगाल, आगर, असासा, आयस्सि, आइण्णा, अजाई और आमोक्ख।<sup>४</sup>

आचार का नाम चरण<sup>4</sup> भी है। चरण की उपेक्षा से अनुयोग दृष्टि को भी प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से यह कथन किया गया है कि द्रव्य से दर्शन की शुद्धि होती है और दर्शन शुद्धि का नाम चरण है।<sup>5</sup>

चरण/चारित्र/आचार अपने आप में विशिष्ट धर्म को प्रतिपादित करते हैं। वृत्तिकार ने इसकी इस प्रकार से व्युत्पत्ति की है—

“आचर्यते आसेव्यत इत्याचारः।”<sup>6</sup>

जिसका आचरण किया जाता है या जीवनपर्यन्त सेवन किया जाता है वह आचार है। आचार की निक्षेप एवं नय दृष्टि से सर्वत्र विवेचना की गई है। आचार का यथार्थ नाम भवगत् किया है। अर्थ, धर्म, प्रत्यन, गुण और पात्र की अपेक्षा से आचार का निश्चयात्मक अर्थ भी प्रतिपादित किया जाता है।

### आचार के भेद—

निक्षेप की दृष्टि से चरण के चार भेद हैं—(क) नाम चरण, (ख) स्थापना चरण, (ग) द्रव्य चरण और (घ) भाव चरण। दिशा आदि की अपेक्षा से आचार के छः और सात भेद किये गये हैं। इसी प्रसंग में द्रव्याचार और भावाचार के विविध भावों के भेदों का उल्लेख किया है। भावाचार के मूल दो भेद हैं—(१) लौकिक और (२) लोकोत्तर। उनमें लोकोत्तर के पाँच भेद गिनाये हैं जो सभी आगम एवं सिद्धान्त ग्रन्थों में मिलते हैं—(१) ज्ञानाचार, (२) दर्शनाचार, (३) चारित्राचार, (४) तपाचार और (५) वीर्याचार। इनका सम्यक्त्व की दृष्टि से प्रतिपादित किया गया है। नाम, स्थापना, द्रव्य, सम्यक्त्व और भाव सम्यक्त्व। भाव सम्यक्त्व तीन प्रकार से कहा गया है—(१) दर्शन, (२) ज्ञान और (३) चारित्र।

शीलांक आचार्य ने आचारांग वृत्ति के प्रारम्भ में आचारानुयोग प्रारम्भ करने की प्रतिज्ञा की है। आचारानुयोग अर्थ और कथन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि अर्थ रूप में आचारानुयोग का विवेचन भगवन् द्वारा प्रतिपादित है। सूत्र का बाद में गणधरों के द्वारा योग/संकलित किया गया। इसलिए अनुयोग की दृष्टि से भी आचार/चारित्र/चरण का महत्त्व है।

### ज्ञानाचार—

वृत्तिकार ने नय के माध्यम से ज्ञान की प्रधानता का प्रतिपादन किया है इसी सन्दर्भ में यह कथन किया है कि हित और अहित की प्राप्ति के परिहार का कारण ज्ञान है। ज्ञान से ही चारित्र उत्पन्न होता है। यही साधन मोक्ष का कारण है।<sup>7</sup> मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान—ये पाँच भेद मूल रूप से ज्ञान के किये जाते हैं।

परन्तु आचारांग-वृत्ति में ज्ञानाचार के आठ प्रकार भी गिनाये गये हैं—<sup>११</sup> (१) काल, (२) विनय, (३) बहुमान, (४) उपधान, (५) अनिह्व, (६) व्यञ्जन (७) अर्थ, (८) व्यञ्जन अर्थ (उभयात्मक)। ज्ञान सकल पदार्थ या आविर्भाविक है।<sup>१२</sup>

### दर्शनाचार—

सम्यक्त्व विषयक आचरण को प्रस्तुत करने वाला दर्शनाचार है। सम्यक्त्व अध्ययन में इसकी विस्तृत विवेचना की गई है। शीलंक आचार्य ने तत्त्व के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है।<sup>१३</sup> इसके दो भेद किये हैं—(१) द्रव्य सम्यक्त्व और (२) भाव सम्यक्त्व।<sup>१४</sup> निक्षेप की दृष्टि से सम्यक्त्व के चार भेद प्रतिपादित किये हैं।<sup>१५</sup> सम्यक्त्व को सम्यक् दर्शन कहते हैं।

दर्शनाचार के आठ भेद किये गये हैं—(१) निशंकित<sup>१६</sup> (२) निष्कांक्षित (३) निर्विचिकित्सा (४) अमूढ-दृष्टि (५) उपवृहण (६) स्थितिकरण (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना।<sup>१७</sup>

### चारित्राचार—

आचारांग का लोकसार नामक पञ्चम अध्ययन चारित्र की विशेषताओं को प्रतिपादित करने वाला है। इस अध्ययन में चारित्र प्रतिपादन, चारित्र विकास, चारित्र के आचरण में अवरोध तथा चारित्र के प्रमुख अङ्गों का वर्णन है। वृत्तिकार ने चारित्र की गम्भीरता, पवित्रता, उदारता और इसकी विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि चारित्र के फल से मुक्ति की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व और ज्ञान का फल चारित्र है। इसीलिए चारित्र मोक्ष का प्रधान अङ्ग है। लोक का सार मोक्ष है। संसारी प्राणी मोह के कारण से इसके महत्त्व को नहीं समझ पाते हैं। इसलिए इसके सार को नहीं पहचानते हैं।<sup>१८</sup>

चरण सम्पन्न चारित्र सम्पन्नता तीन गुप्ति और पञ्च समिति के संयोग से आती है।<sup>१९</sup>

### तपाचार—

तप के आचरण को प्रस्तुत करने वाला तपाचार शारीरिक बाह्य-शुद्धि के साथ आभ्यन्तर शुद्धि को महत्त्व देता है। तप एक ऐसा कर्म है जिसके कारण बँधे हुए कर्मों की निर्जरा की जाती है।<sup>२०</sup> निर्जरा का हेतु होने के कारण तप बारह प्रकार का कहा गया है। लोक विजय अध्ययन में इसका विस्तार से विवेचन किया गया है।

### बाह्य तप—

(१) अनशन (२) ऊणोदरि (३) वृत्ति-संक्षेपण (४) रस-त्याग (५) काय-क्लेश और संलिनता।<sup>२१</sup>

## आभ्यन्तर तप

(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय (३) वैयावृत्य (४) स्वाध्याय (५) ध्यान और (६) उत्सर्ग ।<sup>२१</sup>

बाह्य-तप शरीर के प्रति ममत्व को घटाने वाला होता है और आभ्यन्तर तप मन का नियमन करने वाला होता है ।<sup>२२</sup>

## वीर्याचार—

जो अनिगूहित बल और वीर्य का पराक्रम होता है, वह वीर्याचार है ।<sup>२३</sup> साधक ज्ञान साधना, संयम साधना, तप साधना, भक्ति, श्रद्धा आदि के लिए आत्मशक्ति का उपयोग करता है। वीर्याचार में ज्ञान और आचार का समन्वय होता है इसलिए साधक अपनी साधना के लिए आत्मशक्ति की ओर अग्रसर होता है। वे परिषहों को सहन करते हैं। (१) एकान्त भावना, (२) उपयोगमय जीवन, (३) वैराग्य भावना और (४) अचेलकता—इन चार रचनात्मक उपायों पर प्रवृत्त साधक वीर्याचार को बलिष्ठ करता है ।<sup>२४</sup>

जैन आचार की उदात्त भावना है। आचारांग सूत्र पूर्णतः चारित्र की पाँचों ही विशेषताओं को प्रस्तुत करता है। वृत्तिकार ने वृत्ति के माध्यम से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का रहस्य उद्घाटित किया है।

## श्रमणों की आचार संहिता—

आगम साहित्य में श्रमणों के सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश डाला गया है। श्रमण क्या है? श्रमण के जीवन का उद्देश्य क्या है? चर्या, आचार-विचार एवं उनके आध्यात्मिक विकास चरण क्या हैं? इन सभी प्रश्नों का समाधान बाह्य और आभ्यन्तर दृष्टियों से आचारांग में किया गया है। आचारांग वृत्तिकार ने समस्त आचार संहिता को सामने रख कर उनके विचारों के अनुकूल वीतराग वाणी पर आधारित विवेचन सर्वत्र किया है। इसके प्रारम्भिक शस्त्र परिज्ञा अध्ययन में वृत्तिकार ने समस्त प्राणियों के जीवन रक्षण करने का उपाय दिया है। उसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर ज्ञान और चारित्र के मार्ग पर चलने वाले साधकों की भूमिका को भी प्रस्तुत किया है। अगणार ज्ञान विषय को जानता है और अज्ञात विषय का परित्याग करता है। वह चरण अर्थात् चारित्र में प्रवृत्त मूल और उत्तर गुणों से सम्यक् यत्न करता हुआ संयत, वीर एवं मेधावी बना रहता है ।<sup>२५</sup>

“श्राम्यतीति श्रमणो—यतिः” जो श्रम करता है या यत्न करता है, वह श्रमण है। अर्थात् ‘श्रमण’ मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है, पापों से उपरत, राग-द्वेष से विरत, गुरु के सान्निध्य में तत्पर, वीतराग मार्ग की सेवा करता है। जीवनपर्यन्त

उनके उपदेशों पर चलता है।<sup>१०</sup> श्रमण पाप के अनुष्ठान से रहित ज्ञान, दर्शन और चारित्र का आचरण करता है। वह पापों से अनुपरत<sup>११</sup> समताधर्म का पालन करता है। इसलिए कहा जाता है कि “समिथा परियाए वियाहिए”<sup>१२</sup> अर्थात् समता का उत्तर चारित्र की प्रतीति कराता है “विप्पमुक्कस नत्थि मग्गे विरयस्स।”<sup>१३</sup> चारित्र सम्पन्न मुनि शरीर आदि क्रियाओं से निरासक्त और विभक्त होता है। उस त्यागी विरक्त साधक के लिए संसार में परिभ्रमण नहीं करना पड़ता है।

शस्त्र परिज्ञा के अतिरिक्त अन्य सभी अध्ययनों में श्रमण के समभाव को दर्शाया गया है। उपधानश्रुत से प्रसिद्ध अध्ययन श्रमण के तपःचरण, ज्ञान, ध्यान, विहार एवं संयम की बलिष्ठता पर प्रकाश डालता है। महावीर की तपश्चर्या के नाम से यह श्रुत अध्ययन श्रमणों साधना की विशेषताओं का उल्लेख करता है।

इसका द्वितीय श्रुतस्कन्ध अहिंसा समता, आचार-विचार, चर्या, तपःचरण, कषाय विजय, अनासिक्त, आहारशुद्धि, स्थान, गति, भाषा, विवेक एवं निवास स्थानों एवं भावनाओं का बोध कराने वाला है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध आचार चूला के नाम से प्रसिद्ध है। शीलंक आचार्य ने इस श्रुतस्कन्ध को नौ ब्रह्मचर्य अध्ययन के नाम से प्रतिपादन किया है। निक्षेप और नय पद्धति पर आधारित इसका सम्पूर्ण विवेचन भिक्षु और भिक्षुणी की समस्त क्रियाओं पर आधारित है।

श्रमण, माहन, अतिथि, कृपण और वणीपक—इन पाँच श्रमणों का व्युत्पत्तिपूर्वक विवेचन प्रस्तुत किया है।<sup>१४</sup> महान का अर्थ ब्राह्मण, अतिथि का अर्थ का भोजन काल में उपस्थित अभ्यागत कृपण का अर्थ दरिद्र और वणीपक का अर्थ बंदीजन आदि लिया है।<sup>१५</sup>

श्रमण के पाँच अन्य भेद इस प्रकार भी किये गये हैं—(१) निर्ग्रन्थ, (२) शाक्य, (३) तापस, (४) मौरिक और (५) आजीवक।<sup>१६</sup> जैन श्रमण पाँच आचारों से युक्त होता है, वह तीन गुप्ति, पाँच समिति, पञ्च महाव्रत, छः आवश्यक आदि गुणों से युक्त संयमपूर्वक विचरण करता है। वह राग-द्वेष से रहित, ज्ञान, दर्शन व चारित्र में लीन रहती है।<sup>१७</sup>

### श्रमण के मूल गुण—

श्रमणों के आचार-विचार का विवेचन समस्त आगम ग्रन्थों में किया गया है। उनमें श्रमणों की भूमिका, श्रमणों की साधना, श्रमणों के गुण आदि का पर्याप्त रूप में विवेचन किया गया है। श्रमणों के गुणों में सत्ताईस मूल गुणों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। पाँच महाव्रत, छह आवश्यक, पञ्च समिति, पञ्च इन्द्रिय निरोध, अचेलकत्व, अस्नान, अदन्तधावन, भूमिशयन, रात्रिभोजन परित्याग और आहारचर्या। श्रमणों के मूल गुण दर्शन शुद्धि को करने वाले होते हैं

## पञ्च महाव्रत—

### १. अहिंसा महाव्रत—

आचारांग का प्रथम अध्ययन प्राणियों की रक्षा से सम्बन्धित है, जिसमें अहिंसा का पर्याप्त विवेचन किया गया है। षट्काय-जीव की रक्षा इसका सर्वोपरि उद्देश्य कहा जा सकता है।

वृत्तिकार ने संयम में स्थित श्रमण के लिए जिस जीव रक्षा का विवेचन किया है उसमें इस बात का संकेत किया गया है कि श्रमण सभी दिशाओं, विदिशाओं एवं योनियों से जीवों की रक्षा करते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवों के समारम्भ से रहित अणगार सदैव विचरण करते हैं।<sup>३५</sup>

शीलांक आचार्य ने इस पर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए कहा है कि श्रमण अहिंसा का कृत, कारित और अनुमोदना से रहित सभी प्राणियों, सभी जीवों, सभी भूतों और सभी सत्वों की रक्षा करते हैं।<sup>३६</sup> श्रमणों के आहार, उपाधि, पूजा और रिद्धि आदि भी ज्ञान, चरण की क्रिया पर आधारित होते हैं।<sup>३७</sup>

वृत्तिकार ने नय और निक्षेप की दृष्टि से अहिंसा के गुणों पर प्रकाश डाला है।<sup>३८</sup> (१) शरीरबल (२) ज्ञातिबल (३) मित्रबल (४) प्रेत्यबल (५) देवबल (६) राजबल (७) चोरबल (८) अतिथिबल (९) कृपणबल और (१०) श्रमणबल, इन समारम्भों से रहित श्रमण होता है।<sup>३९</sup>

### सत्य-महाव्रत—

भाषा रूप में परणित नाना प्रकार के वचनों के दोषों का यावत् जीवन परित्याग करना श्रमणों का सत्य महाव्रत है। सत्य महाव्रती श्रमण हित और अहित का विचार करके ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य का आचरण करता है।<sup>४०</sup> वह हर्ष, क्रोध का प्रतिलेख करके सत्य की रक्षा करता है।<sup>४१</sup>

“पुरिसा सच्चमेव मेधावी मरंतरइ”<sup>४२</sup>

अर्थात् पुरुष सत्य से मेधावी होता है। तीसरे अध्ययन के तृतीय उद्देशक के परम सत्य को जानने की शिक्षा दी है। इसमें कहा है कि सत्य को अच्छी तरह से जानो। सत्य की आज्ञा में उपस्थित रहने से मेधावी मार/मृत्यु/संसार से पार हो जाता है।<sup>४३</sup> सत्य धर्म ग्रहण करने से साधक श्रमण आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। वह राग-द्वेष से रहित ज्ञानादि से युक्त कभी भी व्याकुल नहीं होता है। वह आत्मदृष्टा बना रहता है। लोकालोक प्रपञ्चों से रहित होता हुआ सत्य की आराधना करता है। ज्ञान आदि से युक्त श्रुत चारित्र्य के गुणों को लेकर श्रमण सत्य की ओर लगा रहता है। वृत्तिकार ने सत्य के तीन अर्थ किये हैं—

१. प्राणि मात्र के प्रति हितकर संयम
२. गुरु साक्षी से ग्रहित पवित्र संकल्प और
३. सिद्धान्त प्रतिपादक आगम<sup>५५</sup>

सत्य को बहुमूल्य मानकर श्रमण प्रतिज्ञापूर्वक प्रवृत्तियों को सामने रखकर चलता है। वह आसेवना परिज्ञा आदि की प्रवृत्ति, में स्थित, गुरु साक्षी से ग्रहित प्रतिज्ञा का निर्वाहक भी बनता है। आगम सिद्धान्त का पालन करता है तथा नाना प्रकार के विकल्पों से रहित वीतराग मार्ग का अनुसरण करता है।

आचारांग सूत्र के नवें अध्ययन में महावीर की चर्या इस बात को प्रमाणित करती है कि, ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप में लीन श्रमण मौनपूर्वक विचरण करते हैं। महावीर एकान्त में वास करते हैं। उस समय में लोगों के द्वारा पूछे जाने पर भी मौन अर्थात् नहीं बोलने को ही विशेष महत्त्व देते हैं। वृत्तिकार ने अबहुवाचि या अबहुभाषी के रूप में इस बात का संकेत किया है और इसे ही उत्तम मानकर सत्य के महत्त्व को स्पष्ट किया है। इसमें यह भी कथन किया गया है कि साधक श्रमण की अपेक्षा गृहस्थ कुछ न कुछ अवश्य बोलेगा।<sup>५५</sup>

द्वितीय श्रुतस्कन्ध के चतुर्थ अध्ययन में श्रमण-श्रमणियों के भाषा व्यवहार पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। सावद्य भाषा को अनुचित कहा है। इसी प्रसंग में संयत के सोलह वचनों का कथन किया है।<sup>५६</sup> शीलंक आचार्य ने नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और रूप—इन छः निक्षेपों की दृष्टि से भाषा की वास्तविकता पर प्रकाश डाला है और यह कथन किया गया है कि श्रमण, सत्या, मृषा, सत्यामृषा और असत्या मृषा का व्यवहार न करें।<sup>५७</sup> उक्त चारों भेदों के अन्य भेद भी आचारांग में दिये गये हैं सत्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ वृत्तिकार ने इस प्रकार दी हैं—<sup>५६</sup>

१. हास्य का परित्याग, २. अनुरूप चिंतन पूर्वक भाषण, ३. क्रोध का परित्याग,
४. लोभ का परित्याग और ५. भय का परित्याग।

समवायांग,<sup>५८</sup> आवश्यक सूत्र<sup>५९</sup> आदि ग्रन्थों में भी यही भावनाएँ दी गई हैं।

### अदत्तादान विरमण महाव्रत—

अचौर्य महाव्रत के रूप में प्रसिद्ध अदत्तादान का विवेचन द्वितीय श्रुतस्कन्ध के पन्द्रहवें अध्ययन में विशेष रूप से किया गया है। गाँव, नगर, अख्य, थोड़ा, बहुत, सूक्ष्म, स्थूल, सचेतन, अचेतन आदि पदार्थ स्वामी के नहीं दिये जाने पर न तो स्वयं ग्रहण करना, न स्वयं दूसरे के द्वारा ग्रहण करवाना और न ही ग्रहण करते हुए का अनुमोदन करना। अर्थात् अदत्तादान ग्रहण करने वाला श्रमण तीन कारणों से, तीन योगों से यावत् जीवन प्रतिज्ञापूर्वक विचरण करता है। यदि किसी तरह पूर्व कृत अदत्तादान में पाप की प्रवृत्ति होती है तो वह पाप की निवृत्ति के लिए प्रतिक्रमण



करता है, आत्मनिंदा करता है, गुरु की साक्षी से उसकी गर्हा करता है और अपनी आत्मा से अदत्तादान का व्युत्सर्ग करता है।<sup>41</sup>

आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के तृतीय अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक में आदान शब्द का प्रयोग किया है। इस आदान शब्द को वृत्तिकार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—आत्म प्रदेशों के साथ आठ प्रकार के कर्म जिन कारणों से आदान/ग्रहण किये जाते हैं, चिपकाये जाते हैं, वे पाँच आस्रव, अठारह पाप स्थान, और कषाय रूप हैं, इसलिए इनका परित्याग करना चाहिए।<sup>42</sup> चोरी को आस्रव द्वार के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।

अदत्तादान विरमण महाव्रत की पाँच भावनाएँ निम्न प्रकार दी गई हैं—

१. यथायोग्य विचारपूर्वक अवग्रह की याचना करें।
२. अवग्रह, अनुज्ञा, ग्रहणशील बनें।
३. अवग्रह की क्षेत्र काल सम्बन्धी जो भी मर्यादा ग्रहण की हो उसका उल्लंघन न करें।
४. गुरुजनों की अनुज्ञा ग्रहण करके आहार-पानी आदि का उपभोग करें।
५. सार्धर्मियों से भी विचारपूर्वक अवग्रह याचना करें।<sup>43</sup>

अदत्तादान विरमण महाव्रत से छह: काय के जीवों का रक्षण होता है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध में श्रमण चर्या के विवेचन में आहार ग्रहण आदि के समय को खात, भित्ति, सन्धि, उदक, भवन<sup>44</sup> आदि का विचार करके ग्रहपति से आहार का ग्रहण वर्जित बतलाया है। अदत्त अर्थात् चोरी से सभी तरह का घात होता है। इसलिए उन क्रियाओं से विमुक्त होकर ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की आराधना श्रमण का परम कर्तव्य माना गया है।

### मैथुन विरमण—

आचारांग सूत्र के सम्यक्त्व अध्ययन में निर्मल दृष्टि से सच्ची श्रद्धा और यथार्थ लक्ष्य का बोध कराया गया है। इसी में तत्त्वज्ञ व्यक्ति के लिए तप के महत्त्व का बोध भी कराया गया है। वीर साधक आत्मस्वरूप में प्रसन्नता धारण कर संयम में तल्लीनता रखता है। पाँच समिति से युक्त होकर सदा प्रयत्नपूर्वक क्रिया करता है। ज्ञानादि से युक्त ब्रह्म की उपासना भी करता है। ब्रह्म उपासना एवं ब्रह्मचर्य में तल्लीनता वीरों का मार्ग कहा जाता है। वीर पुरुष ब्रह्मचर्य में रहकर शरीर को वश करता है/दमन करता है।<sup>44</sup>

ब्रह्मचर्य का अर्थ आत्म-साक्षात्कार और परमात्मा-दर्शन है। ब्रह्म शब्द ईश्वर और आत्मा का नाम है। “ब्रह्मणि चर्यते अनेन इति ब्रह्मचर्यम्” अर्थात् इस व्युत्पत्ति के अनुसार ब्रह्म में लीन होना ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य शारीरिक और मानसिक शक्ति को सुदृढ़ बनाता है। आसक्ति अरति, रति, असंयत की भावना को समाप्त कर वीर्य की रक्षा करता है। यह आत्मा का परम साधन है। सभी तपों में ब्रह्मचर्य को उत्तम तप भी कहा है।<sup>६६</sup>

ब्रह्मचर्य के चार अर्थ हैं—(१) ब्रह्म में विचरण करना, (२) मैथुन विरमण/इन्द्रिय संयम (३) गुरुकुल वास और (४) सदाचार।<sup>६७</sup> आचारांग वृत्तिकार ने ब्रह्मचर्य को चारित्र का एक मुख्य अङ्ग माना है।<sup>६८</sup>

ब्रह्मचर्य उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। यह इन्द्रिय और नोइन्द्रिय विजय रूप है। यम और नियम इसके प्रधान गुण हैं। ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने से मुनष्य का अन्तःकरण बाह्य और आभ्यन्तर दोनों दृष्टियों से गम्भीर बनता है। ब्रह्मचर्य देह और मन का दमन करता है। वृत्तिकार ने कर्मोपचय और तपश्चरण का साधन भी माना है।<sup>६९</sup>

द्वितीय श्रुतस्कन्ध में साधु एवं सार्धियों की संयम साधना का विस्तार से विवेचन करने के उपरान्त चतुर्थ महाव्रत (मेहुण विरमण) के औचित्य के साथ उनकी भावनाओं का विवेचन भी किया है। समस्त प्रकार के मैथुन विषय का सेवन महाव्रती के लिए उचित नहीं है। इसलिये वह देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यच योनी सम्बन्धी मैथुन का न स्वयं सेवन करता है, न दूसरों से कराने की भावना करता है और करते हुए का न अनुमोदन करता है।<sup>७०</sup>

मेहुण-विरमण की पाँच भावनाएँ आचारांग में प्रतिपादित की गई हैं— (१) स्त्रीकामजनक कथा विवर्जन, (२) स्त्रियों की मनोरम और मनोहर काम-राग की दृष्टि से रहित होना, (३) काम-क्रीड़ा से रहित होना, (४) अतिमात्रा में आहार पानी का सेवन नहीं करना चाहिए, (५) शय्या, आसन आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।<sup>७१</sup>

समवायांग, आवश्यक चूर्णि, तत्त्वार्थ सूत्र, सर्वोर्थसिद्धि आदि ग्रन्थों में इसी विस्तार से चर्चा की गई है। ब्रह्मचर्य की विशिष्ट भावनाओं के पालन से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

## परिग्रह विरमण—

“परिगृहात् रति परिग्रहो।”<sup>७२</sup>

वृत्तिकार ने इस व्युत्पत्ति के आधार पर यह कथन किया है कि जो ग्रहण किया जाता है वह परिग्रह है। धर्म उपकरण के अतिरिक्त उपकरणों को संगृहीत करना परिग्रह है। यदि संयम के उपकरणों में भी मूर्च्छा भाव है तो वह भी परिग्रह है।<sup>७३</sup> “तत्त्वार्थसूत्र में भी मूर्च्छा परिग्रह”<sup>७४</sup> कहा है। लोक विजय अध्ययन के पाँचवें उद्देशक में साधक के लिए विविध प्रकार के दोषों का निषेध किया गया है। साधक उद्गम दोष, उत्पादन दोष, एषणा दोष और मंडल दोष से रहित होता है। यह कालज्ञ, वल्लज्ञ, मात्रज्ञ, क्षेत्रज्ञ, क्षणज्ञ,

विनयज्ञ, स्व-समय, परसमयज्ञ, भावज्ञ आदि होता है। इसी के साथ वही परिग्रह में ममत्व दृष्टि को नहीं रखने वाला भी होता है, ऐसा विवेचन किया गया है।<sup>६५</sup> साधक के वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, स्थानक, पादपुंछन, शय्या और आसन भी परिग्रह रूप माने गये हैं। इसलिए साधक देवेन्द्र अवग्रह, राज अवग्रह, ग्रहपति अवग्रह, शय्यान्तर अवग्रह और साधार्मिक अवग्रह को भी आज्ञापूर्वक ग्रहण करता है। आहार आदि की प्राप्ति कैसे की जाए? इस पर प्रकाश डालते हुए कहा कि अधिक पदार्थ मिलने पर संग्रह नहीं करें। परिग्रह से अपने आप को दूर रखें।<sup>६६</sup>

लोक विजय अध्ययन के छोटे उद्देशक में कहा है कि ममत्व का जन्म ममता से होता है। ममत्व का नाम परिग्रह है। परिग्रह दो प्रकार का है—(१) द्रव्य परिग्रह और (२) भाव परिग्रह। इन दोनों परिग्रहों की वृत्तिकार ने विस्तार से चर्चा की है। ममत्व बुद्धि के त्याग से भाव परिग्रह होता है और ममता के त्याग से द्रव्य परिग्रह होता है जो ममत्व बुद्धि का त्याग करता है वही ममत्व को छोड़ सकता है और जिसे ममत्व नहीं है वह मोक्ष पथ को जानने वाला है, वही मेधावी है मुनि है।<sup>६७</sup>

ममता और ममत्व बुद्धि जीव को आत्मस्वरूप का भान नहीं होने देता है पदार्थों की आसक्ति से आत्म स्वभाव की प्रतीति नहीं होती है इसलिये चाहे परिग्रह थोड़ा/अल्प हो, सूक्ष्म/स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी प्रकार के परिग्रह को महाव्रती न ग्रहण करता है न दूसरों से ग्रहण करवाता है और न ग्रहण करते हुए का अनुमोदन ही करता है। आत्मा से परिवाहित परिग्रह का पूर्ण रूप से परित्याग करता है।<sup>६८</sup>

परिग्रह विरमण व्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार दी गई हैं—(१) श्रोत्र इन्द्रिय के राग से उपरति, (२) चक्षु इन्द्रिय के राग से उपरति (३) घ्राण इन्द्रिय के राग से उपरति (४) रस इन्द्रिय के राग से उपरति और (५) स्पर्श इन्द्रिय के राग से उपरति। इन्द्रिय सम्बन्धी मनोज्ञ और अमनोज्ञ दोनों प्रकार के विषयों का परित्याग परिग्रह विरमण व्रत की विशेषता है।

### समिति—

जो प्राणी मात्र की सत्ता है, वह समिति है यह समभावों से उत्पन्न होती है, इसमें शुभ और अशुभ कर्म का करण भी वहीं होता है। अर्थात् सम्यक् प्रयत्नपूर्वक जो क्रिया की जाती है वह समिति है। समिति को सावधानी सम्यक् प्रवृत्ति और समभाव दृष्टि भी कह सकते हैं।<sup>६९</sup> लोक-विजय अध्ययन में समभाव की प्रवृत्तियों को दर्शाते हुए लिखा है कि सभी प्राणी जीना चाहते हैं, सभी के लिए अपना जीवन प्रिय है।<sup>७०</sup>

समिति के पाँच भेद हैं—(१) ईर्या (२) भाषा (३) एषणा (४) आदान-निक्षेपण और (५) उत्सर्ग।<sup>७१</sup> द्वितीय श्रुतस्कन्ध में इन समितियों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

## ईर्या—

इसके तृतीय अध्ययन का नाम ईर्या समिति है इसमें भिक्षु-भिक्षुणी के वर्षावास, विहार, संयम मार्ग आदि का विवेचन किया गया है। ईर्या का नाम गति है अर्थात् गमनागमन के कारण नाना प्रकार के जीवों का घात हो जाना स्वभाविक है इसलिए उन जीवों के विराधना के भाव को ध्यान में रखकर साधक ईर्या समिति का पालन करता है। उसमें वह चार प्रकार का प्रयत्न करते हैं—

१. जीव-जन्तुओं को देखकर चलना द्रव्य यतना है। २. युगमात्र भूमि को देखकर चलना क्षेत्र यतना है। ३. अमूल काल में चलना काल यतना है और ४. संयम और साधना के भाव से उपयोगपूर्वक चलना भाव यतना है।<sup>१२</sup>

अतः जिस समिति में गमनागमन के समय में यतनापूर्वक या समभावपूर्वक गमन करना ईर्या समिति की प्रमुख विशेषता है। वृत्तिकार ने कहा है कि ईर्या समिति से युक्त साधक मार्ग में चलते हुए सभी प्रकार के असार का परित्याग कर दें।<sup>१३</sup>

साधु समाचारी का यही मूल उद्देश्य है इसमें संयत भाव की विशेषता है।

## भाषा समिति—

संयमी साधु एवं साध्वी विचारपूर्वक भाषा समिति से युक्त संयत वचनों का प्रयोग करते हैं। इसलिए वे निश्चित भाषी, निष्ठा भाषी होते हैं। समिति में स्व और पर को मोक्ष की ओर ले जाने वाले हितकारक वचन, निरर्थक वचन से रहित स्पष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाता है। साधु एवं साध्वी वचन के आचारों को सुनकर छल, कपट रहित वाणी का प्रयोग करते हैं। साधु एवं साध्वी के लिए छह प्रकार के सावद्य भाषा के प्रयोग का निषेध किया गया है।

(१) क्रोध का अभाव, (२) अभिमान का अभाव, (३) छल-कपट का अभाव, (४) लोभ का अभाव, (५) कठोरता का अभाव और (६) सर्वकाल सम्बन्धी दोषों का अभाव।<sup>१४</sup>

सोलह प्रकार के वचनों का आचारांग में कथानक किया गया है—(१) एकवचन, (२) द्विवचन, (३) बहुवचन, (४) स्त्रीलिंग कथन, (५) पुल्लिंग कथन, (६) नपुंसकलिंग कथन, (७) अध्यात्म कथन, (८) उपनीत (प्रशंसात्मक) कथन, (९) अपनीत (निन्दात्मक) कथन, (१०) उपनीताउपनीत (प्रशंसापूर्वक निन्दा वचन) कथन, (११) अपनीतोपनीत (निन्दापूर्वक प्रशंसा) कथन, (१२) अतीत वचन, (१३) वर्तमान वचन, (१४) अनागत (भविष्यत् वचन), (१५) प्रत्यक्ष वचन और (१६) परोक्ष वचन।<sup>१५</sup>

वृत्तिकार ने भाषा समिति से युक्त साधु-साध्वी के लिए समतापूर्वक संयत वचनों का प्रयोग बतलाया है।<sup>१६</sup> भाषा जगत नामक आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के चतुर्थ अध्ययन के प्रथम उद्देशक में भाषा समिति की विशेषताओं का विस्तार से

विवेचन किया है। जहाँ भाषा प्रयोग के सोलह वचनों के विवेक हो स्पष्ट किया है, वहीं यह निर्देश किया है कि साधु-साध्वी (१) सत्या, (२) मृषा, (३) सत्यामृषा और (४) असत्यामृषा का पूर्ण पालन करें।<sup>१७</sup> भाषा जगत नामक इस अध्ययन में उक्त चारों के भेद बताये हैं। इसमें सावध और निरवद्य दोनों ही दृष्टियों को अच्छी तरह से समझाया गया है। इसी के अन्त में कहा है कि साधु-साध्वी क्रोध, मान, माया और लोभ का परित्याग करके विचारपूर्वक निष्ठाभाषी, निशम्यभाषी, अत्वरितभाषी और विवेकभाषी हों।<sup>१८</sup>

अतः जिसमें भाषा के प्रयोग का विवेक निश्चित हो, वह ज्ञान से परिपूर्ण प्रत्यन भाषा समिति है।<sup>१९</sup>

### एषणा समिति—

एषणा का अर्थ खोजना होता है। साधु-साध्वी की निर्लोभ वृत्तिपूर्वक जो वस्त्र आदि का ग्रहण होता है, वह एषणा समिति है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध के पञ्चम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में वस्त्रएषणा और पात्रैषणा की विशेष रूप से चर्चा की है। शय्या, आसन, उपधान, शांस्त्र और उपकरण की एषणा करते हुए उनमें लगने वाले दोषों का परित्याग करता है।

वृत्तिकार ने एषणा अर्थात् गवेषणा की चर्चा करते हुए लिखा है कि साधक को ग्रहण एषणा और परिभोग एषणा का पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि साधक की क्रियायें संयम के रक्षण के लिए होती हैं।<sup>२०</sup>

संयमशील साधु एवं साध्वी निम्न प्रकार के वस्त्रों की एषणा करते समय निर्लोभभाव से बहुमूल्य बहु आरम्भ से निष्पन्न वस्त्र आदि का प्रयोग न करें।

वृत्तिकार ने इसकी विस्तार से चर्चा की है।<sup>२१</sup> (१) आजिगक (२) श्लक्ष्ण (३) श्लक्ष्ण कल्याण (४) आजक (५) कायक (६) क्षौमिक दुकूल (७) वल्कल वस्त्र (८) अंशक (९) चीनांशुक (१०) देशराग (११) अमिल (१२) गर्जल (१३) स्फटिक युक्त एषणीय वस्त्र आदि में दोष लगने की संभावना रहती है। इसलिए साधु चार प्रकार की एषणीय प्रतिमाओं,<sup>२२</sup> (उद्देष्टा, प्रेक्षिता) परिभुक्तपूर्वा और उज्जित धार्मिक को प्रतिज्ञा जिन आज्ञानुवर्ति रहते हुए उनकी एषणा करें।<sup>२३</sup>

एषणा समिति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से चार प्रकार की है। इसमें प्रवृत्त साधक १६ प्रकार के दोषों से रहित वस्त्र, पात्र, आहार, वसति आदि की गवेषणा करता है। अतः जिस वस्त्र, आसन आदि के ग्रहण में सम्यक् अन्वेषण की प्रवृत्ति होती है वही एषणा समिति है।

## आदान निक्षेप—

जिस समिति में वस्तु का परिग्रह एवं परित्याग विवेकपूर्वक किया जाता है वह समिति आदान निक्षेप समिति है। वस्तु मात्र को भलीभाँति देखकर एवं प्रमाँजित करके लेना या रखना आदान निक्षेप समिति है।<sup>५५</sup> शरीर, उपाश्रय, उपकरण, स्थंडिल (मल-मूत्र विसर्जन की भूमि), अवष्टंभ और मार्ग ये प्रतिलेखनीय हैं। आगमों में प्रतिलेखनीय विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है। वृत्तिकार ने इस समिति को अहिंसा व्रत के रूप में ग्रहण किया है।<sup>५६</sup> द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव आदि जितने भी उपकरण हैं उन्हें विवेकपूर्वक ग्रहण करता है और जीव रहित स्वच्छ भूमि पर उन्हें रखता है।<sup>५६</sup>

प्रतिलेखना के नाम से यह प्रसिद्ध समिति छह प्रकार की प्रतिलेखनाओं का विवेचन करती है—(१) आरभटा प्रतिलेखना, (२) समर्मदा प्रतिलेखना, (३) मोसली प्रतिलेखना, (४) प्रस्फोटना प्रतिलेखना, (५) विक्षिप्ता प्रतिलेखना, (६) वेदिका प्रतिलेखना।

ओष निर्युक्ति भाष्य, उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक, आवश्यक आदि में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। यह समिति प्राणी मात्र की रक्षा का संकल्प प्रतिपादित करती है।

## उत्सर्ग—

उच्चार पासवण (उच्चार प्रश्रवण) द्वितीय श्रतुस्कन्ध का यह नाम शरीर की दो प्रकार की क्रियाओं का प्रतिपादन करता है। वृत्तिकार ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि शरीर से जो प्रबल विवेक के साथ च्युत होता है अपगत होता है। वह उच्चार है। उच्चार को मल या विष्टा कहते हैं।<sup>५७</sup>

प्रश्रवण का अर्थ है—प्रकर्ष रूप से जो शरीर से बहता है या झरता है वह प्रश्रवण है।

उच्चार और प्रश्रवण ये दोनों शारीरिक क्रियाएँ हैं, इनका विसर्जन करना अनिवार्य है। साधक उच्चार प्रश्रवण की शंका से पूर्व ही स्थंडिल प्रदेश पर जाये और वहाँ प्रासुक भूमि को देखकर मल-मूत्र का विसर्जन करे। मल-मूत्र दोनों ही दुर्गन्ध युक्त पदार्थ हैं। साधक को चाहिए की वह उच्चार-प्रश्रवण को विवेकपूर्वक प्रासुक स्थान पर ही निक्षेप करे। इसमें कई प्रकार की सावधानियों का विवेचन भी है, जिसकी विस्तार से चर्चा की गई है। यह चर्चा बाईस सूत्रों में है।

निषिद्ध स्थानों पर मल-मूत्र विसर्जन करने से जीव-जन्तुओं की विराधना होती है, वे दब जाते हैं। उनसे जीवों को कष्ट होता है। इसलिए जीवयुक्त पृथ्वी, कीचड़, हरी वनस्पति, खेत, वृक्ष या उद्यान आदि में मल निक्षेप नहीं करना चाहिए। निषिद्ध

क्षेत्रों का विस्तार से विवेचन वृत्तिकार ने करते हुए यह कथन भी किया है कि साधु समाधि एवं समभाव को दृष्टि में रखकर मल-मूत्र आदि का विसर्जन करें।<sup>१०</sup>

समितियाँ समभाव की द्योतक हैं। साधु एवं साध्वी गमनागमन, भाषा प्रयोग, वस्तु गवेषणा और मल-मूत्र आदि के विसर्जन करते समय सम्यक् यत्न करता है। इसलिए समिति सम्यक् गमन, सम्यक् चर्या, सम्यक् गवेषणा आदि के रहस्य का उद्घाटन करती है। साधु एवं साध्वी इन्हीं समभाव की वृत्तियों से युक्त होकर गमन करते हैं। अतः इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

### गुप्ति—

मन, वचन और काया की प्रवृत्ति, को रोकना गुप्ति है। गुप्ति का शाब्दिक अर्थ रक्षा है। आचारांग सूत्र में मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर षट्काय जीव की रक्षा का संकल्प किया गया है। यह संकल्प संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के रूप में होता है। इसलिए संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ की वृत्तियों का मन, वचन और काय से रोकना गुप्ति है।

सम्यक् प्रवृत्ति का लक्ष्य रखकर जो प्रयत्न जीव रक्षा के निमित्त से किया जाता है वह प्रयत्न गुप्ति है। अणुगार सभी प्रकार की गुप्तियों से गुप्त होते हैं।<sup>११</sup> जिससे चित्त की वृत्तियों का विरोध किया जाता है, वह गुप्ति है। तत्त्वार्थ सूत्रकार ने कहा है कि योगों का भलीभाँति निग्रह करना गुप्ति है।<sup>१२</sup>

### गुप्ति भेद—

(१) मन गुप्ति, (२) वचन गुप्ति और (३) काय गुप्ति—ये तीन गुप्तियाँ हैं। वृत्तिकार ने मन, वचन और काया के व्यापार<sup>१३</sup> रूप क्रियाओं के आधार पर जीवकाय की रक्षा का विवेचन किया है।

### मन गुप्ति—

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ की प्रवृत्ति में प्रवृत्त मन को रोकना मनगुप्ति है। मन गुप्ति के चार भेद किये गये हैं<sup>१४</sup>—१. सत्य मनोगुप्ति, २. मृषा मनोगुप्ति, ३. सत्य-मृषामनोगुप्ति और ४. असत्य-मृषा मनोगुप्ति।

अतः मन को एकाग्र करना मनोगुप्ति है। नवें श्रुतस्कन्ध में महावीर के मनोयोग का वर्णन है, जिसमें महावीर शिशिर ऋतु में भी मन से आतापना की इच्छा नहीं करते हैं वे मूल गुणों और उत्तर गुणों से युक्त मन का निग्रह करते हैं।<sup>१५</sup>

### वचन गुप्ति—

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ की क्रिया वचन से भी होती है। इसलिए वचन का निग्रह करना वचन गुप्ति है। वृत्तिकार ने वचन के लिए वाक्<sup>१६</sup> शब्द का प्रयोग किया है।

वाक् गुप्ति के चार भेद हैं<sup>१७</sup>—१. सत्य-वाक् गुप्ति, २. मृषा-वाक् गुप्ति, ३. सत्य-मृषा वाक् गुप्ति और ४. असत्य-मृषा वाक् गुप्ति ।

महावीर चर्या के नाम से प्रसिद्ध उपधान सूत्र में वचन गुप्ति का उत्कृष्ट उदाहरण देखा जा सकता है। जिस समय लाड देश की भूमि पर श्रमण महावीर विचरण कर रहे थे, उस समय में भी वे कुछ नहीं बोले। कभी-कभी अचानक आये हुए आगन्तुक द्वारा पूछा गया कि यहाँ अन्दर कौन है? तब भी वे कुछ नहीं बोले।<sup>१८</sup>

वचन गुप्ति के विषय में शिवार्य ने कहा है कि जिससे दूसरे प्राणियों को उपद्रव/पीड़ा हो, ऐसा वचन व्यवहार नहीं करना चाहिए। सम्पूर्ण प्रकार के वचनों का त्याग वाक् गुप्ति या वचन गुप्ति है।<sup>१९</sup> इसलिए सभी वचन विशेषकारक हैं।<sup>२०</sup>

### काय गुप्ति—

शारीरिक क्रियाओं का रोकना काय गुप्ति है। साधक का गमनागमन, शयन, आसन, चर्या, विहार आदि काय-गुप्तिपूर्वक ही होता है। आचारांग में छह प्रकार के षट्काय जीव का जो विवेचन है, वह शरीरधारी प्राणियों की रक्षा को महत्त्व देता है। इसलिए कायिक व्यापार को भी रोकना आवश्यक है। भाषा जात अध्ययन में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और रूप ये भाषा वर्गणा काय योग से होते हैं।<sup>२१</sup> इसलिए काय सम्बन्धी क्रियाओं का निग्रह करना काय गुप्ति है।

नवें अध्ययन के उपधान श्रुत में काय सम्बन्धी विविध प्रकार के काय के उपसर्गों का विवेचन है। महावीर ने कायिक निग्रह को सदैव बनाए रखा। वे शरीर पर विचरण करने वाले साँप, बिच्छु आदि जीवों से भयभीत नहीं हुए। कायिक पीड़ा दी जाने पर भी विचलित नहीं हुए एवं विविध प्रकार के उपसर्गों के होने पर भी षट्काय जीवों की रक्षा में प्रयत्नशील रहे। अतः यह समिति कायिक क्रियाओं को रोकने वाली क्रिया है।

शरीर संयम, मन संयम, आहार संयम, निवासस्थान संयम, इन्द्रिय संयम, निद्रा संयम, क्रिया संयम और उपकरण आदि संयम काय गुप्ति के ही कारण हैं। अतः समस्त गुप्तियों से यह निष्कर्ष निकलता है कि समत्व युक्त साधक यतनाशील रहते हैं।

### आहारचर्या—

आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में आहारचर्या का विस्तार से विवेचन है। इसका पिण्डैषणा अध्ययन सचित एवं अचित आहार ग्रहण विधि एवं निषेध आदि को प्रस्तुत करने वाला है। इसके ग्यारह उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में सचित संसक्त आहारैषणा, सबीज-अन्न-ग्रहण एषणा, अन्यतीर्थिक गृहस्थ सहगमन निषेध, औद्देशिकादि दोष रहित पिण्डैषणा और नित्याग्राहि आदि ग्रहण निषेध। द्वितीय



उद्देशक में अष्टमी पर्वदि में आहार ग्रहण विधि, निषेध, भिक्षा योग्य कुल, इन्द्रमह आदि उत्सव में अशनादि तप के माध्यम से आहार एषणा और संखडि-गमन-निषेध है। तृतीय उद्देशक में विविध दोषों का निषेध, शंकाग्रस्त आहार का निषेध, भंडोपकरण सहित गमनागमन और ग्रह पद को निषिद्ध किया गया है। चतुर्थ उद्देशक में गोदोहन वेला में आहार का निषेध और अतिथि प्रवेश पर निषेध का विवेचन है। पञ्चम उद्देशक में गृह में प्रविष्ट होने पर आहार का विधिपूर्वक ग्रहण एवं बन्द दरवाजे में प्रवेश का भी निषेध किया गया है। षष्ठ उद्देशक में रसान्वेषी कृकट आदि को देखकर प्रवेश करने आदि का विवेचन है। सप्तम उद्देशक में षट्काय जीव प्रतिष्ठित आहार ग्रहण निषेध और पानक एषणा का विवेचन भी है। अष्टम उद्देशक में वनस्पति की रक्षा मूल, स्कन्ध, शाखा, पत्र, फल, बीज, पुष्प आदि के रक्षण का संदेश देता है। नवें उद्देशक में आधार्कर्मिक आदि ग्रहण का निषेध, प्रत्यानुपूर्वक आहार की याचना आदि का वर्णन है। दसवें उद्देशक में आहार एषणा में विवेक का प्रतिपादन करता है और एकादश उद्देशक में पिंडैषणा एवं पान-एषणा का विधिवत मालन का भी उपदेश दिया गया है। वृत्तिकार ने गच्छान्तर्गत (स्थविर कल्पी) और गच्छविनिर्गत (जिनकल्पी) ये दो साधुओं के आहार सम्बन्धी शुद्ध अवग्रह का कथन किया है। गच्छनिर्गत और गच्छान्तर्गत साधुओं को सम्यक् दृष्टि से देखना चाहिए।<sup>१०२</sup>

वृत्तिकार ने आहार की भूमि, विहार की भूमि एवं स्वाध्याय की भूमि आदि का विवेचन करते हुए आहारचर्या करते समय निम्न कुलों का ध्यान रखना आवश्यक बतलाया है। भोग, राजन्य, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, हरिवंश, वैश्य, दण्डक, कोट्टाग, बोक्कयशाली आदि का उल्लेख किया है।<sup>१०३</sup>

आदैशिक मिश्रजात, क्रीतकृत, उद्यतक, आच्छेद्यत और अनिष्ट आहारों का निषेध किया गया है।<sup>१०४</sup>

## आहारचर्या कैसे की जावे ?

आचारांग वृत्तिकार ने इसकी सम्यक् विवेचना की है। उन्होंने प्रतिपादन किया है कि जहाँ क्लीब/नपुंसक या गणिका आदि हों तथा जहाँ पर मैथुन/अब्रह्मपूर्वक विचरण किया जाता हो, वहाँ भोजन न करें और न ही वहाँ से भोजन लें। आहार याचना के लिए जाते समय श्रमण को पात्र, वस्त्र, रजोहरण, आहद को साथ में ले जाना चाहिए।<sup>१०५</sup>

साधु यथायोग्य नवविध, दसविध, एकादशविध, द्वादशविध उपधिपूर्वक विचरण करें तथा गमनागमन करते समय स्वाध्याय-भूमि, विहार-भूमि, विचार-भूमि, विष्टोत्सर्ग भूमि आदि का विचार करें।<sup>१०६</sup>

इस तरह साधु और साध्वियों के आहारचर्या के विविध प्रकार के कारणों को आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में विधिवत् विवेचन किया गया है और साधना एवं साधक जिनआज्ञापूर्वक संयम का पालन करते हुए ज्ञान, दर्शन और चरित्र की शुद्धि को भी देखता है। संयमशील साधक समाधि के समय में भी आहार की एषणा जिन आज्ञापूर्वक ही करता है। इसी से भिक्षुभाव की या ज्ञानादि आचार की समग्रता है।<sup>१०७</sup>

### श्रावक धर्म—

मूलतः आचारांग श्रमण की आचार पद्धति को ही प्रस्तुत करने वाला है। इसमें गृहस्थ धर्म का उल्लेख नहीं है, परन्तु कई प्रकार के गृहस्थों का उल्लेख है। जैसे—राजा, वैश्य, गण्डक, कोट्टाग, बोक्कयशाली, गाहापति, गाहापत्नी, परिवार, परिवादि आदि गृहस्थों का उल्लेख इसमें है।

गृहस्थ मूलतः पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत का पालन करने वाले होते हैं। द्वितीय श्रुतस्कन्ध के समस्त विवेचन में गृहस्थ का किसी न किसी रूप में उल्लेख हुआ है। वृत्तिकार ने गृहस्थ को संयत एवं संस्कारयुक्त<sup>१०८</sup> बतलाया गया है।<sup>१०९</sup> प्रथम श्रुतस्कन्ध के द्वितीय लोक विजय अध्ययन में श्रावक शब्द का प्रयोग किया गया है।<sup>१०९</sup>

वृत्तिकार ने गृहस्थ को कुत्सित अर्थात् कुसमय कहा है; क्योंकि ये काम-परिग्रह के द्वारा कुत्सित मार्ग में लगे हुए रहते हैं जिसका लोक काम-परिग्रही होता है, वे गृहस्थ आश्रम एवं गृहस्थ भाव की प्रशंसा करते हैं। वे गृहस्थ आश्रम के समान कोई अन्य दूसरा धर्म नहीं मानते हैं। गृहस्थ आश्रम का पालन योद्धा और नपुंसक भी करते हैं परन्तु जो महामोह से मोहित, इच्छाओं में रत एवं विषय-भोगों में प्रवृत्त होते हैं वे लोक के सार को नहीं जानते हैं। लोक का सार ज्ञान, दर्शन, चरण और तप है। जो इनसे युक्त होता है, वही गृहस्थ आश्रम का आधार है।<sup>११०</sup>

गृहस्थजन अपने लिये तथा अपने पुत्र-पुत्री, बहू, कुटुम्बी, जातिजन, धार्ड, दास-दासी, कर्मकार, कर्मकारी (नौकर-चाकर), मेहमान एवं कुटुम्बियों के लिये प्रातः एवं सायं नाना प्रकार का आरम्भ करते हैं।<sup>१११</sup> इसके संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ की क्रियाएँ हिंसाजन्य होती हैं। गृहस्थ नाना प्रकार के परिग्रहों से युक्त होता है। परन्तु वे जीवन को संयत करने के लिए संयम की भावना करते हैं, वे यह भी सोचते हैं कि गंगा के प्रवाह के विरुद्ध तैरना कठिन है, समुद्र को भुजाओं से पार करना दुष्कर है व बालुका के निःस्वाद घ्रासों का गले उतारना मुश्किल है और लोहे के

चने चबाना कठिन है।<sup>११२</sup> इसलिए विवेकपूर्ण श्रावक शारीरिक और मानसिक शान्ति के लिए अध्यात्म का मार्ग अपनाते हैं।

### श्रावक के व्रत—

श्रावक के बारह व्रत आगम एवं सिद्धान्त ग्रन्थों में निरूपित किये गये हैं—बारह व्रतों में पाँच अणुव्रत, तीन गुण व्रत और चार शिक्षा व्रत आते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँचों गृहस्थों के मूलाधार हैं। इन व्रतों से सूक्ष्म एवं मर्यादित जीवन व्यतीत करने की शिक्षा मिलती है।

### पञ्च अणुव्रत—

#### (१) अहिंसाणुव्रत—

(स्थूल प्राणातिपातविरमण) अहिंसाणुव्रत में अहिंसा की मर्यादा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। श्रावक बन्ध, वध, छविच्छेद, अधिभार और भक्तपान विच्छेद—इन पाँच अतिचारों से रहित अपनी क्रियाएँ करता है।

#### (२) सत्याणुव्रत—

(स्थूल मूषावाद विरमण) सच्चंखु अणवज्जं वयंति—सत्य अनवद्य/अपापकारी वचन हैं। इसमें असत् को स्थान नहीं दिया जाता है। वृत्ति, श्रावक सहसाभ्याख्यान, रहस्याभ्याख्यान, स्वदार मंत्र भेद, मिथ्योपदेश और कूटलेख प्रक्रिया, इन दोषों से श्रावक बचता है और सावधानीपूर्वक सत्यव्रत के पालन में दृढ़ रहता है।

#### (३) अचौर्याणुव्रत—

(स्थूल अदत्तादान विरमण) श्रावक इस व्रत के पालन करने में अचौर्य का भाव रखता है, वह अज्ञात व्यक्ति की वस्तु को न उठाता है और न ही पास में रखता है। वह स्तेनाहत, तस्कर प्रयोग, विरुद्धराज्यातिक्रम, कूटतुला-कूटमान और तत्रतिरूपक व्यवहार का सावधानीपूर्वक पालन करता है।

#### (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत—

(स्वदार-सन्तोषव्रत) श्रावक का जीवन इससे संतोषी बना रहता है। वह मैथुन को छोड़कर काम-वासना पर नियंत्रण रखता है। ब्रह्मचर्य व्रती<sup>११३</sup> इत्वरिक परिग्रहीतागमन, अपरिग्रहीतागमन, अनंग क्रीड़ा, पर-विवाह-करण और काम-भोग तीव्राभिलाषा—इन दोषों से बचता है।

#### (५) अपरिग्रहाणुव्रत—

(स्थूल परिग्रह<sup>११४</sup> परिमाण व्रत) क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद और कुप्य या गोप्य—इन नौ परिग्रहों में आसक्ति न रखते हुए श्रावक अपने व्रत का पालन करता है तथा क्षेत्र वस्तुपरिमाणातिक्रम, हिरण्य-सुवर्ण परिमाणातिक्रम,

द्विपद-चतुष्पद परिमाणातिक्रम, धन-धान्य परिमाणातिक्रम और कुप्य परिमाणातिक्रम—इन पाँच अतिचारों से बचता है।

### गुणव्रत—

#### (१) दिशापरिमाण व्रत

ऊर्ध्व दिशा, अधोदिशा, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य आदि दिशाओं की मर्यादा का संकल्प श्रावक का प्रमुख कर्तव्य है। वह विषयादि के पाँच दोषों से रहित गुणव्रत का पालन करता है।

#### (२) उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत—

उपभोग और परिभोग वस्तुओं का उल्लेख आंगमों में किसी, न किसी रूप में अवश्य किया गया है। उन वस्तुओं का उपभोग करते समय श्रावक त्रस वध, बहुवध, प्रमाद, अनिष्ट और अनुपसेव्य से बचता है। श्रावक को कई प्रकार की वस्तुओं को ग्रहण करना पड़ता है। श्रावक व्यवसाय में भी लगा रहता है। वह अल्पारम्भी, अल्प परिग्रही, धार्मिक, धर्मानुसारी, धर्मनिष्ठ, धर्मख्याती, धर्मप्रलौकितता, धर्म प्रज्वलन एवं धर्मयुक्त है।<sup>११५</sup> वे धर्मपूर्वक आजीविका चलाते हैं तथा अति-हिंसाजन्य अङ्गार कर्म, वनकर्म, शकटकर्म, भाटकर्म, स्फोटकर्म, दन्त वाणिज्य, केश वाणिज्य, लाक्षा वाणिज्य, रस वाणिज्य, विष वाणिज्य, यंत्र पीड़न कर्म, निर्लाच्छन कर्म, दावाग्निदापन कर्म, तड़ाग शोषण कर्म और असतीजन पोषण कर्म से सदा बृचते हैं।

#### (३) अनर्थ दण्ड विरमणव्रत—

अपध्यानाचरित, प्रमादाचरित, हिंसाप्रधान और पापकर्मोपदेश—इन चार प्रयोजन रहित, हिंसा से रहित श्रावक प्रयत्नपूर्वक अपने कार्य को प्रारम्भ करते हैं।

### शिक्षाव्रत—

#### (१) सामायिक व्रत—

समभाव के लाभ का व्रत। यह व्रत समत्व पर आधारित होता है। व्रती श्रावक मनोदुष्प्रणिधान, कार्य दुष्प्रणिधान, स्मृतिहीनता और अनवस्थितता के दोषों से बचकर सामायिक व्रत का पालन करता है।

#### (२) देशावकाशिक व्रत—

व्रती, श्रावक सचित, द्रव्य, विगय, पाणी, ताम्बूल, वस्त्र, कुसुम, वाहन, विलेपन, शयन, अब्रह्मचर्य, दिशा, स्नान और भक्त—इन चौदह दोषों का परिहार करके निश्चित अवधि का पालन करता है।

#### (३) पौषधोपवास व्रत—

श्रावक इस व्रत से उपवासपूर्वक आत्मध्यान में लीन रहता है।

#### (४) अतिथिसंविभाग व्रत—

सत्कार सेवा श्रावक का स्वाभाविक गुण है। वह सचितनिक्षेप, सचितपिधान, कालातिक्रम, परव्यपदेश और मात्सर्य—इन अतिचारों से रहित अनुकम्पापूर्वक सुपात्रों को दान देता है। साधु-साध्वियों को दिया गया दान उच्च श्रेणी का होता है। इसलिए श्रावक यथाशक्ति अतिथिसत्कारपूर्वक अपनी भोजन विधि को पूर्ण करता है।

श्रावक के व्रतों के आदर्श रूप श्रावक को आचार की पवित्रता की ओर ले जाते हैं। इसलिए श्रावकों के आचार के अनुसार पाक्षिक श्रावक (प्रारम्भिक दशा) नैष्ठिक श्रावक (मध्यदशा) और साधक श्रावक (पूर्णदशा)—ये तीन भेद शास्त्रीय दृष्टि से प्रतिपादित किये जाते हैं। व्रती श्रावक के गुण प्रतिमा आदि के आधार पर श्रावक के गुण बढ़ते हैं। इससे श्रावक नियमित, संयत और आत्मा की पवित्रता की ओर अग्रसर होता है। श्रावकों के व्रतों का उल्लेख मात्र ही आचारांग वृत्ति में हुआ है। इसलिए विशेष विवेचन नहीं दिया जा रहा है।

आचारांग वृत्ति के समग्र विषय को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। इसमें बाह्य और आभ्यन्तर दृष्टियों से इस प्रथम अङ्ग आगम की आचार संहिता का गहराई से विश्लेषण किया गया है। आचारांग के मूल प्रतिपाद्य विषय “आचार” के विविध पहलुओं पर ऊहापोह करने का प्रयास अल्पज्ञ होते हुए भी विषय विवेचन को एक नई दिशा प्रदान कर सका होगा। शोध का यह प्रयास निश्चित ही हमारी संस्कृति एवं सभ्यता के उद्घाटन में नये चिंतन को प्रस्तुत कर सकेगा। आचारांग वृत्ति के प्रतिपाद्य विषय का उपसंहार विषय के निरूपण को प्रस्तुत कर सकेगा।

आगम साहित्य के परिचय में आगम स्वरूप, आगम भेद, आगम की प्रमुख वाचनाएँ एवं आगम की भाषा-शैली आदि पर विचार किया गया है। इसमें शीलांक आचार्य द्वारा “आप्त प्रणीत आगम” अर्थात् आगम आप्त प्रणीत है, ऐसा कथन वृत्तिकार के शब्दों पर ही किया गया है। वृत्तिकार की मूल भावना को लेकर आचारांग के स्वरूप आदि पर इसमें विचार किया गया है।

आचारांग वृत्ति के द्वितीय अध्याय में आचार-विचार, व्यवहार, विहार, चर्या, शय्या, उपधि, शुद्धा-शुद्धि विवेक, व्रत, तप, नियम, उपधान आदि पर प्रकाश डालते हुए आचारांग वृत्ति के प्रथम श्रुतस्कन्ध और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के विषय को स्पष्ट किया है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में निम्न बिन्दुओं पर विचार किया गया है—

१. षट्काय जीव का रक्षण एवं पर्यावरण की सुरक्षा।

२. संसारासक्ति का क्या कारण है? उससे जीव कैसे मुक्त होता है और क्या प्राप्त करता है?

३. समभाव एवं सम्यक्त्व की दिशा प्रदान करने वाला परमार्थ है।

४. परमार्थदृष्टा धीर-वीर एवं ऐश्वर्य युक्त होता है।
५. लोक का सार ज्ञान है और सम्यक्त्व मुक्ति का सार है।
६. पराक्रम श्रमणों का अध्यवसाय है, आज्ञाधर्म है और सद्गुणों का विकास दृढ़ता का प्रतीक है।
७. महापरिज्ञा साधना की उत्कृष्ट दशा है।
८. सहिष्णुता सम्पूर्ण गुणों से प्रकट होती है। यह सम्यक्त्व की अन्तःक्रिया है। विमोच इसका अन्तिम परिणाम है।
९. चर्या, शय्या, परीषहजय और तपस्चर्या वीरत्व का उपधान है।

आचारांग वृत्ति के प्रथम श्रुतस्कन्ध में नौ अध्ययन हैं, इन सभी पर विचार करने से यह बोध प्राप्त हुआ है कि आचारांग में आचार-विचार आदि से सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान की मुक्ताएँ हैं जो प्रबुद्ध पाठकों के लिए आचार-विचार से जोड़ती हैं, उन्हें आकर्षित करती हैं और सम्यक्त्व का पथ बतलाती हैं। यही कारण है कि शीलांक आचार्य की वृत्ति के अर्थ को समेट कर जो चिंतन एवं मनन के मन्थन से नवनीत मिला है वह स्निग्ध होते हुए भी विविध दिशाओं को प्रदान करने वाला अवश्य बन सकेगा।

द्वितीय श्रुतस्कन्ध के चिंतन से आहार शुद्धि, संयम साधना के साथ स्थान शुद्धि, गमनागमन का विवेक, भाषा शुद्धि, मर्यादित वस्त्र, पात्र की अनुकूलता, योग्य आवास, स्वाध्याय, ध्यान एवं विविध प्रकार की भावनाओं से श्रमणाचार की पवित्रता का आधुनिक सन्दर्भ में भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी जीवन पद्धति प्रतिपादित रीति-रिवाज, स्थितियाँ, मर्यादाएँ, कला, संस्कृति, राजनीति, दार्शनिकता, धार्मिक दृष्टिकोण आदि पर पर्याप्त सामग्री है, जो अन्यत्र कम ही मिलती है। इसमें आचार-विचार आदि के साथ वृत्तिकार ने आन्तरिक विषय को खोलने के लिए ज्ञानवर्धक आदि का संक्षिप्त चिंतन किया है वह उनकी भावना को स्पष्ट कर सकेगा।

आचारांग वृत्ति में शीलांक आचार्य ने निक्षेप और नय इन दो दार्शनिक सूत्रों को केन्द्रबिन्दु बनाकर प्रत्येक सूत्र की दार्शनिक समीक्षा ही प्रस्तुत कर दी है। प्रारम्भिक प्रस्तावक में पञ्च विध आचार-विचार के साथ नय प्रमाण और निक्षेप के आधार पर आत्मा का जो विवेचन प्रस्तुत किया है वह दार्शनिक जगत में सभी पक्षों को चिन्तन करने को बाध्य कर देगा। इसकी आत्मवादी, कर्मवादी, क्रियावादी, लोकवादी विचारधारा भारतीय दर्शन के क्षेत्र में नये प्रयोग ही कहे जाएँगे; क्योंकि इससे पूर्व इस तरह की दृष्टि नहीं थी। कारण सिद्ध है कि इससे पूर्व कोई आगम लिखा ही नहीं गया था। आगम की इस प्रथम अङ्ग ग्रन्थ में वृत्तिकार ने जो दृष्टि दी है, वह दर्शन जगत के लिए उपयोगी कही जा सकती है।

अध्यात्म और तत्त्वज्ञान का परिचायक यह ग्रन्थ धर्म की मूल भावना से व्यक्ति को जोड़े रखता है। इसमें किसी व्यक्ति, समाज एवं वर्ग को महत्त्व नहीं दिया गया है। यह तो प्राणीमात्र के धर्म का मूल उद्घोषक है। इसकी अहिंसा में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस के प्रति भी मानवीयता दृष्टिगोचर होती है। व्यक्त या अव्यक्त आत्माओं के प्रति अहिंसक रहने का मंत्र इसी से प्राप्त होता है। इसमें सूक्ष्म जीवों की यतना पर विचार है। यह भावों की विशुद्धता का सजग पहरी है। अन्तरवृत्तियों में अहिंसात्मक धर्म इसका प्राण तत्त्व है। यह मर्मस्पर्शी धर्म और दर्शन का संक्षिप्त सार है, अङ्गों का सार है, आचार का सार है, दर्शन तत्त्व का प्रतिपादक है। चारित्र इसकी विशेषता है। निर्वाण सर्वोपरि है क्योंकि यही अव्याबाध तत्त्व है।

आचार-विचार प्रधान यह वृत्ति है। इसमें सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक आदि के परिचायक ज्ञान को भी देखा जा सकता है। मैंने इसमें श्रमणाचार, श्रावकाचार, जाति, कुल, मान्यताएँ, खान-पान, निवास, विवाह, व्यापार, कला आदि का मात्र संकेत ही किया है। यद्यपि यह वृत्ति, सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस पर स्वतंत्र रूप से अनुसन्धान करने की आवश्यकता प्रतीत होती है; क्योंकि इसमें ज्ञान-विज्ञान एवं भारतीय समाज का प्राचीन स्वरूप विद्यमान है। शीलांक आचार्य ने इसके प्रथम परिचय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन जातियों के अतिरिक्त आर्य और अनार्य आदि की दृष्टि से नय एवं निक्षेप के आधार पर अम्बष्ठ, उग्र, निषाद, अयोगव, मागध, सूत, क्षता, विदेह और चाण्डाल आदि की दृष्टि पर भी विचार किया है, जिसका विस्तार से विवेचन अध्याय पाँच में किया गया है।

अङ्ग आगमों का यह प्रथम ग्रन्थ अर्धमागधी भाषा में है, जिसे आर्षप्राकृत कहा जाता है। वृत्तिकार ने आर्ष परम्परा की भाषा को जीवित रखते हुए सम-सामयिक दृष्टि से संस्कृत भाषा को आधार बनाया है। इसके प्रथम श्रुतस्कन्ध की भाषा सूत्रात्मक, विश्लेषणात्मक, पारिभाषात्मक, विवेचनात्मक एवं व्युत्पत्तिजन्य अर्थों को लिये हुए है। धार्मिक एवं दार्शनिक विश्लेषण में शीलांक आचार्य ने दृष्टान्त प्रधान शैली को अपनाया है। यह एक ऐसी शैली है जिसमें मूल विश्लेषण के साथ विवेचनकर्ता की भावना भी परिलक्षित दिखाई पड़ती है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध में शीलांक आचार्य ने विषय को विश्लेषित किया है जिससे भाषा मूल अर्थ तक सिमट कर रह गई है। कहीं-कहीं पर शब्द विश्लेषण की प्रधानता है। शब्द के अर्थ संस्कृत के मूल में बँध कर ही रह गये हैं।

भाषात्मक अध्ययन में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, कृदन्त, तद्धित, अव्यय आदि की विशेषताओं को नहीं गिनाया परन्तु उनकी जानकारी देने का प्रयास किया है। मेरा यह मत है कि शीलांक आचार्य ने अपने समय विवेचन में जो निक्षेप शैली को

अपनाया है उसके आधार पर इसकी भाषा का स्वतंत्र विवेचन होना चाहिए। तभी इस आगम के रहस्य का पता चल सकेगा।

श्रमणाचार और श्रावकाचार—ये आचार के दो प्रमुख क्षेत्र हैं। वृत्तिकार ने श्रमणाचार से सम्बन्धित मूलगुणों, उत्तरगुणों आदि की विस्तार से विवेचना की है। श्रमण का स्वरूप, श्रमण के भेद, श्रमण की चर्या, विहार, शयन-आसन आदि के विवेचन इसमें विद्यमान हैं। ये विवेचन आधार की पृष्ठभूमि को सुदृढ़ बनाने वाली हैं। वृत्तिकार ने आचार विषयक इस आचारांग के साधना तत्त्व को अधिक उपयोगी बतलाया है। श्रमण के आश्रम परिज्ञान के परिचायक हैं। उनका जीवन संयमी है। अहिंसक उनकी वृत्ति है और सदाचार एवं समभाव उनके बल हैं।

आचारांग में श्रमण चर्या का सूक्ष्म विश्लेषण है। गृहस्थ सम्बन्धी विवेचन प्रसंगवश कहीं-कहीं ही आया है क्योंकि आचारांग श्रमणाचार की भूमिका को प्रस्तुत करने वाला आगम है। गृहस्थाचार या श्रावकाचार इसका विषय नहीं है परन्तु ब्रती श्रावक श्रमणवत् आचरण करता है। उसके लिए धर्म, ध्यान, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, त्याग, संयम, समत्व आदि सारभूत हैं। कहा है—

“लोगस्स सार धम्मो, धम्मंपि य नाण सारियं बिंति।

नाणं संजमसारं संजमसारं च निव्वणं ॥”<sup>११६</sup>

अर्थात्—संसार में सारभूत वस्तु धर्म है। धर्म ज्ञान है, ज्ञान का सार संयम है और संयम का सार निर्वाण है। दोनों ही आचार-विचार वाले व्यक्ति मुक्ति चाहते हैं। संसार से छूटना चाहते हैं। अतः आचार एवं विचार सभी दृष्टियों से सभी के लिए हितकारी है।

इस तरह से सम्पूर्ण आचारांग वृत्ति के विषय की विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आचारांग वृत्ति ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की प्रबल भावना से जीवन दान देने वाली वृत्ति है।

□ □ □



## सन्दर्भ ग्रन्थ

१. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ४
२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ५
३. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ३
४. वही, पृष्ठ ४
५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १
६. वही, पृष्ठ १ “दविण् दंसणसोही दंसण सुद्धस्स चरणं तु”
७. वही, पृष्ठ ३
८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ३
९. वही, पृष्ठ ३, ४
१०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ५३
११. वही, पृष्ठ
१२. वही, पृष्ठ १२३
१३. वही, पृष्ठ ११७
१४. वही, पृष्ठ ११७
- १५.
१६. उत्तराध्ययन वृत्ति, पृष्ठ ६७  
“शंकनं शङ्कितं देशसर्वशङ्कात्मकं तस्याभावो निःशंकितम्”
१७. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ३ (क) निस्संक्रियनिक्कंखिय निव्वतिगिच्छाम्मूठदिट्ठी य  
उववूहथिरीकरणे वच्छल्ल पभावणे अट्ठ् ॥  
(ख) आचार्य कुन्दकुन्द—समयासार गा. २२८
१८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १३१
१९. वही, पृष्ठ ३
२०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ६६
२१. वही, पृष्ठ ३
२२. वही, पृष्ठ ४
२३. आ. पूज्यपाद—सर्वार्थसिद्धि ९/२० “मनोनियमनार्थत्वात् ।”
२४. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ४
२५. वही, पृष्ठ १६१, १६२, १६३
२६. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ६६
२७. वही, पृष्ठ १३५
२८. वही, पृष्ठ १३६
२९. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १३७

३०. वही, पृष्ठ १३८
३१. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २१७
३२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २१७
३३. वही, पृष्ठ २१७
३४. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २१७
३५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ११९
३६. वही, पृष्ठ १२३, १२४
३७. वही, पृष्ठ ११९
३८. वही, पृष्ठ ७
३९. वही, पृष्ठ ७६, ७७
४०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ७४
४१. वही, पृष्ठ ७८
४२. आचारांग सूत्र ३/३/१२७
४३. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ११३
४४. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २०९
४६. वही, पृष्ठ २५७
४७. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २५९
४८. आचारांग सूत्र ४०७
४९. समवायांग सूत्र
५०. तत्वार्थ सूत्र ७/५
५१. आचारांग सूत्र, पृ. ४०९
५२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ११६
५३. आचारांग सूत्र, पृ. ४११
५४. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २२७
५५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १२८ “वीरे आयाणज्जे वियाहिए जे धुणाइ समुदसयं वसित्ता  
बंभचेरंभि”
५६. आचारांग सूत्र, पृ. ३२८-३२९
५७. मुनि मधुकर—आचारांग सूत्र, पृ. १४१
५८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ११७
५९. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १२९
६०. आचारांग सूत्र, पृ. ४१२
६१. वही, पृष्ठ ४१३
६२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ९०
६३. वही, पृष्ठ ९०
६४. तत्वार्थ सूत्र ७/१७
६५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ८८

६६. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ८९
६७. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ९५
६८. आचारांग सूत्र, पृ. ४१५, ४१७
६९. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ७९
७०. वही, पृष्ठ ८२
७१. वही, पृष्ठ ८०
७२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २५२
७३. वही, पृष्ठ २५४
७४. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २५७
७५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २५८
७६. वही, पृष्ठ २५८
७७. वही, पृष्ठ २५९
७८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २६१
८०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २६७
८१. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २६३
८२. वही, पृष्ठ २६४
८४. तत्त्वार्थ सूत्र ९/५, पृ. २०८
८५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ८०
८६. वही, पृष्ठ २६७
८७. स्थानांग—६
८८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २७३ “उच्चवइ सरराओ उच्चारो शरीरादुत् प्राबल्येन—अपयाति चरतीति वा उच्चार विष्टः ।
८९. वही, पृष्ठ २७३ “प्रकषेण श्रवतीति प्रश्रवणम्”
९०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २७४
९१. वही, पृष्ठ २३  
“गुक्ता गुक्ति हि सव्वाहि ॥”
९२. तत्त्वार्थ सूत्र पृ. २०७ “सम्यग्योगनियहो गुप्ति”
९३. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १७
९४. उत्तराध्ययन २४/२०
९५. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २०४
९६. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १७
९७. उत्तराध्ययन २४/२२
९८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २०६
९९. आचार्य-शिवाय, भगवती आराधना गाथा ११८६७
१००. आ.ब. २५७, सव्वेऽपिय वयणविसोहिकरि गा ।
१०१. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २५७

१००. आ.ब. २५७, सव्वेऽधिय वयणविसोहिकरि गा ।
१०१. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २५७
१०२. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २३९
१०३. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २१८
१०४. वही, पृष्ठ २२०
१०५. वही, पृष्ठ २२१
१०६. वही, पृष्ठ २२२
१०७. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २३९ “सम्पूर्णं भिक्षुभावो यदात्मोत्कर्षवर्जनमिति”
१०८. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ २२० “स गृहस्थः कारणे संयतो वा स्वयमेव संस्कारयेदित्युपसंहरति ।”
१०९. वही, पृष्ठ ५९
११०. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १३२ गृहश्रमसमोधम्मो, न भूतो न भविष्यति ।  
पालयन्ति नराः शूराः, क्लीवाः पापण्डमाश्रितः ॥
१११. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ८६
११२. वही, पृष्ठ ९१
११३. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १४६
११४. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ ८२
११५. (क) जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप, पृ. ३२५  
(ख) भगवती सूत्र
११६. आचारांग वृत्ति, पृष्ठ १३२



## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

### (क) प्राचीन ग्रन्थ

- |   |  |
|---|--|
| १. आचारांग सूत्र                                    | श्री मधुकर मुनि, प्रकाशक, श्री जैन आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर सन् १९८०              |
| २. आचारांग सूत्र                                    | श्री सौभागमल जी म., जैन साहित्य नयापुरा, उज्जैन                                    |
| ३. आचारांग सूत्र                                    | सं. मुनि समदर्शी, स्व. श्री आत्माराम जी जैन स्थानक, लुधियाना                       |
| ४. आचारांग वृत्ति                                   | जम्बू विजय जी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली  |
| ५. आचारांग सूत्र का<br>आलोचनात्मक अध्ययन            | जैन परमेष्ठी दास,<br>श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी, सन् १९६०                 |
| ६. आचारांग: एक अध्ययन                               | डॉ. परमेष्ठी दास जैन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम,<br>वाराणसी, सन् १९८७                  |
| ७. आचारांग के सूक्त                                 | रामपुरिया श्रीचन्द, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी<br>महासभा, सन् १९६०                    |
| ८. आयारसुत्तं                                       | महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर, प्रकाशक, प्राकृत भारती<br>अकादमी, जयपुर सन् १९८९        |
| ९. आवश्यक सूत्र                                     | श्री मधुकर मुनि, प्रकाशक, श्री आगम प्रकाशन<br>समिति, ब्यावर, सन् १९८५              |
| १०. आवश्यक सूत्र                                    | घासीलाल जी म., जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट,<br>सन् १९५८                        |
| ११. उत्तराध्ययन सूत्र                               | श्री मधुकर मुनि, प्रकाशक, श्री जैन आगम प्रकाशक<br>समिति, ब्यावर                    |
| १२. उत्तराध्ययन सूत्र                               | घासीलाल जी म.  |
| १३. उपासकदशा  | पी.एल.वैद्य पूना, सन् १९३०   |
| १४. उपासकदशांग और<br>उसका श्रावकाचारः<br>एक परिशीलन | कोठारी सुभाष, प्रकाशक,<br>आगम अहिंसा समता एवं<br>प्राकृत संस्थान, उदयपुर, सन् १९८८ |

१५. तत्त्वार्थ सूत्र पं सुखलाल संघवी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम,  
वाराणसी, सन् १९८५
१६. मूलाचार वट्टकेर— प्र. भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली
१७. षड्दर्शन समुच्चय हरिभद्र सूरि, प्रकाशक, भारतीय ज्ञान पीठ  
पब्लिकेशन्स, दिल्ली, सन् १८४४
१८. सूत्रकृतांग सूत्र व्याख्याकार आत्माराम जी म.
१९. सूत्रकृतांग सूत्र घासीलाल जी म.

### (ख) आधुनिक ग्रन्थ

२०. आचार्य देवेन्द्र मुनि जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, प्रकाशक.  
तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर
२१. आचार्य हस्तिमल जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग १२
२२. उपाध्याय बलदेव भारतीय दर्शन, प्र. शारदा मन्दिर बनारस, १९४८ ई.
२३. जैन उदयचन्द्र हेम प्राकृत व्याकरण, प्रकाशक, राजस्थान प्राकृत  
भारती संस्थान, जयपुर, सन् १९८३
२४. जैन कैलाशचन्द्र जैन धर्म, दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन, मथुरा
२५. जैन कोमल जैन आगम में नारी, प्रकाशक, पद्मजा कोमल, देवास,  
म.प्र. सन् १९८६
२६. जैन जगदीशचन्द्र प्राकृत साहित्य का इतिहास, प्रकाशक, चौखम्बा  
विद्या भवन सोसायटी, सन् १९८५
२७. जैन जगदीशचन्द्र आगम साहित्य में भारतीय समाज, प्रकाशक, चौखम्बा
२८. जैन जगदीशचन्द्र जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग, प्र. पार्श्वनाथ  
विद्याश्रम, वाराणसी
२९. जैन जगदीशचन्द्र प्राकृत जैन कथा साहित्य, अहमदाबाद, १९७१ ई.
३०. जैन प्रेम सुमन कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन, प्रकाशक  
प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली  
संवत् २०३२
३१. जैन फूलचन्द मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन, प्र. पार्श्वनाथ  
विद्याश्रम, वाराणसी, सन् १९८७

३२. जैन सागरमल धर्म और दर्शन के क्षेत्र में हरिभद्र का योगदान, प्रकाशन सन् १९९०
३३. जैन हीरालाल भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, प्रकाशक—मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल, सं. २०३२
३४. पंडित सुखलाल संघवी दर्शन और चिन्तन, प्रकाशक, पंडित सुखलाल सन्मान समिति, अहमदाबाद, सन् १९५६
३५. मल्लीनाथ जैन दर्शनसार, प्रकाशन सन् १९८१
३६. मालवणिया दलसुख आगम युग का जैन दर्शन, प्रकाशक, सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा सन् १९९०
३७. मुनि राकेश कुमार भारतीय दर्शन के प्रमुख वाद, प्रकाशक, आदर्श साहित्य संघ, चूरू, सन् १९८८
३८. मुनि राजेन्द्र जैन धर्म, प्रकाशक, श्री तारक गुरु ग्रन्थालय, उदयपुर, सं. २०३८
३९. मेहता मोहनलाल जैन धर्म और दर्शन, प्र. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, सन् १९७३
४०. मेहता मोहनलाल जैन दर्शन, प्रकाशक, सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा सन् १९५९
४१. युवाचार्य महाप्रज्ञ जैन दर्शन और अनेकान्त, प्रकाशक आदर्श साहित्य संघ, चूरू, सन् १९८९
४२. शास्त्री देवेन्द्र मुनि जैन आगम दिग्दर्शन, प्रकाशक, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर
४३. शास्त्री देवेन्द्र मुनि जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप, प्रकाशक श्री तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर
४४. शास्त्री देवेन्द्र मुनि जैन दर्शन स्वरूप और विश्लेषण, प्रकाशक, श्री तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, सन् १९७५
४५. शास्त्री देवेन्द्र मुनि जैन धर्म और दर्शन, प्रकाशक तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर सन् १९८२
४६. शास्त्री नेमिचन्द्र प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रकाशक, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी सन् १९८८

४७. शास्त्री नेमिचन्द्र

हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, प्र. प्राकृत शोध संस्थान वैशाली, १९६५ ई.

४८. गुरुदेव-रत्न मुनि  
स्मृति ग्रन्थ

प्रकाशक, गुरुदेव स्मृति-ग्रन्थ समिति, जैन भवन,  
लोहा मंडी, आगरा सन् १९६४

(ग) कोष ग्रन्थ

४९. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष  
चार भाग

भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली, सन् १९८८

५०. प्राकृत शब्द कोष

मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली और  
प्राकृत विद्या विकास फण्ड, अहमदाबाद, सन् १९८७

५१. संस्कृत शब्द कोष

मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

□ □ □



## ग्रन्थ परिचय

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध शीलांकाचार्य की आचाराङ्ग सूत्र की टीका का विवेचनात्मक एक अध्ययन है। साध्वी राजश्रीजी ने भगवान महावीर के समकालीन दार्शनिक परिवेश का परिचय देते हुए जैन दर्शन के आधारभूत तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में आचारांग वृत्ति का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन दो अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अध्ययन में वृत्तिकार द्वारा उस काल की संस्कृति के विभिन्न पहलुओं की चर्चा को सम्मिलित किया गया है। वृत्ति में चर्चित ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि विषयों का पृथक् अध्ययन रोचक सूचना सामग्री लिए है। यह समस्त विवेचन सामाजिक परिस्थितियों एवं व्यवस्थाओं का विस्तृत लेखा-जोखा उपलब्ध कराता है। भाषात्मक अध्ययन में सम्पूर्ण विषय को नहीं समेटा गया है।....





साध्वी डॉ. राजश्री

- जन्म नाम — राधा छाजेड़  
जन्म — 10.02.1966  
जन्म स्थान — बगडून्दा गाँव  
निवास — बगडून्दा जिला उदयपुर  
माता — श्रीमती अमृताबाई  
पिता — स्व० श्री गोपीलालजी छाजेड़  
गोत्र — छाजेड़  
दीक्षा ग्रहण — 02.12.1984  
दीक्षा स्थल — दिल्ली  
दीक्षा नाम — साध्वी राजश्री  
दीक्षा दाता — उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म०  
गुरुवर्या — साध्वी श्री चारित्रप्रभाश्रीजी म०  
अध्ययन — एम. ए. (संस्कृत), साहित्यरत्न, पी.एच.डी.